॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला
१

गोस्वामी तुलसीदास

[समीक्षात्मक विवेचन]

आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी

चौखम्बा विद्या भवन, चौक, बनारस-१

सं. २०१३]   मूल्य ३)   [१९५६ ई०

आवाहन

तुलसी ! तुलसी !! तुलसी !!!

आज हमारा देश स्वतंत्र है और स्वतंत्रताके उल्लासमें यह उचित भी है कि तुम्हारे जैसे महाकविका स्थान सुरक्षित किया जाय, उसका अभिनन्दन किया जाय, उसके लिये स्मारक बनवाए जायँ। किन्तु क्या तुम स्वयं अपने स्मारक नहीं हो ? क्या रामचरित-मानस तुम्हारा कम महत्त्वपूर्ण स्मारक है ? हिन्दू जातिपर, भारतवर्षपर, सम्पूर्ण मानवतापर तुमने अपने महाकाव्यके दिव्य और शाश्वत संदेशोंका जो अपार ऋण लाद दिया है उससे क्या कभी हिन्दू जाति, भारत और मानवता उऋण हो सकती है ? वास्तवमें तुम्हारा सबसे बड़ा स्मारक रामचरितमानस ही है। वह मानस, जिसे 'रचि महेस निज मानस राखा' और जिसे बड़े कौशलसे लोक-भाषामें, ग्राम्यगिरामें ढालकर तुमने महेशके मानससे निकालकर लोक-मानसमें लाकर प्रतिष्ठित कर दिया। अपने जिस स्वान्तःकरणके सुखके लिये तुमने इस मानसकी लोकमें प्रतिष्ठा की है वह तुम्हारा स्वांतस् कितना गंभीर, कितना उदार, कितना विशाल और कितना कल्याणमय है ? तुमने स्वयं उसके सम्बन्धमें कहा है कि यह मेरी वस्तु नहीं, यह तो 'सुरसरि सम सबकर हित' करनेवाली है।

आज अनेक वाद संसारके साहित्य-गगनपर घटाटोप बनकर छाए

आज लक्ष्मीपूजन और दीपमालिकाके पुण्य पर्वपर जिस समय सारा भारत अमाकी घोर निशामें सैकड़ों-सहस्रों दीप प्रज्वलित करके लक्ष्मीके शुभागमनकी तैयारी कर रहा है उस समय मैं तुम्हारे शाश्वत संदेश-रूपी महाप्रकाशका आवाहन करता हूँ और यही कामना करता हूँ कि हमारे हृदयका सम्पूर्ण तमस् दूर हो, हमारा साहित्य नवीन ज्योतिसे समुद्योतित हो और हमारा समाज, हमारा देश, नवजीवन, नवस्फूर्ति, नवचेतनाके साथ नवसंदेश स्वीकार करके संसारको नवीन मंगलमय पथका प्रदर्शन करे।

तुलसी ! तुम्हारी जय हो ! जय हो !! जय हो !!!

दीपमालिका
सं० २०१२
काशी

सीताराम चतुर्वेदी

विवेचन-विन्यास

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

गोस्वामी तुलसीदास

१

तुलसी और उनकी कविता

तुलसी सो सुत होय !

विक्रमकी सोलहवीं शताब्दिके उत्तरार्द्धमें सहसा भारतीय जीवनाकाशमें ऐसे दिव्य प्रकाशवान् नक्षत्रका उदय हुआ जिसने कोटिशः सूर्योंका प्रकाश मन्द करके सम्पूर्ण भावी जगत्को अपने अखंड देदीप्यमान प्रकाश-पुंजसे सदाके लिये आलोकित कर दिया और जिसकी सात्त्विक तपोवृत्ति और ज्ञानवृत्तिकी महत्ताके आगे उस समयके प्रतापी मुग़ल-सम्राटोंका वैभव भी अत्यन्त तुच्छ और धुँधला प्रतीत होने लगा। वह ज्योतिष्मान् नक्षत्र था सन्त कवि 'महात्मा तुलसीदास' जिसकी अमर वाणी आज समस्त संसार अत्यन्त श्रद्धा, आश्चर्य और उल्लासके साथ सुन रहा है।

यद्यपि गोस्वामी तुलसीदासजीका ठीक-ठीक जन्म-समय और वर्ष तो निश्चित नहीं है किन्तु परम्पराके आधारपर शिवसिंह सेंगरने गोस्वामीजीका जन्म सं० १५८३ के लगभग माना है। बाबा बेनीमाधवदासजीके अनुसार गोस्वामीजीके पिता यमुनाके तटपर 'दुबे पुरवा' नामक गाँवके दुबे और मुखिया थे जिनके पूर्वज वहाँ पत्यौजा ग्रामसे आए थे। बाबा रघुबरदासके तुलसीचरितमें लिखा है कि सरवारमें मझौलीसे २३ कोसपर कसया ग्रामनिवासी, गोस्वामीजीके प्रपितामह परशुराम (गानाके मिश्र)

तीर्थाटन करते-करते चित्रकूट पहुँचे और वहीं राजापुरमें बस गए। उन्हींके प्रपौत्र तुलाराम ही गोस्वामी तुलसीदास हुए। दोनों चरितोंमें गोस्वामीजीका जन्म-संवत् १५५४ ही माना गया है और बाबा बेनीमाधवदासकी पुस्तकमें तो श्रावण शुक्ला सप्तमी जन्मतिथि भी दी हुई है—

पन्द्रह सै चौवन बिसैं, कालिन्दीके तीर।
स्रावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी धर्यौ सरीर॥

इस सम्वत्की गणनाके अनुसार गोस्वामीजीकी आयु १२६ या १२७ वर्ष होती है, जो उन जैसे महात्माके लिये असंभव नहीं है। मिर्ज़ापुरके प्रसिद्ध रामभक्त पंडित रामगुलाम द्विवेदीने भक्त-परम्पराकी अनुश्रुतिके अनुसार इनका जन्मसंवत् १५८९ माना है जिसे डा० ग्रियर्सनने भी स्वीकार किया है। आगे इस प्रश्नपर विस्तारसे विचार किया जायगा।

भक्त-परम्परामें प्रसिद्धि चली आती है कि तुलसीदासजी पाराशर गोत्रीय पत्यौजाके सरयूपारी ब्राह्मण थे—

'तुलसी परासर गोत दुबे पतिऔजाके'

इसी परम्पराके अनुसार गोस्वामीजीके पिताका नाम आत्माराम दुबे, माताका नाम हुलसी, पत्नीका नाम रत्नावली, श्वसुरका नाम दीनबन्धु पाठक और पुत्रका नाम तारक था। माताके 'हुलसी' नामके सम्बन्धमें कथा है कि गोस्वामीजीने अब्दुर्रहीम ख़ानख़ानाको किसी ब्राह्मणकी कन्याके विवाहके लिये सहायतार्थ जो पद लिखा था—

सुरतिय नरतिय नाग तिय, सब चाहति अस होय।

उसके उत्तरमें सहायता देते हुए ख़ानख़ानाने लिखा था—

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।

स्वयं गोस्वामीजीने भी रामचरित-मानसमें लिखा है—

रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी।
तुलसिदास हित हिय हुलसी सी॥

[यह रामकथा तुलसीदासके हितके लिये हुलसी (माता) के हृदयके समान है।]

रामचरित-मानसके प्रसिद्ध विद्वान् मानसराजहंस पण्डित विजयानन्द त्रिपाठीजीने लिखा है कि गोस्वामीजी सरवरिया ब्राह्मण थे, राजापुर (वर्तमान ज़िला बांदा) के रहनेवाले थे, संवत् १५८३ के लगभग उत्पन्न हुए, संवत् १६८० में परम धाम गए और वे बड़े महात्मा, रामोपासक, महायोगी तथा सिद्ध पुरुष थे। इधर पंडित चन्द्रबली पांडेयने अपनी 'तुलसीकी जीवन-भूमि' पुस्तिकामें यह सिद्ध करनेकी पांडित्यपूर्ण चेष्टा की है कि उनका जन्म-स्थान बाबरी मस्जिदके सामने अयोध्यामें था। आगे हम इस समस्याकी मीमांसा करेंगे।

गोस्वामीजीने अपने बाल्य जीवनके सम्बन्धमें कवितावलीमें कहा है—

मातु पिता जग ज्याइ तज्यो, बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।

और विनयपत्रिकामें भी आया है—

जनमि जननी तज्यो जननि, करम बिनु बिधिहुं सृज्यो अवडेरे।

तथा—

तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु-पिता हू।

[अपने शरीरसे उत्पन्न हुए बालकको भी माता-पिताने साँपके समान विषैला समझकर छोड़ दिया ।]

इन वचनोंके अनुसार यह जनश्रुति चल पड़ी कि गोस्वामीजी अभुक्त-मूल नक्षत्रमें उत्पन्न हुए थे इसलिये उनके माता-पिताने उन्हें छोड़ दिया । संभवतः इसी आधारपर गोसाइँचरितमें लिखा है कि उत्पन्न होनेके समय गोस्वामीजी पाँच वर्षके बालकके समान पूरे दाँत लेकर उत्पन्न हुए और जन्म लेते ही रोनेके बदले 'राम-राम' कहने लगे । पिताने उस बालकको राक्षस समझकर उसकी उपेक्षा की पर माताने उसकी सुरक्षाके लिये उसे अपनी दासी मुनियाँको सौंप दिया । उस बालकको लेकर मुनियाँ अपनी ससुराल चली गई और जब पाँच वर्ष पश्चात् मुनियाँ भी सर्पदंशसे मर गई तब भी उसके पिता उसे ले जानेको उद्यत न हुए । वहाँ किसी-किसी प्रकार उस बालकका पालन-पोषण होता रहा । अन्तमें बाबा नरहरिदास उसे अपने साथ सूकरक्षेत्र ले जाकर राम-कथा सुनाते रहे । उन्हींके साथ गोस्वामीजीने काशीमें पंचगंगा घाटपर आकर स्वामी रामानन्दजीके स्थानपर तत्कालीन परम विद्वान् महात्मा शेषसनातनजीसे वेद, वेदान्त, दर्शन, इतिहास, पुराण तथा काव्य-शास्त्रका पूर्ण अध्ययन किया । पन्द्रह वर्ष गम्भीर अध्ययन करके जब वे अपनी जन्म-भूमि राजापुरको लौटे तो वहाँ न तो कोई उनके परिवारमें ही बचा रह गया था और न उनका घर ही समूचा रह गया था ।

वहाँ पहुँचनेपर वे वाल्मीकीय-रामायणकी कथा बाँचकर अपनी जीविका चलाने लगे । इसी बीच यमुना-पारके तारपिता ग्रामवासी भारद्वाज-गोत्रीय पण्डित दीनबन्धु पाठक यमद्वितीयाको राजापुरमें स्नान करने आए । वे तुलसीदासजीकी विद्वत्ता, विनय, शील और रूपपर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने तुलसीदासजीसे अपनी अत्यन्त साध्वी,

सुन्दरी, विदुषी और रामभक्त कन्या रत्नावली ब्याह दी। गोस्वामीजी उनपर इतने अनुरक्त थे कि एक बार जब वे अपने मायके चली गईं तो गोस्वामीजी तत्काल बढ़ी हुई यमुना पार करके भी उनसे जाकर मिले। उनकी इस कामासक्तिपर खीझकर उसी समय उनकी पत्नीने कहा—

लाज न लागत आपको, दौरे आएहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेमको, कहा कहौं मैं नाथ।
अस्थि-चरम-मय देह मम, तामैं जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौ भवभीति॥

यह सुनते ही गोस्वामीजीने, गृह-त्याग करके काशी, अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारिका, बदरिकाश्रम, कैलास और मानसरोवरतक घूमकर कुछ दिन चित्रकूटमें सत्संग किया। तदनन्तर चैत्र शुक्ला नवमी, मंगलवार, संवत् १६३१ को उन्होंने अयोध्यामें रामचरित-मानस आरम्भ करके उसे दो वर्ष सात महीनेमें समाप्त किया। कहा जाता है कि राम-चरित-मानसका कुछ अंश, विशेषतः किष्किंधाकांड उन्होंने काशीमें लिखा क्योंकि उसके प्रारम्भमें वे अपने मनको समझा रहे हैं—

जरत सकल सुरबृन्द, विषम गरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मतिमन्द, को कृपालु संकर सरिस॥
मुकुति जन्म महि जानि, ज्ञान-खानि अघ-हानिकर।
जहं बस संभु-भवानि, सो कासी सेइय कस न॥

रामचरित-मानस समाप्त होनेपर उन्होंने काशीमें ही अपना निवास-स्थान बना लिया था। वे काशीमें पहले प्रह्लाद घाटपर रहते थे, जहाँ उन्होंने विनय-पत्रिकाकी रचना की। किन्तु वहाँके लोगोंने उन्हें इतना

कष्ट देना प्रारंभ किया कि वे वहाँसे हटकर अस्सी घाटपर चले आए जो उन दिनों काशीकी बस्तीसे बाहर निराले जंगलमें पड़ता था।

गोस्वामीजीकी प्रसिद्धि उनके समयमें ही हो चली थी। बड़े-बड़े विद्वान्, सन्त, भक्त और महात्मा उनके पास विचार-विमर्शके लिये निरन्तर आते-जाते रहते थे। उस समयके प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीने उनसे शास्त्र-चर्चा करके कहा था—

आनन्दकानने ह्यस्मिञ्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥

गोस्वामीजीके मित्रों और स्नेहियोंमें अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना, महाराज मानसिंह, नाभाजी और मधुसूदन सरस्वती आदि महापुरुष प्रमुख थे। काशीमें इनके सबसे बड़े स्नेही और भक्त भदैनी मुहल्लेके भूमिहार भूमिपति टोडरजी थे जिनकी मृत्युपर उन्होंने कई दोहे कहे हैं।

गोस्वामीजीकी मृत्युके सम्बन्धमें पहले यह दोहा अधिक प्रसिद्ध था—

संबत सोरह सै असी, असी गंगके तीर।
स्रावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ सरीर॥

पर बाबा बेनीमाधवदासकी पुस्तकमें दूसरी पङ्क्ति इस प्रकार है या कर दी गई है—

श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यौ शरीर॥

उनकी यही निर्वाण-तिथि ठीक भी है, क्योंकि टोडरके वंशज आजतक इसी तिथिको गोस्वामीजीके नामपर सीधा दिया करते हैं।

सूकरखेत

कुछ लोगोंने 'मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकरखेत।'[१] के आधारपर गोस्वामीजीका जन्मस्थान एटा ज़िलेके सोरों नामक

स्थानमें ढूँढ़ना प्रारंभ किया, यहाँतक कि सोरोंवालोंने एक आन्दोलन ही खड़ा कर दिया, किन्तु यह सूकरखेत गोंडा जनपदमें सरयूके तटपर पुराना प्रसिद्ध तीर्थ है। भाषाकी दृष्टिसे भी गोस्वामीजीकी रचनाओंमें केवल दोस्थानोंके शब्द अधिक आते हैं—चित्रकूटके आस-पासके और अयोध्याके आस-पासके। इससे सिद्ध होता है कि इन्हीं दो स्थानोंसे उनका जन्म-सम्बन्ध और इन्हींमें निवास अधिक रहा है। माहुर, सरों, हराना या हरहराना, फुर, अनभल ताकना, राउर, रौरेहि, रमा लहीं आदि शब्द और प्रयोग अयोध्याके आसपासके ही हैं। इसी प्रकार 'कुराय' और 'सुवार' जैसे शब्द चित्रकूटके आसपास तथा बघेलखंडके हैं। यदि गोस्वामीजी एटा ज़िलेके सोरोंवाले होते तो कहीं न कहीं अपने जन्मस्थान और गुरुस्थानकी भाषाका प्रयोग अवश्य करते, विशेषतः रामलला-नहछू, जानकी-मंगल और पार्वती-मंगल जैसे ग्रन्थोंमें तो अवश्य ही करते जो उन्होंने स्त्रियोंके लिये लिखे हैं। अतः, एटा ज़िलेके सोरोंवालोंका यह जितना कुछ प्रयास है उसे केवल श्रद्धापूर्ण उल्लास-मात्र समझना चाहिए।

भाषाओंपर अधिकार

यद्यपि गोस्वामीजीने वेद, वेदांग, दर्शन, काव्यशास्त्र, पुराण आदि का अध्ययन किया था किन्तु तत्कालीन लोक-काव्य-भाषा (व्रज और अवधी) पर तथा तत्कालीन राजभाषा फ़ारसीपर भी उनका अखंड अधिकार था। उनकी गीतावली और कृष्णगीतावलीमें व्रजभाषाका सुन्दर निखरा हुआ रूप और जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, बरवै रामायण तथा रामलला-नहछूमें ठेठ अवधीका माधुर्य प्राप्त होता है। यद्यपि उन्होंने फ़ारसीमें कोई रचना नहीं की किन्तु उन्होंने जो पंचनामा लिखा है वही इस बातका सबसे बड़ा प्रमाण है कि फ़ारसीमें भी उनकी बड़ी अच्छी गति थी। रामचरित-मानसके प्रत्येक कांडके प्रारंभमें उन्होंने

जितने संस्कृतके श्लोक लिखे हैं उतने ही उनके संस्कृतके पांडित्यका परिचय करानेके लिये पर्याप्त हैं।

गोस्वामीजीमें भावके साथ भाषाका रूप ढालनेका विचित्र कौशल था। फुलवारीमें सीताजीको आते देखकर उनकी भाषा श्रुतिमधुर हो जाती है—

कंकन-किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥

किन्तु धनुष-भंग होते ही उनकी भाषा गंभीर और कठोर हो जाती है—

डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयंत लरखरत परत दसकंठ मुक्खभर।
सुरविमान हिमभानु संघटित होत परस्पर॥
चौंके बिरंचि संकर-सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिवधनु दल्यौ॥

विद्यापति और सूरदासकी गीत-पद्धतिपर उन्होंने अपनी कोमल-कान्त-पदावली और अनुप्रास-मंडित काव्य-कलाके साथ विनयपत्रिका और गीतावलीकी रचना की। गंग आदि कवियोंकी कवित्त-सवैया-पद्धतिमें भी उन्होंने कवितावली-रामायणकी तथा रामचरित-मानसमें स्थान-स्थानपर अनेक सवैयोंकी रचना की। नीतिके दोहोंकी पद्धतिपर उन्होंने दोहावलीकी अत्यन्त मार्मिक और कौशलपूर्ण रचना की जिनमेंसे चातकपर लिखे हुए दोहे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और उनकी भक्ति-भावनाके प्रतीक हैं—

चातक तुलसीके मतें, स्वातिहु पियौ न पानि ।
प्रेम-तृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि ॥
बध्यौ बधिक पर्‍यौ पुन्न जल, उलटि उठाई चोंच ।
तुलसी चातक प्रेम-पट, अंतहुँ लगी न खोंच ॥

दोहे-चौपाईके क्रमसे इन्होंने अपना विश्वप्रसिद्ध रामचरित-मानस नामक महाकाव्य लिखा है जिसे कुछ ज्ञानलवदुर्विदग्ध लोग महाकाव्यकी कोटिसे निकालकर पुराणकी कोटिमें रखनेकी दुश्चेष्टा कर रहे हैं। महाकाव्यके सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त होनेके कारण रामचरित-मानस विशाल महाकाव्य है। इष्टफलकी प्राप्तिके लिये इसके सुन्दरकांडका प्रयोग स्तोत्रके रूपमें किया जाता है।

जनक-सुता जगजननि जानकी ।
अतिसय प्रिय करुनानिधानकी ॥
ताके जुग पदकमल मनावौं ।
जासु कृपा निर्मल मति पावौं ॥

को लोग गायत्री मन्त्रका प्रतीक मानते हैं। धर्माचरणके विचारसे इसका प्रयोग धर्मग्रन्थ या स्मृतिके रूपमें किया जाता है। यह गेय काव्य भी है क्योंकि इसे लोग बैठकर गाते हैं। यह नाटक भी है क्योंकि गोस्वामी तुलसी-दासजीने इसीके आधारपर रामलीला प्रारंभ की और आज भी इसीके आधारपर सब स्थानोंपर रामलीला होती है। अतः, रामचरित-मानस महाकाव्य, गेयकाव्य, स्तोत्र, मंत्र और नाटक अर्थात् श्रव्य, दृश्य, पाठ्य तथा मननीय सब प्रकारके काव्योंका प्रतिनिधित्व एक साथ करता है। इतने गुणोंसे पूर्ण संसारका कोई भी काव्य नहीं है। इसलिये हरिऔधजीने उनके सम्बन्धमें ठीक ही कहा था—

कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसीकी कला ।

गोस्वामीजीकी भक्ति

यद्यपि गोस्वामीजी एकनिष्ठ रामके भक्त थे—

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास ।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ॥

किन्तु उन्होंने शिवजीको भी रामके ही रूपमें देखा है। उन्होंने राम और शिवमें किसी प्रकारका कोई भेद नहीं माना है—

संकर-प्रिय मम द्रोही, सिव-द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महँ बास ॥

विनयपत्रिकाके प्रारंभमें यद्यपि उन्होंने सब देवताओंमें अपनी अत्यन्त विनयपूर्ण श्रद्धा दिखलाई है किन्तु अन्तमें सबसे याचना 'रामचरणरति'की ही की है।

वे सारी सृष्टिको ही 'सियाराममय' मानते थे इसलिये उनके सामने कोई पराया रह ही नहीं गया था। इसी रूपमें उन्होंने भक्तिका लोकमंगलकारी स्वरूप स्थापित किया—

सियाराम-मय सब जग जानी ।
करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

किन्तु साथ-साथ विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तका भी उन्होंने आभास दे दिया था कि सीताजी तो प्रकृति (अचित्) हैं और राम साक्षात् ब्रह्म (चित्) हैं। ये चित् और अचित् दोनों एक ही हैं—

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।
बन्दौं सीता-राम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥

गोस्वामीजीके बहुत ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं किन्तु बारह ग्रन्थ ही उनके मान्य समझे जाते हैं—दोहावली, कवित्तरामायण, गीतावली, रामचरित-मानस, रामाज्ञा-प्रश्नावली, विनयपत्रिका, रामलला-नहछू, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवै-रामायण, वैराग्य-संदीपिनी और कृष्ण-गीतावली। इनके अतिरिक्त शिवसिंहसरोजमें रामसतसई, संकटमोचन, हनुमानबाहुक, रामशलाका, छन्दावली, छप्पय-रामायण, कड़खा-रामायण, झूलना-रामायण और कुंडलिया-रामायणका नाम भी गिनाया गया है। इनमेंसे प्रत्येकपर हम समीक्षात्मक दृष्टिसे आगे विचार करेंगे।

गोस्वामी तुलसीदासजीके सम्बन्धमें बहुत-सी कथाएँ भी प्रचलित हैं कि उन्होंने किसी स्त्रीके मृत पतिको जिला दिया था, हनुमान्‌जीने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया था और चित्रकूटमें राम-लक्ष्मणके दर्शन कराए थे, जिसके कारण यह दोहा प्रचलित हो गया—

चित्रकूटके घाटपर, भइ सन्तनकी भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसैं, तिलक देत रघुबीर॥

कहा जाता है कि एक बार जहाँगीरने उन्हें बुलवाकर चमत्कार दिखानेको कहा। न दिखानेपर जब वे बन्दी कर लिए गए तब सारे दुर्गमें बन्दर ही बन्दर छा गए और उन्होंने दुर्गमें रहनेवालोंको संत्रस्त कर दिया। यह भी कथा है कि गोस्वामी तुलसीदास काशीमें जहाँ रहते थे वहाँ रातको एक बार चोर आए और उन्होंने देखा कि धनुष-बाण धारण किए हुए दो राजकुमार उनका पहरा दे रहे हैं। यह कथा सुनकर तुलसीदासजीने अपने पासका सब कुछ बाँट दिया। एक बार जब डकैतोंने उन्हें घेरा तब उन्होंने कहा—

बासरि ढासनिके ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर।
दलत दयानिधि देखिए, कपि-केसरी-किसोर॥

[हे हनुमान्जी ! दिनमें तो धूर्तों और रातको चोरोंसे पीड़ित मुझ तुलसीदासकी रखवाली कृपा करके कीजिए ।]

इसपर हनुमानजी प्रकट हो गए और उन्हें देखते ही डकैत मूर्च्छित होकर गिर पड़े । कहा जाता है कि घर छोड़नेके थोड़े दिन पश्चात् एक बार वे अपनी ससुराल गए जहाँ उनकी पत्नीने कहा—

कटिकी खीनी कनक-सी, रहत सखिन संग सोय ।
मोहिं फटेको डर नहीं, अनत कटे डर होय ॥

[मैं तो रूपवती और सुन्दरी होनेपर भी अपनी सखियोंके साथ सोकर समय बिता लेती हूँ इसलिये मुझे तो अपने हृदय फटनेका डर नहीं है । पर डर यही है कि आपकी रात कहीं और न कटने लगे ।]

इस व्यंग्यपर तुलसीदासजीने कहा—

कटे एक रघुनाथ संग, बाँधि जटा सिर केस ।
हम तौ चाखा प्रेम-रस, पत्नीके उपदेस ॥

इस प्रकार एक बार वृद्धावस्थामें भी ये अपनी ससुराल गए किन्तु इन्होंने वृद्धा पत्नीको नहीं पहचाना । उस समय इनकी पत्नीने अपना परिचय देते हुए कहा—

खरिया खरी कपूर लौं, उचित न पिय तिय त्याग ।
कै खरिया मोहिं मेलिकै, अचल करौ अनुराग ॥

[जैसे आपने अपनी खरिया (झोली) में खड़िया और कपूरतकको स्थान दे दिया वैसे ही हे प्रिय ! आप स्त्रीका भी त्याग न कीजिए और या तो मुझे भी खरियामें रख लीजिए या सब कुछ छोड़कर अब भगवानूका प्रेम ही अचल कर लीजिए ।]

यह सुनकर तत्काल उन्होंने वह झोली भी एक ब्राह्मणको दे दी।

कहा जाता है कि भाषामें रामचरित-मानस लिखनेपर काशीके पंडितोंने उन्हें बड़ा त्रस्त किया किन्तु जब साक्षात् विश्वनाथजीने उसपर हस्ताक्षर कर दिए तब वह प्रमाण मान लिया गया। उन्होंने स्वयं कहा है—

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवहि कामरी, का लै करै कुमाँच॥

तुलसीदासजी एक बार वृन्दावन गए। वहाँ साधुओंकी पंगत हो रही थी। वहाँ भीड़ होनेके कारण तुलसीदासजी जूतोंके पास जा बैठे। जब लोग उन्हें परसने लगे तो उनसे पूछा—'आप किस पात्रमें लेंगे ?' उन्होंने एक महात्माका जूता उठाकर कहा—'इसीमें दे दीजिए'। इस विनयशीलतापर नाभादासजीने उन्हें अपने गले लगा लिया। इसी प्रसंगमें जब वे कृष्णजीके मन्दिरमें दर्शन करने गए और वहाँ कृष्णकी त्रिभंगी मूर्ति देखी तो कहा—

का बरनौं छबि आपकी, भले बने हौ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष-बान लो हाथ॥

इसपर कहा जाता है कि मूर्त्तिने मुरली छोड़कर धनुष-बाण धारण कर लिया। यह घटना सत्य हो या न हो किन्तु इसका तात्पर्य यही है कि गोस्वामीजी अपने इष्टदेवको सदा ऐसा शक्ति-समन्वित देखना चाहते थे जो शस्त्र हाथमें लेकर अन्याय और अत्याचारका प्रतिकार कर सके। अपने इष्टदेवको वे जिस रूपमें मानते थे वह उन्हींके शब्दोंमें सुनिए—

राम हैं मातु पिता गुरु बन्धु औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही ।
रामकी सौंह भरोसो है रामको राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही ॥
जीयत राम मरे पुनि राम, सदा गति रामहिकी एक जेही ।
सोइ जियै जगमें तुलसी, नतु डोलत और मुए धरि देही ॥

इस प्रकार लगभग एक शताब्दितक अपने पुण्य शरीरसे लोक-मंगल करते हुए वे रामचरितमानसके रूपमें जो अपना यशःशरीर छोड़ गए हैं वह भारतको ही नहीं विश्व भरको सदा-सर्वदाके लिये उत्साह और नवजीवन प्रदान करता रहेगा । इसलिये रहीमने उनके लिये ठीक ही कहा था—

गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय ।

२

ऐतिहासिक पीठिका

तुलसी अलखहि का लखै ।

गंगाजीने भागीरथी-धारा बनकर और सिन्धुने महानद बनकर यदि उत्तरभारतको उर्वर न बना दिया होता तो 'आदिकाव्य'का महाकवि अपनी मातृभूमिकी वन्दना करता हुआ कभी उसे 'स्वर्गादपि गरीयसी' कहकर स्मरण न करता और इस आर्यावर्त्त प्रदेशकी ओर बर्बर विदेशी जातियाँ आँख उठाकर भी न देखतीं । किन्तु आर्य जातिकी जिस जन्म और कर्मभूमिने त्रिसप्तसिन्धुके उर्वर प्रदेशमें उच्चतम संस्कृति और सभ्यताका विकास करके विश्वमें अपने आर्यत्वकी पताका फहराई, उसने ही विपुल धन-धान्य-पूर्ण परमैश्वर्यका ऐसा भव्य आकर्षण

भी प्रतिष्ठित कर दिया कि विदेशी दस्युओंकी जीभसे लार बहने लगी और वे बीच-बीचमें आ-आकर हमारे अर्थ-वैभवके साथ हमारे सांस्कृतिक वैभवपर भी छापा मारने लगे।

सम्फेटमय शताब्दियाँ

ईरानियों और यूनानियोंके आक्रमणोंका भारतके राजनीतिक या सामाजिक जीवनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि भारतीय पराक्रमका प्रत्याघात उन्हें भारतकी धरतीपर पैर न जमाने दे सका। शक या सिथिया-वाले और हूण भी यद्यपि आए तो झंझा बनकर, किन्तु वे भी भारतीय जीवनमें घुल-मिलकर एक हो गए। पर अरब, तुर्क और मंगोल जातियोंने अपने साथ विनाश लेकर आर्यावर्त्तमें पदार्पण किया। सातवींसे पन्द्रहवीं शताब्दितक उत्तर भारतका आसन ज्वालामुखीके मुखपर भूकम्पके धक्के खाता, विकम्पित होता झूलता रहा। उसने स्थिरता न पाई। उसके अस्थिर होनेसे युगोंसे चली आती हुई सनातन वर्णाश्रम-व्यवस्थाके आर्य-संस्कार भी सहसा विचलित हो उठे। खड्ग और भालेके तले लटके हुए प्राण कहाँतक सहनशीलता दिखाते, उन्हें सहारा देनेवाला कोई रह नहीं गया था।

पन्द्रहवीं शताब्दि हिन्दू-शासनकी कालरात्रि सिद्ध हुई। अपने-अपने मद, मिथ्याभिमान तथा स्वार्थमें लिपटी हुई हिन्दू-राज्य-शक्तियाँ इतनी निर्वीर्य हो गईं कि विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दिमें उत्तर-भारतका समूचा सिन्धु-गंगाका क्षेत्र, मालवा, गुजरात और बहमनी राज्य यवनोंके हाथ चला गया। शेष भारतमें भी यद्यपि छिटपुट हिन्दू राज्य बचे हुए थे किन्तु वे सब इतने अकर्मण्य, परस्पर-द्वेषी तथा निश्चेष्ट थे कि उन्होंने अपने भावी विनाशकी कल्पना करनेका भी कष्ट नहीं किया।

धर्मकी विकम्पित नींवपर

उस समयतक विष्णु और शिवके सहस्रों मन्दिर देशभरमें बन चुके थे। अधिकांश सनातनधर्मी हिन्दू मूर्तिपूजक थे। इसीके साथ-साथ कुछ ऐसे नये पन्थ भी चल पड़े थे, जिनमें सब प्रकारके अनाचार तथा मांस-मद्य आदिका खुलकर प्रयोग होने लगा था। इन वाममार्गियोंके विरुद्ध एक और भी स्वर ऊँचा उठा था उन भक्तों या सन्तोंका, जिन्होंने बाह्याचारके सम्पूर्ण आडम्बरोंके बदले सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी एकान्त निष्ठा और उपासना करते हुए सर्वहितकारी जीवन व्यतीत करनेका उपदेश दिया। इनमें प्रयागके रामानन्द और पण्ढरपुरके विसोबा खेचर बड़े प्रसिद्ध हुए। रामानन्दने कृष्णके बदले रामतत्त्वको प्रधान माना, संस्कृतके बदले देशी भाषाओंमें उपदेश दिए और निम्न श्रेणीकी जातियों, स्त्रियों तथा यवनोंको भी अपने सम्प्रदायमें दीक्षित करके शिष्य बनाया। इनका सिद्धान्त था कि भक्ति किसीको छोटा-बड़ा नहीं समझती, वह सबको पवित्र कर देती है—

जात-पाँत बूझै नहिं कोई।
हरिको भजै सो हरिका होई॥

उधर विसोबा खेचरने अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें मूर्तिपूजाकी निन्दा की और कहा—'पत्थरका देवता बोलता नहीं······वह चोटसे टूट जाता है······पत्थरके देवताओंके पुजारी मूर्खतावश सब खो बैठते हैं।' उन्होंने मूर्त्तियोंकी ओरसे जनताका ध्यान हटाकर सात्त्विक भक्तिपर बल दिया।

जो तू है, वही मैं हूँ

इन्हीं दिनों वेदान्तके सम्पर्कमें आकर मुसलमानोंका एक नया रहस्यवाद चला, जिसके प्रवक्ता सूफ़ी कहलाए। ये लोग ईश्वरको प्राप्य प्रेयसीके रूपमें मानते और उसे सर्वत्र व्यापक समझते थे—

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

ये मानते थे कि साधनासे हमारे और हमारे प्रियके बीचका वह भेद दूर हो सकता है जो हमारे अज्ञानसे आवरण बनकर बीचमें टँगा हुआ है। चौदहवीं सदीमें ईरानमें हाफ़िज नामका प्रसिद्ध सूफ़ी कवि हुआ जिसे बहमनी राज्यके द्वितीय मोहम्मदशाह तथा बंगालके शासक ग़यास आज़मशाहने निमन्त्रित भी किया था। भारतके मुसलमानोंपर इन सूफ़ियोंका बड़ा प्रभाव पड़ा। जैसे हमारे यहाँ 'अहं ब्रह्मास्मि' के साथ वेदान्तमें बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद और विवर्त्तवाद चला वैसे ही यहाँके मुसलमानोंमें भी चल पड़ा और वे कहने लगे—

ऐ मेरे दिले शैदा! जो तू है वही मैं हूँ।
फिर मुझसे है क्या पर्दा, जो तू है वही मैं हूँ॥
आईना उठा लाए और अक्ससे यूँ बोले—
क्यों बात नहीं करता, जो तू है वही मैं हूँ॥
एक पर्दा दुईका है, जो तू है वही मैं हूँ।
मैं मौज हूँ तू दरिया, जो तू है वही मैं हूँ॥

निर्गुनियोंका रेला

दक्षिणमें विसोबाके शिष्य नामदेवने तीर्थ, व्रत, उपवास आदि धर्मके सब बाह्य साधनोंको व्यर्थ बताकर यह आदेश दिया कि मनःशुद्धि और भगवान्‌का ध्यान ही सच्चा मार्ग है, उसीसे मुक्ति मिल सकती है। इधर काशीमें कबीरने हिन्दू और मुसलमान दोनोंके बाह्याचारको पाखण्ड और आडम्बर बताकर सदाचार, एकेश्वरता और सद्गुरु-चयनको महत्त्व दिया। इन लोगोंने जो वेदान्तका ब्रह्मवाद चलाया तो सभी लोग वेदान्ती बन बैठे और सब 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ही ब्रह्म हूँ) की पुकार

मचाने लगे। जिसे देखो वही कुण्डलिनी जगाकर षट्चक्र-भेदनकी तैयारी कर रहा है।

संवत् १२५० से दिल्लीकी गद्दीपर पाँच मुस्लिम वंशोंके पैंतीस शासक बैठे और इन सबने नियमित रूपसे हिन्दुओंको जितना कष्ट देते बना उतना कष्ट दिया। उन्होंने हिन्दुओंके मन्दिर तोड़े, उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया, उनकी पूजा-उपासना आदिमें व्याघात देनेके साथ-साथ उनकी कन्याओंका अपहरण भी किया, जिससे त्रस्त होकर हिन्दुओंको बाल-विवाह और कन्याओंको घर और घूँघटके भीतर रखनेकी कुप्रथाएँ चलानी पड़ीं।

इस प्रकार चारों ओर जिस प्रकारकी अव्यवस्था, अशान्ति, असन्तोष, विक्षोभ और अरक्षाकी भावना हिन्दू जनतामें व्याप्त थी, उसे सँभालनेके लिये यद्यपि सन्तोंने बहुत प्रयत्न किए किन्तु निराकार और निर्गुण ईश्वर उनके अशान्त मानसको सान्त्वना न दे पाया। उन्हें कोई ऐसी सजीव मूर्त्तिमान शक्तिकी अपेक्षा थी जो उनमें प्राण भरे, शक्ति भरे, सान्त्वना दे और आश्रय दे। बंगालमें चैतन्य महाप्रभु (सं० १४८५ से १५३३) और उनके साथी अद्वैताचार्यने बंगालको वज्रयानियों और शाक्त वाम-मार्गियोंके चंगुलसे मुक्त करनेकी चेष्टा की। उन्होंने सब जाति-भेद दूर करके मुसलमानोंको भी अपना शिष्य बनाया और नेड़ा-नेड़ी नामका जो बौद्ध भिक्खु-भिक्खुनियोंका बड़ा भारी दल था उसे वैष्णव धर्ममें दीक्षित करके हिन्दुओंमें मिला लिया। उधर मारवाड़में राणा साँगाकी पुत्र-वधू मीराबाईने भी अपनी एकनिष्ठासे माधुर्य-भावकी भक्तिका प्रचार और प्रसार किया। किन्तु इतना सब होते हुए भी जिस सजीव मूर्त्तिमान् दैवी शक्तिकी खोज लोग कर रहे थे, वह तबतक नहीं मिल पाई जब तक गोस्वामी तुलसीदासजीका उदय नहीं हो गया।

जिस समय गोस्वामीजीका जन्म हुआ उस समयतक उत्तर भारतमें मुसलमानोंका शासन पूर्ण रूपसे जम चुका था। उत्तर-पश्चिमके द्वारसे आनेवाले यवन आक्रमणकारियोंने जहाँ भारतवर्षकी भौतिक सम्पत्तिका अपहरण किया वहाँ उन्होंने हिन्दुओंको बलपूर्वक मुसलमान बनाया या तलवारके घाट उतार दिया। ये आक्रमणकारी दस्यु इतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने हमारे सांस्कृतिक वैभवपर भी छापा मारा, हमारे देवस्थान नष्ट किए, पाठशालाएँ ध्वस्त कर दीं, पुस्तकालय जला डाले और जिस प्रकार हो सका हिन्दू धर्म और संस्कृतिको नष्ट करनेमें कुछ उठा नहीं रक्खा।

मुसलमान आक्रमणकारियोंके आगमनसे पूर्व भारतमें हिन्दू राजा परस्पर संघर्ष करके अपनी शक्ति नष्ट कर चुके थे। इतना ही नहीं, उन्होंने स्वयं यवन आक्रमणकारियोंको निमंत्रण दे-देकर बाहरसे बुलाया और इस प्रकार उनके पारस्परिक वैरसे उनका भी नाश हुआ और साथ-साथ भारतका और भारतीय संस्कृतिका भी। मुग़लोंके शासन-कालतक तो हिन्दू पूर्णतः अशक्त हो चुके थे, उनकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो चुकी थी।

हिन्दुओंका शासन समाप्त होनेके कारण हिन्दू-समाजको सुसंघटित रखनेवाले सब सूत्र शिथिल होने लगे। वर्णाश्रम-व्यवस्था विशृंखल होने लगी। हिन्दू समाजका ढाँचा स्मृतिके शासनसे निकलकर अस्त-व्यस्त होने लगा। भारतीय शिक्षा-पद्धति समाप्त हो जानेसे संस्कार लुप्त होने लगे। धर्म-कर्म और शास्त्रोंका लोप हो गया। मुसलमानी शासनमें उच्च पद पानेके लोभसे अथवा तलवारके भयसे जो हिन्दू अपना धर्म छोड़कर मुसलमान हो गए थे वे और भी अधिक कट्टर हिन्दू-द्वेषी बन निकले। सम्पूर्ण समाजमें हिन्दू और

मुसलमान दोनों वर्गोंका खुला संघर्ष प्रारंभ हो गया। मुसलमान तो हिन्दुओंको काफ़िर कहने लगे और हिन्दू भी मुसलमानोंको म्लेच्छ। यद्यपि अकबरने अपनी कूट नीतिसे हिन्दू-मुसलमानोंको एक करनेका कुटिलतापूर्ण जाल बिछाया किन्तु वह अधिक दिनोंतक चल नहीं पाया और वह पद्धति हिन्दू-संस्कारोंके विनाशके लिये और अधिक भयावह सिद्ध हुई।

वज्रयानियों और नाथपंथियोंने मुसलमानोंके आगमनसे पहले ही समाजका विघटन प्रारंभ कर दिया था जिसकी नींव स्वयं बुद्धने ही डाली थी। जाति-पाँतिके भेद मिटाकर सबको अपने संघाराम और विहारमें स्थान देकर बुद्धने जो उदार नीति अपनाई उसका दुष्परिणाम स्वयं उन्हींके आगे प्रत्यक्ष हो गया कि स्वयं संघमें ही बड़ा अविनय फैल चला, जिसका ज्वलन्त प्रमाण विनयपिटक है। उन्हींकी परम्परामें पले हुए वज्रयानियोंने तांत्रिक प्रयोगोंके द्वारा उस अविनयको और भी अधिक उत्तेजित कर दिया। महायानियोंने बुद्धके प्राचीन सूत्रोंकी परम्परा उलटकर बोधिसत्त्व और बुद्ध बननेके फेरमें जो पन्थ चलाए उनसे अनाचार और भी बढ़ चले और इस प्रकार गुप्त साम्राज्यके प्रारंभसे हर्षवर्धनके समयतक मंजुश्री, मूलकल्प, गुह्य समाज और चक्रसंबर आदि अनेक तन्त्रोंकी रचना कर ली गई। गुह्य-समाजमें जो भैरवी-चक्र चला उसमें मांस, मदिरा, मैथुन आदिका प्रयोग बढ़ चला। यही मन्त्रयान, तन्त्रयान या वज्रयान सम्प्रदाय सातवीं शताब्दितक तो गुप्त रूपसे चलता रहा किन्तु आठवीं शताब्दिसे तो भारतके सभी बौद्ध सम्प्रदाय वज्रयान-गर्भित महायानके उपासक बन गए। बाहरसे भिक्खु दिखाई देनेवाले ये सभी सम्प्रदाय भीतरसे गुह्यसमाजी ही थे। इनके विद्वान् और सुकवि अर्द्धविक्षिप्त होकर चौरासी सिद्धोंमें प्रविष्ट होकर संध्या

भाषामें निर्गुण गाने लगे। इस प्रकार आठवींसे बारहवीं शताब्दितकका बौद्ध धर्म वज्रयान या भैरवी-चक्रका धर्म था जो अपनेको सहजयानी इसलिये कहता था कि धारणियों (सूत्रों) और पूजाओंके कारण इन्होंने निर्वाणको अधिक सरल कर लिया था। धारणी और कुछ नहीं, बड़े-बड़े बौद्ध सूत्रोंका संक्षिप्त रूप था।

सिद्धोंका प्रभाव

वज्रयानके बड़े-बड़े प्रभावशाली कवि ही चौरासी सिद्ध कहलाए। इनमेंसे जूते बनानेवाला पनहीपा, कम्बल ओढ़नेवाला कमरीपा, डमरूवाला डमरूपा और ओखलीवाला ओखरीपा कहलाता था। ये लोग मदिरामें मत्त, खोपड़ीका प्याला लिए किसी कोठरी या भयंकर जंगलमें रहा करते थे। ये कुछ ऐसी क्रियाएँ करते और चमत्कार दिखाते थे कि लोग इनसे त्रस्त होकर इनमें श्रद्धा रखने लगे। आठवींसे बारहवीं शताब्दीतक इनका ही बोलबाला रहा और जनता इन्हींके हाथोंकी कठपुतली बनी रही। इन्हें इतनी पूजा और भेंट मिलती थी कि दूसरे धर्मानुयायी भी इसी रंगमें रँग गए। इन्हींकी देखादेखी हिन्दू मन्दिरोंमें भी चढ़ावे चढ़ने लगे। मठों और मन्दिरोंमें अपार धनराशि एकत्र हो गई जिसकी गन्ध पाकर पश्चिमसे मुसलमान आक्रमण-कारियोंने अपार सम्पत्ति ही नहीं लूटी वरन् तान्त्रिकोंके तन्त्र-मन्त्र, बलि और पुरश्चरणकी पोल भी खोल दी और देखते-देखते तेरहवीं शताब्दीके आरम्भमें सारा उत्तर भारत अपने हाथमें कर लिया। नालन्दा और विक्रमशिलाके तान्त्रिक भिक्खु तलवारके घाट उतार दिए गए, अपार ग्रन्थ-राशि भस्म कर दी गई, कला-कौशलके सुन्दरतम प्रमाण ध्वस्त कर डाले गए और इस प्रकार सारा उत्तर भारत मुसलमानोंकी क्रूर बर्बरताका आखेट बन गया।

दार्शनिक परम्परा

संसारमें जितने भी धर्म और सम्प्रदाय चले, सबके दो अंग रहे— दर्शन-पद्धति और कर्मकांड। वैदिक साहित्यमें भी उपनिषद् तो दर्शन या तत्त्वज्ञानके आधार हैं और गृह्यसूत्र आदिमें कर्मकांड या श्रौताचारका वर्णन है। इसीलिये आगे चलकर पुराणोंमें जहाँ ब्रह्म, जीव और प्रकृति-पर सूक्ष्म विचार चला है वहाँ कर्मकांड-सम्बन्धी विधि-निषेध अर्थात् कर्तव्य और अकर्तव्यपर भी भली भाँति विचार किया गया है। दर्शन या तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी जो परम्परा हमारे यहाँ प्रारम्भ हुई उन छह आस्तिक दर्शनोंकी श्रेणीमें कृष्णद्वैपायन व्यासका उत्तर-मीमांसा या वेदान्तदर्शन सबसे पीछेका है। इन्हीं व्यासजीने पुराणोंकी भी रचना की और इसीलिये पुराणोंमें जो तात्त्विक विवेचन किया गया है उसका आधार वेदान्त दर्शन ही है। इस दर्शनमें ब्रह्मको ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयका एक मात्र कारण और शुद्ध सच्चिदानन्द माना गया है। इसी अद्वैतमूलक सिद्धान्तका आगे चलकर भक्ति-सिद्धान्तके रूपमें विकास हुआ। यद्यपि बीचमें बार्हस्पत्य, बौद्ध और जैन आदि नास्तिक दर्शनोंका भी प्राधान्य हुआ किन्तु कुमारिल भट्ट और शंकराचार्यके प्रबल खंडनसे ये नास्तिक दर्शन अधिक दिन टिक नहीं सके। किन्तु शंकराचार्यजीने अपने अद्वैत-वादके साथ-साथ एक मायावाद भी चलाया जिसका खंडन सर्वप्रथम रामानुजाचार्यने और सबसे अन्तमें वल्लभाचार्यजीने किया। उन्होंने वेदान्तका सिद्धान्त स्वीकार करते हुए भी मायावादसे मुक्त करनेकी चेष्टा की। वल्लभाचार्यजीका तिरोधान संवत् १५८७ में हुआ और गोस्वामीजीका आविर्भाव संवत् १५८९ (कुछके मतसे १५५४ या १५८३ या १६००) में। इसका अर्थ यह है कि गोस्वामीजी भी वल्लभाचार्यजीके लगभग समकालीन ही हैं।

शंकराचार्यके मायावादके कारण समाजमें बौद्धिक ज्ञानको इतना अधिक महत्त्व मिल गया कि आचार पीछे छूट गया और आचार छूट जानेसे समाज विश्रृङ्खल होने लगा। स्मृतिकारोंके सिद्धान्तके अनुसार 'आचारः परमो धर्मः' (आचार ही परम धर्म है)। इसीलिये आचार्योंने मायावादका निराकरण करनेके लिये प्रपत्तिवाद अर्थात् प्रपन्न या शरणागत होकर भगवानकी शरणमें जानेका मार्ग चलाया। इस मार्गमें घर छोड़ने या संसारको मिथ्या समझकर उससे विरक्त होनेकी कोई आवश्यकता नहीं रह गई। इन आचार्योंने सामाजिक व्यवस्थाओंको आधार मानकर ही अपने मतोंका प्रचार किया। एक ओर जहाँ इस प्रकारका प्रयत्न चल रहा था वहीं दूसरी ओर नाथपंथसे प्रभावित संत लोग सामाजिक आदर्शोंके बदले अटपटी बातें कहकर, हठयोगकी कुछ क्रियाओं और पारिभाषिक शब्दोंका जाल बिछाकर, शब्दाडंबर रचकर तथा चमत्कारी प्रदर्शन करके भोली-भाली अशिक्षित जनताको अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे।

ऐसी विषम परिस्थितिमें हिन्दुओंके लिये यही समझना कठिन हो गया कि हमारे लिये कौन-सा मार्ग उपयुक्त है जिसके द्वारा हम अपना कल्याण ढूँढ़ सकें। इसी बीच हिन्दू और मुसलमानोंके सम्पर्क-कालमें कुछ सन्तोंने मुसलमानोंके एकेश्वरवादका हिन्दुओंके ब्रह्मवादसे एकीकरण करते हुए मध्यम मार्ग निकालकर समस्त भारतवर्ष-भरमें एक आन्दोलन खड़ा किया जिसे आचार्योंने 'निर्गुण सम्प्रदाय' कहा है और जिसके संचालकोंको लोग 'सन्त' कहते हैं। उनमें कबीर, दादू, नानक, नामदेव आदि अनेक महापुरुषोंने अपनी-अपनी शक्ति-भर सत्पथ ग्रहण करने, शुद्ध आचरणका व्यवहार करने और पारस्परिक स्नेह रखनेका उपदेश दिया। किन्तु इनमेंसे किसीने भी न तो कोई समाजका आदर्श रक्खा न सामाजिक व्यवस्थाके

लिये उपाय ही किया। उलटे उन्होंने जिस प्रकारके एकीकरणका उपदेश दिया वह समाजको विश्रृङ्खल करनेमें ही अधिक सहायक हुआ, संघटित करनेमें कम; क्योंकि उसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनेको ब्रह्मवादी बताकर नेतृत्व करने लगा, हिन्दू सामाजिक व्यवस्थाकी उन्नतिके लिये किसीने कुछ नहीं किया। चारों ओर राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक जीवनमें अराजकता फैल गई, सब मर्यादाएँ टूट गईं और इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजी जैसे भोले-भाले सहिष्णु सन्तको भी निर्गुनिए साधुओंकी अलख बानीपर झुँझलाकर कहना पड़ा—

हम लखि, हमहिं, हमार लखि हम हमारके बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै, राम-नाम जपु नीच॥

—o—

३

गोस्वामीजीका जीवन-वृत्त

वाल्मीकि तुलसी भयौ

राजनीतिक, सामाजिक, दार्शनिक तथा व्यावहारिक दृष्टिसे त्रस्त, पीड़ित और पददलित हिन्दू जाति एक तो यों ही आधारहीन हो रही थी, इसपर वज्रयानियों, नाथपंथियों तथा सन्तोंके अनेक सम्प्रदायोंने उसे ऐसी उलझनमें डाल दिया कि किसीकी यही समझमें नहीं आ रहा था कि हमारा उद्धार किस प्रकार होगा। हिन्दू शासकोंमें कोई शक्ति नहीं रह गई थी। जनतामें भी कोई संघटित शक्ति नहीं थी। यवन शासकोंके अधीन रहकर खुल्लमखुल्ला धार्मिक आचरणका पालन भी असंभव हो गया था। ऐसी अवस्थामें और इस भयंकर नैतिक अन्धकारके युगमें सहसा गोस्वामी तुलसीदासजीका आविर्भाव हुआ, जिन्होंने एकान्तमें बैठकर

अपनी 'स्वान्तः सुखाय' की हुई रचनासे ऐसी अमृतवर्षा की कि मुमूर्षु अवस्थामें पड़ा हुआ हिन्दू समाज सहसा चेतन होकर जाग उठा और उनका सारस्वत काव्य 'रामचरित-मानस' मूर्ख और पंडित, धनी और निर्धन, राजा और प्रजा, कुटी और राजप्रासाद सबमें समान रूपसे समादृत होकर, जन-मन-रंजक बनकर आजतक हमें प्रकाश और शक्ति देता आ रहा है।

जीवनवृत्त

गोस्वामीजीने अपने किसी ग्रन्थमें अपने सम्बन्धमें किसी प्रकारका कोई परिचय नहीं दिया। उन्होंने नरकाव्यकी रचना ही नहीं की। अपने मित्र टोडरके सम्बन्धमें जो चार दोहे लिखे हैं उनके अतिरिक्त उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह सब रामकाव्य या नारायणकाव्य ही समझना चाहिए। अतः, उनके ग्रन्थोंमें जो छिट-फुट कुछ थोड़े-से परिचयात्मक अंश मिलते हैं उन्हींके आधारपर लोगोंने अनेक खपुर बनाए हैं और उन्हींको गोस्वामीजीके सम्बन्धमें आन्तरिक प्रमाण मानकर लिखा-पढ़ा गया है। इसके अतिरिक्त उनके सम्बन्धमें जितना कुछ विवरण मिलता है उसका आधार जनश्रुतियाँ ही हैं। उन्हीं प्रमाणोंके आधारपर गोस्वामीजी-का जीवनवृत्त विद्वानोंने संकलित किया है।

भारतवर्षके महापुरुषों और महाकवियोंकी कुछ एक विचित्र परम्परा ही रही है कि उन्होंने अपने सम्बन्धमें कभी कोई विवरण नहीं दिया। महाकवि कालिदासके सम्बन्धमें अभीतक विवाद चला ही आ रहा है। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजीके सम्बन्धमें भी अभीतक कोई ऐसे प्रमाण नहीं मिल सके जिनसे उनका जीवनवृत्त निश्चित रूपसे प्रामाणिक बनाकर लिखा जा सके।

जन्मकाल और जन्मस्थान

गोस्वामीजीकी जीवन-कथामें सबसे अधिक विवादग्रस्त प्रश्न है उनके जन्मकाल और जन्मस्थानका निश्चय। आज व्यापक रूपसे सम्पूर्ण भारतमें श्रावण शुक्ला सप्तमीको तुलसी-जयन्ती मनाई जाती है, जिसका आधार पहले तो यह दोहा था—

संबत सोरहसै असी, असी गंगके तीर।
स्रावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ सरीर॥

अर्थात् पहले श्रावण शुक्ला सप्तमीको लोग उनकी पुण्य तिथि या गोलोक-वास-तिथि मनाते थे किन्तु गोसाइँ-चरित्रमें जो दो दोहे आए हैं—

पन्द्रहसैं चौवन बिसैं, कालिन्दीके तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरयौ शरीर॥

और—

संबत सोरहसै असी, असी गंगके तीर।
श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यौ सरीर॥

इनके आधारपर अब गोस्वामीजीकी जन्म-तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी मानी जाती है और उसी दिन जयन्ती मनाई जाती है। तुलसी-साहबके घटरामायणमें गोस्वामी तुलसीदासजीकी जन्म-तिथि भाद्रपद शुक्ला एकादशी दी गई है किन्तु यह ग्रन्थ इतना अप्रामाणिक और अविश्वस्त है कि किसीने उसपर ध्यान देनेकी आवश्यकता भी नहीं समझी।

गोस्वामीजीका जन्म किस संवत्‌में हुआ यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है। उनके सम्बन्धमें जो प्राचीन सामग्री उपलब्ध है उसमें नाभादासजीके भक्तमालका छप्पय, प्रियादासजीकी उस छप्पयपर टीका, बाबा बेनी-माधवदासजीका गोसाइँ-चरित्र और मूल गोसाइँ-चरित्र तथा बाबा

रघुबरदासजीका तुलसीचरित ही मुख्य हैं जिनके साथ अब भवानीदासका 'गोसाइँ-चरित्र' भी जुड़ गया है। नाभादासजीने गोस्वामीजीके सम्बन्धमें केवल इतना ही लिखा है—

त्रेता काव्य निबन्ध करी सतकोटि रमायन
इक अच्छर उच्चरै ब्रह्महत्यादि परायन
अब भक्तन सुख देन बहुरि लीला बिस्तारी
रामचरन रस-मत्त रहत अह-निसि ब्रतधारी
संसार अपारके पार को सुगम रीति नौका लयौ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयौ॥

किन्तु इस पदमें भी गोस्वामीजीके जन्मसंवत्का कोई विवरण नहीं मिलता।

प्रियादासजीने अपनी टीका (१६९६ में प्रस्तुत) में गोस्वामीजीके सम्बन्धमें दस कवित्त लिखे हैं जिनमें उन्होंने गोस्वामीजीके सम्बन्धकी चमत्कारपूर्ण घटनाओंका उल्लेख किया है किन्तु जन्म-संवत्का कोई उल्लेख नहीं किया।

तुलसीचरितका उल्लेख सर्वप्रथम 'मर्यादा' पत्रिका (१९६९) में श्रीइन्द्रदेवनारायणने किया था जिसमें उन्होंने लिखा था कि गोस्वामीजीके प्रिय शिष्य रघुबरदासने 'तुलसीचरित' नामका एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा था जिसके अवध, काशी, मथुरा और नर्मदा नामके चार खंडोंमें एक लाख तैंतीस हजार नौ सौ बासठ छन्द हैं। इन्द्रनारायणजीने उस लेखमें इस ग्रन्थके अवध खंडसे बयालीस चौपाइयाँ और ग्यारह दोहे उद्धृत किए हैं किन्तु इस ग्रन्थका दर्शन और किसीको कभी प्राप्त नहीं हुआ। इसमें लिखा है कि कसया (देवरिया) जनपदके परशुराम मिश्र तीर्थाटनके लिये चित्रकूट गए और वहीं राजापुरमें जा बसे। उनके

पुत्र शंकर मिश्र, शंकरके रुद्रनाथ, रुद्रनाथके मुरारि और मुरारिके पुत्र तुलाराम हुए जो आगे चलकर तुलसीदास कहलाए। इस विवरणके साथ ही उसमें यह भी लिखा है कि उनके पूर्वज धनी मारवाड़ियोंके गुरु होनेके कारण अत्यन्त सम्पन्न थे और उनके पिताने तीन विवाह किए थे जिनमेंसे अंतिम विवाहमें उनके पिताको छह सहस्र रुपए दहेजमें मिले थे। यह सारा विवरण प्रत्यक्षतः इतना असत्य है कि गोस्वामीजीके 'बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन' की संगति इससे नहीं बैठती। धनी मारवाड़ियोंके गुरु होनेका प्रमाण इसलिये भी ठीक नहीं है कि मारवाड़ियोंके गुरु गौड़ ब्राह्मण ही होते हैं। अतः, यह सब कोरी कल्पना ही है।

गोसाईंचरित्र और मूल गोसाईंचरित्र बाबा बेनीमाधवदासजीकी रचनाएँ बताई जाती हैं। इस गोसाईंचरित्रका उल्लेख पहले-पहल शिवसिंह सेंगरने अपने शिवसिंह-सरोजमें करते हुए लिखा है—'इस गोसाईंचरित्रके लिखनेवाले बाबा बेनीमाधवदास पसका ग्राम-निवासी थे जो गोस्वामीजीके साथ बहुत दिनतक रहे।' सेंगरजीने अपने विवरणमें इस ग्रन्थकी कुछ पंक्तियाँ भी उद्धृत की हैं। इस ग्रन्थका कहीं कोई ठिकाना ही नहीं था किन्तु रामचरणदासजीने नवलकिशोर प्रेससे मानसकी जो टीका प्रकाशित कराई, उसीके साथ गोसाईंचरित्र नामका एक और ग्रन्थ प्रकाशित कराया जिसमें शिवसिंह सेंगर-द्वारा उद्धृत पंक्तियाँ भी हैं।

मूल गोसाईंचरित्र भी बाबा बेनीमाधवदासकी ही रचना बताई जाती है। आचार्य श्यामसुन्दरदासजीका मत है कि यह ग्रन्थ गोसाईं-चरित्रका संक्षिप्त संस्करण जान पड़ता है और उपलब्ध भी है। इसलिये इसीपर विचार करना ठीक होगा। सबसे पहले १९८२ में श्रीरामकिशोर

शुक्ल द्वारा प्रस्तुत मानसकी टीकाके साथ यह ग्रंथ संवत् १९८२ में नवल-किशोर प्रेससे प्रकाशित हुआ और सभीने इसे प्रामाणिक जीवन-चरित मान भी लिया। यह पोथी रामकिशोर शुक्लको सहसा अयोध्याके कनक-भवनसे प्राप्त हुई और विचित्र बात यह है कि यद्यपि इसकी रचना संवत् १६८७ में ही हो गई थी—

> सोरहसै सत्तासि सित, नवमी कातिक मास।
> बिरचा यहि नित पाठ हित, बेनीमाधवदास ॥

किन्तु १९८२ से पूर्व इस ग्रन्थका कहीं उल्लेख नहीं मिलता और फिर गोसाईं-चरित्रकी रचना 'नित पाठ हित' करनेका कोई तुक नहीं दिखाई पड़ता क्योंकि आजतक भारतवर्षमें 'नित पाठ हित' किसीका जीवन-चरित नहीं लिखा गया। यह पोथी आचार्य श्यामसुन्दरदासने देखी थी और यह बताया था कि जिस मूल पुस्तीसे इसकी प्रतिलिपि की गई वह पुस्ती गया ज़िलेके रामधारी पांडेयके पास है, जिनके पिताको यह पोथी कहीं गोरखपुरमें मिली थी और जिसकी प्रतिलिपि संवत् १८४८ की विजयादशमीको पूरी हुई। आचार्य श्यामसुन्दरदासजीने इसे प्रामाणिक मानते हुए कहा है कि इस ग्रन्थके मूल लेखक बेनीमाधव-दासजी थे जो इस ग्रन्थमें आए हुए विवरणके अनुसार संवत् १६१६ के आसपास गोस्वामीजीके सम्पर्कमें आए और तबसे नित्य उनके साथ रहे। अतः, जो व्यक्ति इतने अधिक कालतक उनके साथ रहा हो उसकी रचना अप्रामाणिक कैसे मानी जा सकती है ?

किन्तु डा० माताप्रसाद गुप्त तथा अन्य अनेक विद्वानोंने अनेक ऐतिहासिक प्रमाणोंसे इस ग्रन्थको सर्वथा जाली सिद्ध किया है और बताया है कि इसमें आई हुई कई घटनाएँ और तिथियाँ इतिहाससे मेल

नहीं खातीं। आचार्य शुक्लजीने इसकी अप्रामाणिकता सिद्ध करते हुए लिखा है कि इसमें—

देखिन तिरषित दृष्टिसे, सब जन कीन्हीं संकरम् ।
दिव्याषर सों लिख्यौ पढ़ें धुनि सुनै सत्यं शिवं सुन्दरम् ॥

इसमें आई हुई 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' पदावली स्पष्ट बताती है कि यह आधुनिक कालकी रचना है। यद्यपि लेखकने तिथि, वार नक्षत्रकी गणना करके ऐसे कौशलसे सब वृत्त जोड़े हैं कि पकड़में न आ सके। पर चोरी कहीं छिपाए छिपती है? शुक्लजीने यह ठीक ही लिखा है कि अयोध्यामें एक अत्यन्त निपुण दल है जो लुप्त रचनाओंको समय-समयपर प्रकट करता रहता है। यह मूल गोसाईंचरित्र भी इसी प्रकारके साम्प्रदायिक दलकी करतूत है।

गोस्वामीजीकी जीवनीके सम्बन्धमें लिखे या गढ़े हुए इन तीनों ग्रन्थोंमें उनका जन्म संवत् १५५४ ही दिया हुआ है जिससे गोस्वाजीकी आयु १२६ वर्षकी सिद्ध होती है। यद्यपि गोस्वामीजी जैसे महापुरुषके लिये इतनी लम्बी आयु पाना असंभव नहीं है किन्तु ऐतिहासिक घटनाओंकी ऐसी असंगतियाँ आ जाती हैं कि यह संवत् स्वीकार नहीं किया जा सकता।

काशीमें रामनगरके चौधरी छुन्नीसिंहके यहाँ गोस्वामीजीके सम-कालीन भगवान्के पुत्र श्रीकृष्णदत्त मिश्रकी रची हुई गौतमचन्द्रिका नामकी पुस्तकके कुछ पृष्ठ दोहे-चौपाइयोंमें उनकी बहीपर उतारे हुए रक्खे हैं, जिनमें उक्त मिश्रजीने अपने वंश-परिचयके प्रसंगमें गोस्वामीजीके सम्बन्धमें पर्याप्त विवरण दिया है। इस पोथीके अनुसार गोस्वामीजी अस्सी वर्षकी आयुमें संवत् १६८० में साकेतवासी हुए। इसका अर्थ यह है कि उनका जन्म संवत् १६०० में हुआ। ये भगवान-सुत कृष्णदत्त

मिश्र गोस्वामीजीके निकटवर्ती अवश्य थे क्योंकि टोडरके पंचनामेपर भी इसी नामसे उनके हस्ताक्षर हैं। इस पोथीके कुछ विवरण जनश्रुतियोंसे मिलते भी हैं किन्तु आगे हम प्रमाणपूर्वक स्पष्ट करेंगे कि उनका जन्म-संवत् १६०० हो ही नहीं सकता।

मिर्ज़ापुरके प्रसिद्ध रामायणी पंडित रामगुलाम द्विवेदीने परम्परासे प्रसिद्ध संवत् १५८९ में ही गोस्वामीजीका आविर्भाव माना है और यही मत अधिकांश विद्वानोंको मान्य भी है। यही डा० ग्रियर्सनने भी माना है। यद्यपि शिवसिंह सेंगरने उनका जन्मसंवत् १५८३ भी लिखा है परन्तु ये सभी मत अमान्य और अप्रामाणिक हैं। अतः १५८९ का श्रावण शुक्ला सप्तमीको ही गोस्वामीजीका जन्म-दिवस मनाना उपयुक्त है।

जन्म-स्थान

गोस्वामी तुलसीदासजीके जन्म-स्थानका प्रश्न भी अत्यन्त विवाद-ग्रस्त है। इस सम्बन्धमें दो मत अधिक प्रचलित हैं—सोरों और राजापुर। तुलसीका जन्म-स्थान सोरों बतानेका श्रेय लाला सीता-रामको ही है जिसका आधार उन्होंने यह दोहा रक्खा—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकरखेत।

इस मतके प्रकाशित होते ही अनेक लेखक उन्हें सोरोंका सिद्ध करनेके लिये जुट गए जिनमें गोविन्दवल्लभ भट्ट, गौरीशंकर द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, रामदत्त भारद्वाज, भद्रदत्त शर्मा और दीनदयाल गुप्त मुख्य हैं। गोविन्दवल्लभ भट्टने तो सोरोंके योगमार्ग मुहल्लेमें गोस्वामीजीका घर भी ढूँढ़ लिया और बताया कि वे भी सनाढ्य शुक्ल थे, उनके गुरु नरहरि चौधरी भी सनाढ्य थे और उनका स्थान भी आज-तक बना हुआ है। इतना ही नहीं, उन्होंने तुलसीदासजीकी ससुरालके

खँडहर भी पहचान लिए और यह भी लिख दिया कि तुलसीदास जब राजापुरमें आ बसे तो उनके भाई नन्ददासजीने अपने पुत्र कृष्णदासजीको उन्हें मनाकर लानेको भी भेजा पर वे न लौटे। ऐसी ही मनगढ़न्त बातोंसे उनका लेख भरा पड़ा है। सोरोंवालोंने तो इसी झोंकमें सूकरक्षेत्र-माहात्म्य और गोस्वामीजीकी पत्नी रत्नावलीके दोहोंका भी संग्रह कर डाला।

पंडित चन्द्रबली पांडेयने अपनी पुस्तक 'तुलसीकी जीवन-भूमि' में बताया है कि गोस्वामीजीका जन्म रामके जन्म-स्थान अयोध्यामें बाबरी मस्जिदके सामने हुआ था। उनके तर्कका आधार भवानीदासका गोसाईं-चरित्र है जिसमें गोस्वामीजीका जन्मस्थान 'रामपुर' गाँव बताया है। इसी राम-पुरको उन्होंने रामका पुर अर्थात् 'अयोध्या' मान लिया है। किन्तु यदि अयोध्यामें वे उत्पन्न हुए होते तो राजापुरमें जन्म लेनेकी कोई परिपाटी ही अनुश्रुतिमें प्रचलित न हुई होती क्योंकि अयोध्या इतना प्रसिद्ध स्थान है कि इतना बड़ा महात्मा यदि वहाँ जन्म लेता तो अनुश्रुतियाँ उसे ले जाकर राजापुरसे सम्बद्ध न करतीं और अयोध्याकी वैष्णव मंडलियाँ अबतक तिलका ताड़ बना डालतीं। गोस्वामीजीने भी अयोध्याको कभी रामपुर नहीं कहा और अन्य किसीने भी अयोध्या को आजतक रामपुर नहीं लिखा। अतः, पांडेयजीका सारा पांडित्यपूर्ण प्रयास केवल कष्ट-कल्पना मात्र ही है। अतः, तुलसी-चरित्र और मूल गोसाईं-चरित्रमें तथा अनुश्रुतिमें जो उन्हें राजापुरका निवासी बताया गया है वही ठीक है और यह भी ठीक है कि उनका जन्म संवत् १५८९ में वर्तमान बाँदा ज़िलेके राजापुर ग्राममें यमुनाके तटपर हुआ। आज भी गोस्वामीजीकी सबसे पुरानी मूर्त्ति कालिंजरके दुर्गसे आगे कोटितीर्थके पास है जिसकी ओर किसीका ध्यान-तक नहीं गया है।

कुल और बाल्यकाल

मूल गोसाईं-चरित्रमें इन्हें पतियौजाका दुबे बताया गया है और तुलसी-चरित्रमें इन्हें गानाका मिश्र लिखा है। किन्तु अनुश्रुतियोंके अनुसार उनके कुलके सम्बन्धमें यह उक्ति प्रसिद्ध है—

तुलसी परासर गोत दुबे पतियौजाके ।

अतः, उन्हें गानाका मिश्र मानना ठीक नहीं प्रतीत होता। निष्कर्ष यह है कि गोस्वामीजी राजापुरमें पाराशर-गोत्रीय सरयूपारीण दुबे ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुए थे। गौतमचन्द्रिकाके रचयिता कृष्णदत्तने भी यही स्वीकार किया है। मिश्र बन्धुओंने इन्हें कान्यकुब्ज सिद्ध करनेकी बहुत चेष्टा की किन्तु वे सफल न हो पाए। इसी प्रकार सनाढ्य होनेकी बात भी किसी विद्वान्को ठीक नहीं जँची। कुछ लोगोंने निम्नांकित पदके अनुसार इन्हें शुक्ल सिद्ध करनेकी भी चेष्टा की किन्तु सुकुलका अर्थ तो उत्तम कुल है, शुक्ल नहीं है—

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारिको ।

परम्परासे प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजीके पिताका नाम आत्माराम दुबे और माताका हुलसी था। गोस्वामीजीने अपने माता-पिताका उल्लेख अपनी किसी रचनामें नहीं किया है। कुछ विद्वानोंने रामचरित-मानसकी निम्नांकित अर्धालीके आधारपर इनकी माताका नाम अन्तःसाक्ष्यके अनुसार 'हुलसी' मान लिया है—

रामहिं प्रिय पावन तुलसी-सी ।
तुलसिदास हिय हित हुलसी-सी ॥

यही बात रहीमके निम्नांकित दोहार्द्धसे भी पुष्ट होती है—

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय ।

अपने मूल नाम 'रामबोला' के सम्बन्धमें गोस्वामीजीने विनय-पत्रिका और कवितावलीमें संकेतसे कहा है—

रामको गुलाम नाम रामबोला राख्यौ राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं ॥ —'विनयपत्रिका'
साहेब सुजान जिन स्वानहूको पच्छ कियौ ।
रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहिको ॥ —'कवितावली'

यह 'रामबोला' नाम बदलकर कब तुलसीदास हो गया इसका प्रमाण अभीतक नहीं मिला।

गोस्वामीजीके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि अभुक्त मूल नक्षत्रमें उत्पन्न होनेके कारण इनके पिताने इन्हें छोड़ दिया क्योंकि मुहूर्त्त चिन्तामणिमें लिखा है—

अथोचुरन्ये प्रथमाष्टघट्यो मूलस्य शांक्रान्तिमपंचनाड्यः ।
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पिता ह्यष्टसमा न पश्येत् ॥

[मूलकी पहली आठ घड़ियाँ और ज्येष्ठाकी अन्तिम पाँच नाड़ियाँ अभुक्त मूल कहलाती हैं। इनमें जो बालक उत्पन्न हो उसे या तो पिता छोड़ दे या आठ वर्षतक उसक मुख न देखे ।] परम्परासे प्रसिद्ध है कि पिताने उन्हें त्याग दिया और तब माताने वह बच्चा पालन-पोषणके लिये अपनी दासी मुनियाँको सौंप दिया। यह विवरण मूल गोसाईं-चरित्रमें भी दिया हुआ है। धर्मभीरु पिताके सम्मुख उस अशुभ मुहूर्तमें उत्पन्न हुए बालककी समस्या अवश्य ही विचारणीय रही होगी और उन्होंने दोषसे बचनेके लिये उसे मुनियाँ दासीके हाथ सौंपनेकी स्वीकृति दे दी होगी। यदि गोस्वामीजीको बाल्यावस्थामें ही फेंक दिया जाता और साधुओं-द्वारा उनका लालन-पालन होता तो उन्हें स्वयं या अन्य

लोगोंको यह ज्ञात ही न हो पाता कि यह किस परिवार या जातिका बालक है। मुनियाँने अपने घर उस बालकका पालन-पोषण किया पर जब मुनियाँका विवाह हो गया और वह ससुराल जाने लगी तो बच्चेको भी साथ लेती गई। संयोगवश मुनियाँ भी पाँच वर्ष पश्चात् मर गई। उस समय गोस्वामीजी पाँच वर्षके थे। जब उनके घर सूचना भेजी गई तब उनके पिताने बालकको अपने यहाँ रखना स्वीकार नहीं किया। उसमें कई कठिनाइयाँ रही होंगी। एक तो ज्यौतिषके प्रमाणकी, जिसके अनुसार उनके पिताको स्वयं अपनी मृत्युका भय था और दूसरे दासीके घर पले रहनेके कारण जातिवाले उनका विरोध करते। ऐसी स्थितिमें यही ठीक समझा गया कि बालकको घर न बुलाया जाय। माता भी उसे जन्म देनेके तीन-चार दिन पश्चात् ही चल बसी। वह होती तो संभवतः कुछ प्रयत्न अवश्य करती। अतः, मुनियाँके ससुरालवालोंने उस बच्चेको असहाय छोड़ दिया। सब ओरसे निराश्रित होकर वह बालक माँग-जाँचकर खाने लगा। इन सब बातोंकी पुष्टि निम्नांकित वचनोंसे भी होती है—

मातु-पिता जग जाइ तज्यो।—कवितावली

जननी जनक तज्यो जनमि ॥ २२७ ॥

तनु-जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु-पिता हू ॥—विनयपत्रिका ॥ २७५ ॥

बारेते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन जानत हौ चारि फल चारि ही चनकको ॥

विद्याध्ययन

गोस्वामीजी जब इस प्रकार माँग-जाँचकर पेट भर रहे थे तभी सूकर-खेत (गोंडा ज़िलेमें सरयू-तटपर) के महात्मा नरहरिदास तीर्थाटन करते हुए चित्रकूट पहुँच गए जहाँ मार्गमें यह अनाथ बालक उन्हें मिल गया। इसके गुणोंपर मुग्ध होकर और इसकी दयनीय दशापर द्रवित

होकर वे इसे अपने साथ ले गए। पाँच वर्षके बालकने अपना कुल और नाम अपने गुरु नरहरिदासको बता ही दिया होगा इसलिये ब्राह्मणका तेजस्वी पुत्र जानकर उसके प्रति उनका स्वाभाविक आकर्षण हो ही गया होगा। इस प्रकार रामबोलाको श्रीनरहरिदासजी अपने साथ सूकरखेत लिवाते ले गए और वहीं अपने यहाँ उस रामभक्त महात्माने इस राम-राम कहनेवाले रामबोलाको अपने इष्टदेव रामकी कथा बार-बार सुनाई जिससे प्राक्तन संस्कारके कारण रामबोलाके मनमें रामकी भक्ति और भी दृढ हो गई।

यही रामबोलाकी प्रारंभिक शिक्षा थी और इन्हीं प्रथम गुरुकी वन्दना गोस्वामीजीने अपने रामचरित-मानसके प्रारंभमें करते हुए अत्यन्त कृतज्ञताके साथ स्वीकार किया है—

> मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
> समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

उन्होंने स्पष्ट रूपसे गुरुका नाम लेकर उनकी वन्दना की है—

> बन्दौ गुरुपद कंज, कृपासिंधु नररूप-हरि।
> महामोह-तम-पुंज, जासु कृपा-रविकर-निकर॥

कुछ समय पश्चात् नरहरिदासजी काशीवास करनेकी दृष्टिसे काशीमें पंचगंगा घाटपर स्वामी रामानन्दजीके स्थानपर आकर रहने लगे। वहीं तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् शेषसनातनजी भी रहते थे। श्रीनरहरिदासजीने गोस्वामीजीको शेषसनातनजीके हाथ सौंप दिया जहाँ उन्होंने पन्द्रह वर्ष तक वेद, वेदांत, दर्शन, इतिहास, पुराण आदिकी शिक्षा पाई।

अध्ययन समाप्त हो चुकनेपर गोस्वामीजी अपने जन्मस्थान राजापुर चले आए। किन्तु वहाँ लौटनेपर उन्हें इतना ही ज्ञात हो पाया कि

आत्माराम दुबेके घरका खँडहर भर बचा हुआ है और उनके परिवारमें कोई जीवित नहीं है। इसके पश्चात् रामबोला (अब तुलसीदास) ने वहीं घर बनाकर रहना प्रारंभ किया और वाल्मीकीय रामायणकी कथा कह-कहकर अपनी जीविका चलानी प्रारम्भ कर दी।

कहा जाता है कि एक बार यमद्वितीयाके दिन यमुनाके उस पार तारपिता ग्रामके दीनबन्धु पाठक नामके एक सज्जन स्नानके लिये आए और उन्होंने तुलसीकी रामकथा सुनी। कथावाचकके स्वरकी मधुरता और उनकी कथा-शैलीपर मुग्ध होकर उन्होंने अपनी विदुषी कन्या रत्नावलीका विवाह उनके साथ कर दिया। तुलसीदासजी अपनी सुन्दरी तथा गुणवती पत्नीसे स्वभावतः अत्यधिक स्नेह करते थे और एक क्षणके लिये भी उसका वियोग नहीं सह सकते थे। एक बार इनकी पत्नीका भाई इनकी अनुपस्थितिमें रत्नावलीको अपने साथ तारपिता लेता चला गया। जब ये घर लौटकर आए और इन्हें सारा विवरण ज्ञात हुआ तो ये यमुना पार करके अपनी ससुराल जा पहुँचे। इनके इस कामुकता-पूर्ण व्यवहारसे खीझकर रत्नावलीने इनसे एकान्त पाकर कहा—

लाज न लागत आपको, दौरे आएहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेमको, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चरममय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम मंह, होति न तौ भवभीति॥

यह सुनते ही उनके ज्ञाननेत्र खुल गए और वे बिना कुछ कहे-सुने वहाँसे चल पड़े और सीधे काशी आकर उन्होंने साँस ली। यहाँ आकर वे विरक्त हो गए।

तीर्थाटन

गौतम-चन्द्रिकाके अनुसार गोस्वामीजी अट्ठारह वर्षकी अवस्थामें काशी लौटे और यहाँ कुछ दिन रहकर तीर्थाटनके लिये निकल गए। तीन वर्ष-तक वे भारतके विभिन्न तीर्थोंमें घूमते रहे। इसी प्रसंगमें हिमालयमें उन्होंने कैलास और मानसरोवरका जो दिव्य दर्शन किया उसीसे उन्हें रामायणको रामचरित-मानसके रूपकके साथ रचनेकी दैवी प्रेरणा मिली। इसीलिये तीर्थाटनसे अयोध्या लौटकर संवत् १६३१ की रामनवमीके दिन उन्होंने प्रसिद्ध महाकाव्य रामचरित-मानसकी रचना प्रारंभ कर दी—

संबत सोरह-सै एकतीसा।
करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥
नवमी भौम बार मधु मासा।
अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥

वैष्णव-चन्द्रिकाके रचयिताने गोस्वामीजीकी निधन-तिथि १६८० लिखी है और बताया है कि ८० वर्षकी अवस्थामें उनका निधन हुआ। इस गणनासे उनका जन्म १६०० में हुआ और ३१ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने मानसकी रचना प्रारंभ कर दी। मूल गोसाईंचरित्रके अनुसार मानसकी रचना ७७ वर्षकी अवस्थामें आरम्भ हुई। किन्तु इन दोनों अवस्थाओंके बीचकी यही तिथि ठीक है कि १५८९ में गोस्वामीजीका जन्म हुआ और १६३१ में अर्थात् ४२ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने रामचरित-मानसकी रचना की। यद्यपि इस बातका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है कि मानसकी रचना पूर्ण कब हुई किन्तु प्रसिद्धि यही है कि संवत् १६३३ के मार्गशीर्ष मासमें रामविवाहकी तिथि अर्थात् अगहन सुदी नवमीको रचना पूर्ण हुई। अतः इस गणनाके अनुसार दो वर्ष सात महीने छब्बीस दिनमें रामचरितमानस पूर्ण हुआ।

काशी-निवास

कहा जाता है कि बालकाण्डसे आरण्यकाण्ड तककी रचना अयोध्यामें, किष्किन्धाकाण्डकी रचना काशीमें और शेषमेंसे कुछ अयोध्यामें और कुछ काशीमें हुई। इसका अर्थ यह है कि गोस्वामीजीके जीवनका शेष भाग अयोध्या और काशीमें ही बीता। काशीमें गोस्वामीजी पहले हनुमान-फाटकमें, फिर गोपाल-मन्दिरमें और उसके पश्चात् कुछ दिन प्रह्लादघाटपर रहकर संकटमोचन चले गए और वहाँसे अस्सीपर आ गए जहाँ उन्होंने गंगातटपर अस्सी-गंगा संगमके पास तुलसीघाटपर हनुमानजीकी मूर्ति स्थापित की और वहाँ राममंदिर बनवाया। यहींपर उन्होंने अपने लिये एक गह्वर बनवाया जिसमें वे अन्तकाल तक निवास करते रहे।

गोस्वामीजीके अनन्य भक्त, मित्र और सेवक चौधरी तोडर या टोडर भदैनी आदि चार गाँवोंके भूमिपति थे जिनकी परम्परा आजतक चली आ रही है। यद्यपि गोस्वामीजीने नर-काव्य कहीं नहीं रचा किन्तु टोडरके प्रति उनका इतना अगाध स्नेह था कि उनके निधनपर गोस्वामीजीने चार दोहे लिख ही डाले—

चार गाँवको ठाकुरो, मनको महा महीप।
तुलसी या कलिकालमें, अथयो टोडर दीप॥
तुलसी रामसनेहको, सिरपर भारी भार।
टोडर काँधा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल, टोडर गुनगन बाग।
ये दोउ नैनन सींचिहौं, समुझि समुझि अनुराग॥
रामधाम टोडर गए, तुलसी भए असोच।
जिय को मीत पुनीत बिन, यही जानि संकोच॥

वल्लभ सम्प्रदायके गोसाइयोंके उपद्रवसे तंग आकर ही गोस्वामीजी भदैनी चले आए थे जहाँ टोडरने ही उनके लिये सारी व्यवस्था की थी। आज भी टोडरके वंशज गोस्वामीजीकी निधन-तिथिको श्राद्ध-जैसा व्यवहार करते हैं।

रामलीलाका प्रवर्त्तन

अपने अस्सीके निवास-कालमें गोस्वामीजीने रामलीलाका आयोजन किया जो आजतक बराबर होती चली आ रही है। उस समय काशीमें रामलीलाके लिये बनाई हुई लंका आज पूरी बस्ती हो जानेपर भी बसी हुई है और वहाँ उसी उत्साह और लगनसे पूरी लीला होती है। गोस्वामीजीने केवल रामलीला ही नहीं कृष्णलीला (कालिय-दमन लीला) भी आरम्भ की थी जो आजतक होती चली जा रही है। इस प्रकार हिन्दी रंगशालाके भी आदि प्रवर्त्तक गोस्वामी तुलसीदासजी ही थे।

यद्यपि गोस्वामीजीका स्थायी निवास काशीमें हो गया था फिर भी समय-समय पर वे अयोध्या और चित्रकूट आते-जाते रहते थे। अयोध्या तो उनके इष्टदेवकी जन्मभूमि ही थी। उसके सम्बन्धमें गोस्वामीजीके मनमें जो भाव रहे होंगे वह स्वयं रामके मुखसे सुनिए—

पुनि लखु अवधपुरी अति पावनि।
त्रिबिध ताप भवरोग नसावनि॥
सीता सहित अवध कहुँ, कीन्ह कृपालु प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित, पुनि पुनि हरषित राम॥

आगे चलकर रामचन्द्रजीने अपने साथियोंसे कहा है—

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना।
बेद-पुरान बिदित जग जाना॥

अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ ।
यह प्रसंग जानहिं कोउ कोऊ ॥

अयोध्याके अतिरिक्त चित्रकूटके प्रति भी गोस्वामीजीकी वैसी ही अनुरक्ति है—

निर्भर प्रेम मगन मै जाना ।

क्योंकि चित्रकूटपर ही उन्हें अपने आराध्य देव रामके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ । इसीलिये उन्होंने कहा है—

चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ ।
सैल हिमाचल आदिक जेते ।
चित्रकूट जस गावहिं तेते ॥
चित्रकूटके बिहग मृग, बेलि बिटप तृन जाति ।
पुन्य-पुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन-राति ॥ (रामचरितमानस)

अब चित चेत चित्रकूटहिं चलु ।
भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुबर-बिहार-थलु ॥ (विनयपत्रिका)
सब दिन चित्रकूट नीको लागत ॥ (विनयपत्रिका)

यह भी इस बातका प्रमाण है कि गोस्वामीजीका विशेष प्रेम चित्रकूटसे ही था । यदि एटा ज़िलेका सोरों उनका जन्म-स्थान और गुरु-स्थान होता तो वहाँका कहीं किसी प्रकारका कोई तो वर्णन गोस्वामीजीने किया होता । किन्तु केवल एक स्थानपर सूकरखेत आ जानेसे तुलसीके जीवनकी समस्त नाट्यस्थली उठाकर सोरोंमें नहीं सरका दी जा सकती ।

भाषामें रामायण

जिस समय गोस्वामीजी काशीमें रहते थे उस समय काशीके विद्वानोंको इस बात पर बड़ा क्षोभ हुआ कि उन्होंने रामायणकी रचना

भाषामें की। उन विद्वानोंने स्पष्ट रूपसे अपना विरोध जताते हुए कहा कि इससे वाल्मीकिजीके रामायणका आदर कम हो जायगा। यह प्रश्न जब तत्कालीन विद्वच्छिरोमणि श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीसे पूछा गया तो उन्होंने गोस्वामीजीसे विचार-विमर्श करके यह प्रमाण लिख दिया—

आनन्दकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥

[इस आनन्दकानन काशीमें एक चलता-फिरता तुलसी वृक्ष है जिसकी कविता-रूपी मंजरीपर रामरूपी भ्रमर सुशोभित है।]

गोस्वामीजीने भाषामें रामायण रचनेके दो कारण दिए हैं—

स्याम सुरभि पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय-राम जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥

और

कीरति भनिति भूति भल सोई।
सुरसरि-सम सबकर हित होई॥

जन-साधारणमें 'सिय-राम जस' फैलानेके लिये प्रसाद-गुणयुक्त वाणी तो 'ग्राम्य गिरा' ही हो सकती थी इसीलिये गोस्वामीजीने 'प्राकृत कवि' होकर 'रघुपति गुन-ग्राम' का वर्णन रघुपतिके जन्मस्थानकी 'ग्राम्यगिरा' अवधी भाषामें किया। किन्तु इससे काशीके विद्वानोंको सन्तोष नहीं हुआ। अन्तमें निश्चय यह हुआ कि रामचरित-मानसको यदि भगवान् विश्वनाथजी स्वीकार कर लें तो सबको मान्य हो जाय। कहा जाता है कि विश्वनाथजीके मन्दिरमें ग्रन्थ रख दिया गया और अगले दिन विश्वनाथजीने उसपर स्वीकृति भी दे दी। बुद्धिवादी दृष्टिसे यदि इसकी व्याख्या की जाय तो कह सकते हैं कि उस समय सभी विचारशील

विद्वानोंने और जनताने उसे स्वीकार कर लिया। यही विश्वनाथजीकी स्वीकृति है क्योंकि—

अवाज़े खल्कको नक्क़ारए ख़ुदा समझो।

[जनताकी वाणीको ईश्वरकी वाणी समझो।] यह गोस्वामीजीकी कुछ कम बड़ी सफलता नहीं है।

कलिकालका कोप

उन दिनों बहुतसे लोग उनके पीछे ऐसे पड़ गए थे कि उनके सम्बन्धमें न जाने क्या-क्या ऊटपटाँग कहते रहते थे। इसीलिये उन्हें हारकर कहना पड़ा—

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ।
काहूकी बेटी सों बेटा न ब्याहब काहूकी जात बिगार न सोऊ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है रामको, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगिकै खैबो मसीतको सोइबो, लैबोको एक न दैबेको दोऊ॥

इसी नित्यकी कहा-सुनीसे ऊबकर गोस्वामीजी काशीकी बस्तीसे हटकर अस्सीकी ओर चले गए। जब लोगोंसे पीछा छूटा तब कलिकालने उन्हें आ दबोचा और वह रह-रहकर उन्हें अनेक प्रकारसे यातना देने लगा। इसी कारण उन्हें हारकर रामके दरबारमें 'विनयपत्रिका' भेजनी पड़ी। जीवनके अन्तिम दिनोंमें उन्हें शारीरिक कष्ट भी बहुत उठाना पड़ा। उनकी बाँहमें ऐसी भयंकर पीडा उठ खड़ी हुई जिससे वे बहुत दिनों तक पीडित रहे। अन्तमें जब उन्होंने हनुमानबाहुककी रचना की तब कहीं उनकी पीडा मिट पाई। कुछ लोगोंका मत है कि गोस्वामीजीका अवसान उस महामारीमें हुआ जो काशीमें संवत् १६७१-७२ में फैली थी। किन्तु महामारीका रोगी बहुत दिन नहीं चलता पर गोस्वामीजी तो बहुत

दिनों तक पीडित पड़े रहे। अतः, लोगोंका यह विचार ठीक नहीं है। यह पीडा किसी प्रकारके वातशूलके रूपमें उठी होगी गोस्वामीजी तो उस महामारीके आठ-नौ वर्ष पीछे तक जीवित रहे।

उन्होंने हनुमानबाहुकमें बाँह-पीर, बात, बाहुसूल, कपिकच्छु—बेलि (केवाँच छू जानेसे सारे शरीरमें खुजली ला देनेवाली व्यथाके समान) शरीर-भरमें पीड़ा करनेवाला और बरतोर (बालतोड़) रोगोंका नाम गिनाकर अपनी पीड़ाका स्पष्ट उल्लेख किया है—

बाँहपीर महाबीर बेगि ही निवारिए ॥ २० ॥
बात तरुमूल, बाहुसूल कपिकच्छु—बेलि
उपजी सकेलि, कपि, खेल ही उखारिए ॥ २४ ॥
पायँ-पीर, पेट-पीर, बाहु-पीर, मुँह-पीर,
जरजर सकल सरीर पीरमई है ॥ ३८ ॥
तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस
फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को ॥ ४१ ॥

अतः, उनकी मृत्यु पूर्णतः स्वाभाविक रूपसे हुई।

उनके गोलोकवासके सम्बन्धमें अब यह तिथि मिली है—

संबत सोरह सै असी, असी-गंगके तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यौ शरीर ॥

आज भी श्रावण कृष्णा तृतीयाके दिन ही टोडरकी तेरहवीं पीढ़ीमें भदैनीके चौधरी लालबहादुर सिंहके यहाँ गोस्वामीजीकी श्राद्ध तिथि मनाई जाती है।

कहा जाता है कि गोस्वामीजीने अपने निधनके पूर्व यह दोहा कहा था—

राम नाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन ।
तुलसीके मुख दीजिए, अबहीं तुलसी सोन ॥

ऐसे प्रतापी सन्त और महाकविके सम्बन्धमें नाभादासजीने अपने भक्तमालमें सत्य ही कहा था—

'कलि कुटिल जीव निस्तार हेतु, बालमीकि तुलसी भयौ ।'

४

गोस्वामीजीकी रचनाएँ

कविता लसी पा तुलसीकी कला ।

गोस्वामीजीकी रचनाओंके सम्बन्धमें इधर बहुत दिनोंतक एक प्रकारका विवाद चलता रहा है । मूल गोसाईं-चरित्रमें गोस्वामीजीके रचे निम्नलिखित तेरह ग्रन्थ बताए गए हैं—रामगीतावलीके कुछ छन्द (संवत् १६२८–३१), कृष्णगीतावली (१६२८), रामचरित-मानस (१६३१), दोहावली (१६४०), सतसई और विनयावली या विनय-पत्रिका (१६४२), रामलला-नहछू, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल (१६४३), हनुमानबाहुक, वैराग्यसंदीपिनी, रामाज्ञा-प्रश्न और बरवै रामायण (१६६९) । गोस्वामीजी-रचित मान्य बारह ग्रन्थोंमें इस सूचीके ग्रन्थोंमेंसे केवल सतसई नहीं है । इसमें कवितावलीके बदले हनुमान-बाहुकका उल्लेख है परन्तु हनुमानबाहुक सर्वत्र कवितावलीके साथ ही संलग्न मिलता है ।

'शिवसिंह-सरोज' में शिवसिंह सेंगरने गोस्वामीजीके ग्रन्थोंकी सूची देते हुए लिखा है कि 'गोस्वामीजीने ४९ काण्ड रामायणकी रचना की (१) ७ काण्ड चौपाई रामायण, (२) ७ काण्ड कवितावली रामायण, (३) ७ काण्ड गीतावली रामायण, (४) ७ काण्ड छन्दावली रामायण, (५) ७ काण्ड बरवै रामायण, (६) ७ काण्ड दोहावली रामायण और (७) ७ काण्ड कुण्डलिया रामायण।' इसके अतिरिक्त उसमें ग्यारह और ग्रन्थोंके नाम दिए हैं—(१) सतसई, (२) रामसलाका, (३) कृष्ण-गीतावली, (४) हनुमत् बाहुक, (५) कड़खाछन्द, (६) जानकीमंगल, (७) पार्वतीमंगल, (८) रोलाछन्द, (९) झूलनाछन्द, (१०) संकटमोचन और (११) विनयपत्रिका।

मूल गोसाईं चरित्रमें जिन तेरह ग्रन्थोंके नाम आए हैं उनमेंसे वैराग्य-संदीपिनी और रामाज्ञाप्रश्न ऊपरकी सूचीमें नहीं हैं किन्तु कड़खाछन्द, रोलाछन्द, कुण्डलिया-रामायण, झूलनाछन्द, संकटमोचन, रामसलाका और छन्दावली अधिक हैं। उसमें केवल बाहुकका नाम आया है, कवितावलीका नहीं, किन्तु इसमें ये दोनों हैं। सम्भव है सेंगरजीने रामाज्ञा-प्रश्नको ही रामसलाका लिखा हो।

सर जौर्ज ग्रियर्सनने १८९३ में 'इण्डियन ऐण्टीक्वेरी'में गोस्वामी-जीके सम्बन्धमें एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने गोस्वामीजीके २१ ग्रन्थोंके नाम दिए हैं—

रामचरितमानस, गीतावली, कवितावली, दोहावली, छप्पय रामायण, रामसतसई, जानकीमंगल, वैराग्यसंदीपिनी, रामलला-नहछू, बरवैरामायण, रामाज्ञाप्रश्न, संकटमोचन, विनयपत्रिका, बाहुक, रामशलाका, कुण्डलिया-रामायण, कड़खारामायण, झूलनारामायण, रोलारामायण, कृष्णगीतावली।

आगे चलकर उन्होंने 'एन्साइक्लोपीडिया औफ़ रिलिजन ऐण्ड एथिक्स'में बारह ग्रन्थोंको ही प्रामाणिक मानकर उन्हें बड़े और छोटे दो श्रेणियोंमें विभाजित किया—

बड़े ग्रन्थ : रामचरितमानस, दोहावली, गीतावली, कवितावली, विनयपत्रिका और कृष्णगीतावली।

छोटे ग्रन्थ : रामललानहछू, वैराग्यसंदीपिनी, बरवैरामायण, जानकी-मंगल, पार्वतीमंगल और रामाज्ञाप्रश्न।

'बंगवासी प्रेस'की ओरसे जो सूची प्रकाशित हुई थी उसमें आए हुए कलिधर्माधर्म-निरूपण, हनुमान-चालीसा और कवित्तरामायण भी यदि ग्रियर्सनकी सूचीमें जोड़ दिए जायँ तो संख्या २१ से २४ हो जाती है। मिश्र बन्धुओंने अपने 'हिन्दी नवरत्न'में पदावली-रामायणका भी उल्लेख किया है। बम्बईके भारतीय विद्या-भवनकी ओरसे प्रकाशित 'भारतीय विद्या' पत्रिकामें 'श्रीरामनाम-कला-कौशल-मणि-मयूख' नामक एक और भी ग्रन्थ का पूरा पाठ दिया गया है। इस प्रकार गोस्वामीजीके नामसे २६ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। नागरी प्रचारिणी सभाकी खोजके विवरणोंके अनुसार 'तुलसी' नामक कवि के ३५ ग्रन्थ मिलते हैं। अब यह निर्णय करना रह जाता है कि इनमेंसे कितने ग्रन्थ गोस्वामी तुलसीदासजीके हैं और कितने तुलसी नामक अन्य कवियोंके। तुलसीके नामसे जितने ग्रन्थोंका उल्लेख हुआ है उनमेंसे निम्न-लिखित १२ ग्रन्थ ही गोस्वामी तुलसीदासजीके प्रामाणिक माने गए हैं—

(१) रामचरितमानस, (२) गीतावली, (३) कवितावली, (४) कृष्ण-गीतावली, (५) विनयपत्रिका, (६) दोहावली, (७) रामलला-नहछू, (८) वैराग्य-संदीपिनी, (९) रामाज्ञाप्रश्न, (१०) बरवैरामायण, (११) जानकीमंगल और (१२) पार्वतीमंगल। ग्रियर्सनने परम्परासे रामायणियों-में प्रसिद्ध इन बारह ग्रन्थोंको ही प्रामाणिक स्वीकार किया है। प्रसिद्ध

रामायणी पण्डित रामगुलाम द्विवेदीने एक कवित्तमें गोस्वामीजीके बारह ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार दिए हैं—

रामललानहछू[१], त्यों बिरागसंदीपिनी[२] हूँ,
बरवै[३] बनाइ बिरमाई मति साईं की।
पारबती[४] जानकीके[५] मंगल ललित गाय
रम्य रामआज्ञा[६] रची कामधेनु नाईंकी॥
दोहा[७] औ कवित्त[८], गीत बन्ध[९] कृष्ण-रामकथा[१०]
रामायन[११], बिनै[१२] माहिं बात सब ठाईंकी।
जगमें सोहानी जगदीसहूके मनमानी
संतसुखदानी बानी तुलसी गोसाईंकी॥

काशीकी नागरी-प्रचारिणी-सभाने गोस्वामीजीकी त्रिशत-जयन्तीके अवसरपर दो खंडोंमें जो गोस्वामीजीकी समस्त रचनाएँ प्रकाशित कीं उनमें भी ये ही बारह ग्रन्थ प्रामाणिक माने गए हैं।

(१) रामचरितमानस

गोस्वामीजीने रामचरितमानसको सात काण्डोंमें विभक्त करके उसमें पूरे विस्तारके साथ 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' रामकथाका वर्णन किया है। रामचरितमानसमें या अन्य रामायणोंमें रामकथाका आधार वस्तुतः आदिकवि वर्णित रामकथा ही है। किन्तु गोस्वामीजीने—

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध-विज्ञानौ कवीश्वर-कपीश्वरौ ॥

लिखकर भी वाल्मीकिका अनुकरण नहीं किया क्योंकि उन्हें 'वाल्मीकि-सम्मत' न लिखकर 'नानापुराणनिगमागम-सम्मत' रामकथा लिखनी थी।

आदिकविके वर्णनके अतिरिक्त गोस्वामीजीने अपने वर्णनमें आनन्दरामायण, अध्यात्मरामायण, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, भागवत तथा अन्य पुराणोंके अतिरिक्त भक्तों और सन्तोंमें आदि कालसे प्रचलित रामकथाके अनेक रूपान्तरोंका भी आश्रय लिया है और 'क्वचिदन्यतोऽपि' लिखकर इसे स्वीकार भी किया है। रामचरितमानसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें समाज और व्यक्तित्वका पूर्ण विकास दिखाया गया है। यही एक ग्रन्थ सम्पूर्ण संसारमें ऐसा है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनेको प्रतिबिम्बित पा सकता है। आदर्श भारतीय संस्कृतिका पूरा परिचय करा देनेवाला इससे बढ़कर दूसरा ग्रन्थ भारतीय साहित्यमें नहीं है। यद्यपि इसमें अनेक वर्णिक और मात्रिक छन्दोंका प्रयोग हुआ है पर मुख्यता दोहे और चौपाइयोंकी है। ग्रन्थ-भरमें प्रायः आठ अर्द्धालियोंपर एक दोहेका क्रम रक्खा गया है। प्रत्येक काण्डके आरम्भमें संस्कृत छन्दोंमें मंगलाचरण है तथा काण्डके अन्तमें हरिगीतिका छन्द देकर दोहा दे दिया गया है। यह ग्रन्थ एक साथ ही महाकाव्य, गेयकाव्य, नाटक, स्तोत्रकाव्य और मन्त्रकाव्य सब कुछ है। इसकी अवधी भाषा संस्कृतकी कोमल-कान्त-पदावलीके प्रयोगके कारण सरस, भावपूर्ण और मनोमुग्धकारी हो गई है।

क्या रामचरितमानस पुराण है?

बहुतसे सज्जनोंने केवल अपना पाण्डित्य-प्रदर्शन करनेके लिये और कुछ नवीन बात कहनेके आवेगमें रामचरित-मानसको पुराण बता डाला है। सम्भवतः उन्होंने महा-पुराणोंमें बताए हुए पुराणके पाँच लक्षणोंकी ओर ध्यान नहीं दिया जहाँ पुराणकी व्याख्या करते हुए और उसका लक्षण बताते हुए कहा गया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

[सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (सृष्टिका विनाश और नष्ट होकर पुनः सृष्टि), वंश (सृष्टिमें पराक्रमशील मानव-वंशोंकी उत्पत्ति और उनका वंश-परिचय), मन्वन्तर (विभिन्न मनुओंका समय और उन समयोंमें होनेवाली घटनाओंका वर्णन) और वंशानुचरित (विभिन्न राजवंशों तथा जातियोंका वंश-वर्णन), ये ही पाँच बातें पुराणमे होती हैं ।] किन्तु रामचरित-मानसमें तो केवल रामकी कथा कही गई है । इसी प्रतिज्ञासे गोस्वामीजीने रामचरित-मानसके प्रारम्भमें मानसका रूपक ग्रहण करके उसके अन्तमें स्पष्ट कह भी दिया है—

मति अनुहारि सुबारि गुन-गन गनि मन अन्हवाय ।
सुमिरि भवानी संकरहिं, कह कबि कथा सुहाय ॥

यहाँ एक कवि कथा कह रहा है, कोई सूत या शौनकजी पुराण नहीं कह रहे हैं। कवि जब कथा कहता है तो वह काव्य ही होता है जिसका संकेत गोस्वामीजीने प्रारम्भमें ही दे दिया है—

करन चहउँ रघुपति गुन-गाहा ।
लघु मति मोरि चरित अवगाहा ॥
निज कबित्त केहि लाग न नीका ।
सरस होउ अथवा अति फीका ॥
कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू ।
सकल कला सब बिद्या हीनू ॥
आखर अरथ अलंकृति नाना ।
छन्द प्रबन्ध अनेक बिधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा ।
कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा ॥

कबित बिबेक एक नहिं मोरें।
सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥
भनिति मोरि सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति, जिन्हकें बिमल बिबेक॥
भनिति बिचित्र सुकबि-कृत जोऊ।
राम-नाम बिनु सोह न सोऊ॥
जदपि कबित-रस एकउ नाहीं।
राम प्रताप प्रगट एहि माहीं॥

उपर्यङ्कित सभी उद्धरण इस बातके प्रमाण हैं कि तुलसीदासजी काव्य लिख रहे थे, पुराण नहीं। 'भाषा-निबन्ध' शब्द भी इसी बातका द्योतक है कि उन्होंने महाकाव्यकी रचना की है, पुराणकी नहीं। राम-चरित-मानसको पुराण कहनेवाले सज्जनोंको महाकवि कालिदासके रघुवंशको नहीं भूल जाना चाहिए जिसमें उन्होंने महाकाव्यके चिर-प्रतिष्ठित सिद्धान्तकी अवहेलना करके उसमें एक नायक न लेकर पूरे रघुवंशका वर्णन कर डाला। पर स्पष्टतः वंशानुचरित होते हुए भी वह पुराण नहीं है, महाकाव्य है। किन्तु रामचरित-मानस तो शुद्ध महाकाव्य है, पुराणके पाँच लक्षणोंमेंसे इसमें कोई लक्षण भी नहीं है।

मानसकी रचना

इस ग्रन्थकी रचना संवत् १६३१ वि० में रामनवमीके दिन अयोध्यामें आरम्भ हुई। मूल गोसाईंचरित्रके अनुसार संवत् १६३३ वि० में रामविवाहके दिन गोस्वामीजीने इसे अयोध्यामें ही समाप्त किया। इस बीच वे बराबर वहीं रहे। किन्तु किष्किन्धाकाण्डके प्रारम्भिक सोरठेमें 'सो कासी सेइय कस न' पाठ देखकर कुछ लोगोंका कहना है कि इस काण्डकी रचना काशीमें हुई और आगेके भी सभी काण्ड वहीं रचे गए या इस काण्डकी

रचना कर लेनेके पश्चात् सम्भव है गोस्वामीजीने शेष काण्डोंमेंसे कुछ काशीमें और कुछ अयोध्यामें रचे हों। गोस्वामीजीने ग्रन्थका समाप्ति-काल नहीं दिया है। इसलिये मूल गोसाइँचरित्रकी बात न स्वीकार करनेपर यह कह सकना कठिन है कि मानसकी रचना कितने समयमें हुई। कुछ लोगोंका तो यह भी कहना है कि गोस्वामीजी समय-समय पर इसमें संशोधन भी करते रहे; इसीलिये मानसकी प्राचीन प्रतियोंमें भी पाठभेद मिलते हैं। यह अत्यन्त संभव और स्वाभाविक भी है। संसारके सभी कवि अपने जीवन-कालमें अपनी रचनाओंमें निरन्तर संशोधन करते रहे हैं। किन्तु बहुत-सा पाठभेद लिपि-कर्ताओंके कारण भी हो गया है। आधुनिक कालके सर्वश्रेष्ठ मानस-मर्मज्ञ पंडित विजयानन्द त्रिपाठीका कथन है कि जिस ग्रन्थको उन्होंने स्तोत्र-काव्यके रूपमें लिखा उसमें उन्होंने संशोधन नहीं किया, केवल लिपि-कर्त्ताओंके कारण पाठ-भेद हो गया है। रही बात 'कासी' और 'संकर' के आधारपर किष्किन्धा-काण्डके काशीमें रचे जानेकी, इसमें विवादका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वहाँ शंकरजीकी वन्दना साभिप्राय की गई है। शंकरजीके अवतार हनुमानजीसे रामकी भेंटका वर्णन उस काण्डमें ही पहली बार आया है। इसलिये शंकरकी वन्दना वहाँ अनिवार्य थी। वैसे तो इसके पूर्वके काण्डोंमें भी शंकरजीकी वन्दना की गई है और जब किष्किन्धाकाण्डमें शंकरका साभिप्राय उल्लेख किया गया तो 'संकर-सहर'का भी उल्लेख ठीक ही था क्योंकि शंकरजी अपनी पुरीमें 'रामनाम'के बलपर ही लोगोंको मुक्त करते रहते हैं। अतएव यह निश्चय है कि 'अवध'में जिस निष्ठाके साथ गोस्वामीजीने काव्यकी रचना आरम्भ की उसी प्रकार वहीं रहकर अन्त-तक उसकी रचना भी की; बीचमें उठकर काशी चले आनेका कोई कारण नहीं प्रतीत होता। उन दिनों यातायात भी सरल

नहीं था और 'कथा' करनेका संकल्प लेकर उसे बिना पूरा किए ग्रन्थ लेकर निष्प्रयोजन काशी चले आनेका कोई रहस्य भी नहीं प्रतीत होता। हाँ, पूर्ण हो जानेपर उसे पंडितोंसे प्रमाणित करानेके लिये वे काशी अवश्य आए और फिर यहीं रह गए।

मानसकी प्रस्तावना जिस भव्य शैलीमें आरम्भ हुई है उससे ही ग्रन्थके महत्त्वका आभास मिल जाता है। मूल कथा आरम्भ करनेके पूर्व कविने गुरुवन्दना, सन्त-खलवन्दना, नाम-महिमा कहकर मान-सरका अत्यन्त ही सुन्दर रूपक खड़ा किया है। इस मानसर-तक पहुँच पाना और उसमें अवगाहन कर सकना उसके लिये सरल नहीं है—

जे श्रद्धा संबल रहित, नहिं सन्तन-कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति, जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ॥

तीर्थाटनके प्रसंगमें गोस्वामीजी कैलास और मानसरोवर भी गए थे और मानसकी कल्पना भी उन्होंने वहीं की थी। आज भी मान-सरोवरका मार्ग बहुत भयावह है। वहाँ बहुत श्रद्धा रहनेपर ही कोई जा पाता है। कितने तो दुर्गम पथ देखकर मार्गसे ही लौट आते हैं। यही अवस्था गोस्वामीजीने राम-मानसरके सम्बन्धमें बताई है। इसके पश्चात् शिवपार्वतीकी कथा देकर रामावतारके हेतु बतलाए गए हैं और तब रामकी कथा प्रारम्भ की गई है।

मानसमें क्षेपक

रामचरित-मानसमें क्षेपक बहुत हैं और सभी प्रतियोंमें एक-से हैं। विद्वानोंका मत है कि ये क्षेपक किसीने बाहरसे डाल दिए हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है। स्वयं गोस्वामीजीने रामलीलाके लिये स्थान-स्थानपर ये क्षेपक जोड़ दिए थे, जिनका प्रयोग आजतक काशीकी लीलाओंमें किया जाता है।

(२) विनयपत्रिका

वैसे तो गोस्वामीजीकी सभी रचनाएँ चमत्कारपूर्ण हैं किन्तु विनयपत्रिकाका महत्त्व मानसके पश्चात् सर्वाधिक है। इसमें कुल २७९ पद हैं। लोगोंका अनुमान है कि इसकी रचना सबसे अन्तमें हुई। अपने इस पत्र-ग्रन्थमें भी गोस्वामीजीने रचना-कालका कहीं उल्लेख नहीं किया है। यह वास्तवमें विनयके पदोंके रूपमें लिखा हुआ सुविस्तृत पत्र है जो भक्त गोस्वामीजीने कलिसे त्रस्त होकर अपने प्रभुके पास भेजा है और प्रार्थना की है कि कलिसे आप ही मेरा उद्धार कीजिए। वैसे तो यह पत्रिका फुटकर पदोंमें लिखी गई है किन्तु सब मिलाकर यह पूरा प्रबन्धकाव्य ही है। इसमें भक्तने बड़ी भारी राजसभावाले अपने राजा प्रभु रामके पास अपनेको या अपने पत्रको पहुँचानेके लिये पहले सभासदोंसे अनुनय किया है। फिर सबसे अनुनय कर चुकनेपर गोस्वामीजीने अपने प्रभुकी महिमा, अपनी दीनता, कलिजन्य-दुःख आदिका वर्णन करके अपने प्रभुसे प्रार्थना की है कि आप मुझे अपनाइए। अन्तमें रामसे स्वयं पत्र पढ़नेकी प्रार्थना करके सभासदोंसे उसे प्रभुकी सेवामें उपस्थित करनेका निवेदन किया है जिसे लचमणजीने सबकी रुचि देखकर प्रभुके सामने उपस्थित कर दिया और अन्तमें प्रभुद्वारा उसे स्वीकार कर लिए जानेकी बात भी आ गई है।

'वास्तविक विनयके इसमें दो ही पद हैं—

जयति सच्चिद्व्यापकानन्द यद्ब्रह्म विग्रहव्यक्त लीलावतारी।

....

दासतुलसी मुदित अवधवासी सकल, राम भे भूप वैदेहि रानी ॥ ४३ ॥

जयति राजराजेन्द्रराजीवलोचन रामनाम-कलिकामतरु सामशाली।

....

दासतुलसी चरण शरण संशयहरण देहि अवलंब वैदेहि-भर्त्ता ॥ ४४ ॥

ये ही दो पद वास्तवमें विनय-पत्रिका हैं। इसके पूर्व रामकी सभाके सभासदों (देवताओं) से, रामके भाइयोंसे, हनुमानसे तथा सीताजीसे अनुनय है और उपर्यङ्कित दोनों पदोंके पश्चात् रामकी वन्दना, प्रार्थना, स्तुति, जयजयकार तथा दुहाई है और अन्तिम दो पदोंमें विनयपत्रिका उपस्थित होने, पंचोंकी उपस्तुति और भगवान् राम-द्वारा स्वीकृतिका विवरण है—'परी रघुनाथ हाथ सही है।' इस प्रकार यह ग्रन्थ विनयपत्रिका भेजनेसे लेकर उसकी स्वीकृति होने तकका प्रबन्ध-काव्य है।

(३) गीतावली

ललित और भाव-भरे पदोंमें काण्ड-क्रमसे इसमें रामचरितका वर्णन है। किन्तु इसे क्रमिक कथाकी दृष्टिसे देखनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इसकी सारी पद-रचना राग-रागिनियोंके निर्देशके साथ हुई है। इसके आरम्भमें रामके बालरूपका और अन्तमें रामरूपका अत्यन्त मनोरम वर्णन हुआ है। इसमें रामराज्यकी समृद्धिका बड़ा विशद वर्णन है। रामकी दिनचर्या भी इसमें दी गई है। मूल गोसाईं-चरित्रके अनुसार जिस समय गोस्वामीजी चित्रकूटमें थे उस समय सूरदासजी उनसे मिलने आए और अपना सूरसागर उन्हें दिखाया। उससे प्रभावित होकर ही गोस्वामीजीने ललित पदोंमें रामकी कथा लिखी। सूरदासजी गोस्वामीजीसे मिलने आए हों या न आए हों, किन्तु गोस्वामीजीका वृन्दावन जाना तो निश्चित ही है। नट-नागरकी उस लोक-पावन लीला-भूमिमें पदार्पण करनेपर गोस्वामीजीने जब उनकी ललित कथा-का गान सूर-जैसे उच्च कोटिके गायक कवि और महात्माके पदोंमें श्रवण करके रस प्राप्त किया तो उससे ही प्रभावित होकर तुलसीदास-जीने निश्चय किया कि इसी शैली और इसी भाषामें रामके सम्बन्धमें भी क्यों न कुछ गेय पद रचे जायँ। इससे ही प्रेरित होकर उन्होंने

समय-समयपर रामसम्बन्धी पदोंकी रचना करके बालरामकी छबि और लीलाओंका अत्यन्त सरस और हृदयग्राही वर्णन किया तथा राजा रामके रूप और उनके हिंडोल तथा रासरंगके वर्णनमें अनेक पद रच डाले।

(४) कृष्णगीतावली

गोस्वामीजी रामभक्त अवश्य थे किन्तु उनमें साम्प्रदायिक कट्टरताका लेश भी न था। उन्होंने इस प्रकारकी संकुचित वृत्तिकी सर्वत्र निन्दा भी की और समन्वयका प्रयत्न भी किया है। यही कारण है कि वृन्दावन-यात्राके अवसरपर उन्होंने कृष्णलीला-सम्बन्धी पदोंकी भी रचना कर डाली। इसमें कुल ६१ पद हैं किन्तु इनसे ही प्रकट हो जाता है कि ब्रज-भाषापर भी गोस्वामीजीका कैसा असाधारण अधिकार रहा है। यह प्रबन्ध-मुक्तक काव्य है जिसमें कृष्णका पूरा चरित तो नहीं किन्तु एक-एक मुक्तक पदमें एक-एक लीला या कथा आ जाती है। इस प्रकार इन थोड़ेसे मुक्तक पदोंमें ही कृष्णकी बाललीलासे लेकर भ्रमरगीत-तककी कथा आ गई है।

(५) कवितावली

कवितावलीकी रचना भी ग्रन्थके रूपमें कभी नहीं की गई। इसकी रचना वृन्दावनसे लौट आनेके पश्चात्से लेकर अन्तकाल-तक होती रही। वस्तुतः कवित्त-सवैयोंमें ग्रन्थ रचनेकी बात उन्होंने सोची भी न होगी। प्रतीत होता है कि समय-समयपर, विभिन्न स्थानोंपर विभिन्न भाव आनेपर उन्होंने ब्रज भाषामें इस पद्धतिपर जो कुछ कह दिया वह संगृहीत होता गया और अन्तमें इसे कवित्तरामायण या कवितावली नाम दे दिया गया। उसके उत्तरकाण्डमें जैसा वर्णन आया है वह मानससे मेल नहीं खाता। फिर भी अन्नपूर्णा (काशी), प्रयाग,

चित्रकूट आदिके स्वतन्त्र वर्णन भी यह सिद्ध करते हैं कि उन स्थानोंपर कविके मुखसे जो उद्गार निकले वे आगे चलकर एक साँचेके होनेके कारण एक ही पुस्तकमें संगृहीत कर लिए गए। इसमें रुद्रबीसी, मीनकी सनीचरी और महामारीका भी वर्णन आया है जो उनके जीवन-कालके अन्तिम दिनोंकी घटनाएँ हैं। इसी कोटिके छन्दोंमें और ब्रजकी भाषामें होनेके कारण बाहुपीडाके समय रचा हुआ हनुमान-बाहुक भी इसीके साथ संलग्न कर दिया गया है जिसमें ४४ ओजस्वी छन्द हैं।

(६) दोहावली

दोहावली भी मुक्तक रचना है। इसमें २३ सोरठे और ५५० पूर्णतः स्वतन्त्र दोहे हैं। इन दोहोंमें भगवन्नाम-माहात्म्य, धर्मोपदेश तथा नीतिका निर्देश किया गया है। भक्ति-सम्बन्धी दोहे भी इसमें पर्याप्त हैं। इसमें आए हुए दोहोंमेंसे प्रायः आधे दोहे मानस, रामाज्ञाप्रश्न और वैराग्य-संदीपिनीमें भी मिलते हैं। अतः, निश्चय ही यह बहुत पीछेकी रचना है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजीने उपर्यंकित ग्रन्थोंसे कुछ दोहे लेकर तथा कुछ दोहे और जोड़कर यह ग्रन्थ प्रस्तुत कर दिया। इसके कुछ दोहोंमें वाल्मीकिरामायणके उत्तरकांडकी कथाका संकेत भी है।

(७) रामाज्ञाप्रश्न

इसमें सात सर्ग हैं। प्रत्येक सर्गमें सात-सात दोहोंके सात-सात सप्तक हैं। कहा जाता है कि गोस्वामीजीने प्रह्लादघाटपर रहनेवाले अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषीको काशिनरेशके कोपसे बचानेके लिये इसकी रचना शकुन विचारनेके उद्देश्यसे की थी। इसके बहुतसे दोहे रामचरितमानससे लिए गए हैं। इसमें रामकथाका वर्णन भी है और अन्तिम सर्गके सातवें सप्तकमें शकुन विचारनेकी विधि भी बताई गई है। इसमें भी वाल्मीकिरामायणके उत्तरकांडकी सीता-वनवासवाली कथा आई है।

(८) वैराग्य-संदीपिनी

इसकी शैलीके कारण बहुत लोग इसे गोस्वामीजीकी रचना नहीं मानते। दोहे-चौपाइयोंमें रचे हुए इस ग्रन्थमें तीन प्रकाश तथा ६२ छन्द हैं। आदिमें मंगलाचरण, पहले प्रकाशमें सन्त-स्वभाव-वर्णन, दूसरे प्रकाशमें सन्त-महिमा-वर्णन तथा तीसरे प्रकाशमें शान्तिवर्णन है।

(९) बरवै-रामायण

६९ बरवै छन्दोंमें रचे हुए इस ग्रन्थको भी ७ काण्डोंमें विभक्त करके पूरी रामकथा संक्षेपके साथ कह दी गई है। इसके बरवै इतने मधुर और मनोहर हैं कि उनका आनन्द पढ़नेसे ही मिल सकता है। बहुतसे लोगोंका कहना है कि गोस्वामीजीने स्फुट बरवै छन्दोंकी ही रचना की थी जो पीछे संगृहीत होकर ग्रन्थके रूपमें बँध गए। कहा जाता है कि अपने मित्र रहीमके आग्रहपर गोस्वामीजीने बरवै-छन्दोंमें संक्षेपतः रामकथाकी रचना की थी। प्रसिद्ध है कि रहीमके एक मित्र सरदारकी कवयित्री पत्नीने एक बरवै छन्द लिखकर रहीमके पास भेजा। रहीम उस छन्दपर इतने मुग्ध हो गए कि उन्होंने बरवै छन्दोंमें नायिका-भेद ही लिख डाला। पीछे हरिभक्त रहीमने गोस्वामीजीसे अनुरोध किया कि आप इस छन्दमें भी रामकथा लिखें। गोस्वामीजीको भी यह छन्द अत्यन्त मधुर और प्रिय लगा और उन्होंने इस छन्दमें रामकथा लिखी। प्रतीत होता है कि इसमें और भी बहुतसे छन्द थे जो लुप्त हो गए; जो बच गए उन्हींका ही संग्रह इस समय उपलब्ध है।

(१०) रामलला-नहछू

नहछूके सम्बन्धमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है कि यह किस अवसरकी रचना है। कर्णवेध, उपनयन और विवाहके लिये बारातके प्रस्थान करनेके पूर्व नाइन बालक या वरको पीढ़ेपर बैठाकर उसके पाँवोंमें महावर लगाती

है और अपनी नहरनीसे उसके नखका इस प्रकार स्पर्श करती है मानो उसके नख काट रही हो। इसीको नहछू कहते हैं। नहछूकी प्रथा सम्पूर्ण उत्तरप्रदेश और बिहारमें प्रचलित है। विवाद इस बातपर है कि इस नहछूमें विवाहके अवसरका उल्लेख है या किसी अन्य संस्कारके अवसरका। मूल गोसाईंचरित्रमें लिखा है कि पार्वतीमंगल, जानकीमगल और नहछूकी रचना एक साथ मिथिलामें हुई।

मिथिलामें रचना किए, नहछू, मंगल दोय।

किन्तु उसमें समयका उल्लेख नहीं है। गोस्वामीजीने पार्वती-मंगलकी रचनाका जो समय दिया है उसकी गणना करके महा-महोपाध्याय सुधाकर द्विवेदीने उसका समय १६४२ ठहराया है। इसलिये लोगोंका अनुमान है कि इन तीनों ग्रंथोंकी रचना १६४१-४२ के बीच हुई है। इन तीनों ग्रन्थोंकी भाषा ठेठ अवधी है और शैली भी एक ही है। दोनों मंगल तो एक ही ढाँचेमें ढले जान पड़ते हैं किन्तु यह प्रश्न विचारणीय रह ही गया कि नहछूकी रचना किस अवसरको ध्यानमें रखकर हुई। सभासे प्रकाशित तुलसीग्रंथावलीके सम्पादकोंने पंडित रामगुलाम द्विवेदीका यह मत स्वीकार कर लिया है कि विवाहके समय राम मिथिलामें थे; वे बारातके साथ आए नहीं इस-लिये नहछूकी क्रिया हुई ही नहीं। इसलिये निश्चय ही नहछू उपनयन या कर्णवेधके समयका है। अन्य लोगोंका मत है कि चाहे बारातके समय राम भले ही अयोध्यासे न चले हों किन्तु सारा कृत्य मिथिलामें अवश्य हुआ होगा और नहछूमें उसी अवसरका वर्णन है। किन्तु यह विवाद पूर्णतः निःसार है। वास्तविक बात यह है कि इन अवसरोंपर स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं उनके बदले भगवन्नामसे सम्बद्ध गीतोंका चलन करनेके लिये उन्होंने इस अवसरके लिये रामके नहछूका उल्लेख करके

२० सोहर छन्दोंमें उसकी रचना कर दी। यों भी यह नहछू विवाहके ही प्रसंगका है क्योंकि उसमें स्पष्ट लिखा है—

दूलहकै महतारि देखि मन हरखइ हो।

इसका अर्थ यह है कि जब राजा दशरथ बारात लेकर गए तब मिथिलामें ही अन्य प्रारंभिक संस्कारोंके साथ नहछू भी किया गया।

(११) जानकी-मंगल

जानकी-मंगल में १९२ सोहर तथा २४ हरिगीतिका छन्द हैं जिनमें रामके विवाहका वर्णन है। कहते हैं कि गोस्वामीजीने वाल्मीकि-रामायणकी प्रतिलिपि करनेके पश्चात् इस ग्रन्थकी रचना की, इसीलिये उसका प्रभाव इसपर स्पष्ट रूपसे दिखाई देता है। मानसके विवाह-वर्णनसे इसमें यही अन्तर है कि फुलवारी-लीला इसमें नहीं है, कथाका आरम्भ धनुष-यज्ञसे ही होता है। इसमें लक्ष्मणके कोपके पश्चात् ही रामचन्द्रजी धनुष तोड़नेके लिये तत्पर नहीं होते वरन् जब जनक उनके बलके प्रति सन्देह प्रकट करते हैं—

मुनिवर तुम्हरे वचन मेरु महि डोलहिं।
तदपि उचित आचरत पाँच भल बोलहिं॥

और आगे कहते हैं—

देखिय मूरति, मलिन करिय मुनि सो जनि।

तब विश्वामित्र-द्वारा यह कहे जानेपर कि—

धनुसिन्धु नृपबल जल बढ़्यो रघुबरहिं कुंभज लेखहू।

रामने धनुष भंग किया। दूसरा अन्तर यह है कि इसमें बारातके लौटते समय मार्गमें परशुराम मिलते हैं, धनुष टूटते ही नहीं।

(१२) पार्वती-मंगल

जानकी-मंगलके समय ही उसी शैली और भाषामें १४८ सोहर और १६ हरिगीतिका छन्दोंमें गोस्वामीजीने पार्वती-मंगलकी रचना की है। इस ग्रन्थकी रचनाका समय भी उन्होंने ग्रन्थके पाँचवें छन्दमें दे दिया है—

जय संबत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल सुनि सुख छिनु-छिनु ॥

गणनाके अनुसार यह समय संवत् १६४३ वि० में पड़ता है। अतएव उसी समय इसकी रचना हुई। मानसकी शिवकथाका आधार जहाँ शिवपुराण है वहाँ पार्वती-मंगलपर महाकवि कालिदासके कुमार-सम्भवकी छाया स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

दोनों मंगलोंकी भाषामें बड़ा प्रवाह है। शब्द एकके पश्चात् एक फिसलते-से चले आते हैं। ये ग्रन्थ ही इस बातके सबसे बड़े प्रमाण हैं कि कवि अवधके क्षेत्रसे भलीभाँति परिचित है।

६

ग्रन्थोंकी समीक्षा

गोस्वामीजीकी जिन रचनाओंका उल्लेख पीछे किया जा चुका है उन रचनाओंके साहित्यिक महत्त्वपर, तथा उन्हींके माध्यमसे गोस्वामीजीकी काव्यकलापर तथा उन्होंने अपनी रचनाओंके माध्यमसे मानव-मात्रको जो अमर सन्देश दिए हैं उनपर यहाँ विचार करना अभीष्ट है क्योंकि गोस्वामीजीकी प्रत्येक रचना एक विशेष उद्देश्य लेकर

प्रस्तुत की गई है और प्रत्येककी अपनी शैली और विशेषता है। इसीलिये यहाँ प्रत्येक रचनापर अलग-अलग विचार किया जा रहा है।

रामचरितमानस

संसारके साहित्योंमें रामचरितमानसकी जोड़का दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। इसमें गोस्वामीजीने भारतीय संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, नीति, आदर्श, समाज और राज्य-व्यवस्था सबका निचोड़ ला भरा है। अपनी कविताकी परिभाषाके अनुसार गोस्वामीजीने इसकी भाषा इतनी सरल रक्खी है कि अशिक्षित तथा अल्प-शिक्षित व्यक्ति भी पूरा ग्रन्थ समझकर उसका रस ले सकता है। इसमें साहित्यिक प्रौढता भी इस उच्च कोटिकी है कि जो जितना बड़ा विद्वान् है वह इसमें उतना ही अधिक रस प्राप्त कर सकता है। यही कारण है कि रचे जानेके अनन्तरसे ही यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय होकर विद्वान् और अशिक्षित सभीका कण्ठहार होता चला आया और जैसे-जैसे समय बीतता चलता है वैसे-वैसे इसकी कीर्तिलता भी बढ़ती चली जाती है। गोस्वामीजीकी इस रचनाने भारतके न जाने कितने अन्य भाषा-भाषी प्रदेशोंके निवासियों-तकको हिन्दीकी ओर आकृष्ट किया और आज तो भारतके बाहर भी इस ग्रन्थरत्नका इतना व्यापक प्रचार हो चला है कि संसारकी अधिकांश प्रमुख भाषाओंमें इसके अनुवाद हो चुके हैं तथा नित्य होते जा रहे हैं।

रचनाका उद्देश्य

बालकाण्डके मंगलाचरणमें गोस्वामीजीने मानसकी रचनाका उद्देश्य बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें लिख दिया है—

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।

[अपने अन्तःकरणके सुखके लिये श्रीरघुनाथकी अत्यन्त सुन्दर कथाको भाषामें बाँधकर तुलसी लिख रहा है।]

परन्तु 'भाषा'में लिखनेका उद्देश्य केवल अपने ही सुखके लिये नहीं था। जिस समय गोस्वामीजी मानसकी रचनाकी ओर प्रवृत्त हुए उस समय देशकी और हिन्दू जातिकी क्या अवस्था थी इसका विवरण पीछे दिया जा चुका है। सब कुछ खोकर हिन्दू समाज आदर्शहीन और लक्ष्य-भ्रष्ट हो चला था। बौद्धोंके उत्कर्षके कारण हमारी प्राचीन मान्यताओं और व्यवस्थाओंका ह्रास हो गया था। आगे चलकर बौद्धोंके भी उदात्त विचार समाप्त हो चले और वामाचारने उनका स्थान ले लिया। शंकराचार्यके प्रयत्नों तथा स्वयं कुरीतियोंमें फँसनेके कारण बौद्ध मत तो उन्मूलित हो गया किन्तु उसने धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रमें जो अराजकता उत्पन्न कर दी थी उससे हिन्दुओंकी सभी प्रकारकी उदात्त भावनाएँ, उच्च आदर्श, शौर्य और पराक्रमके भाव नष्ट हो गए थे। इसी समय भारतपर मुसलमानोंका आक्रमण हुआ जिनका उद्देश्य ही यह था कि 'भारतीय' विशेषकर 'हिन्दू' कही जानेवाली कोई वस्तु बची न रह जाय और इस्लाम सब कुछ आत्मसात् कर ले। इसी बीच नाथ सम्प्रदाय भी चल पड़ा था। इन सबने मिलकर तो हिन्दू समाजको जर्जर कर ही दिया था उसपर निर्गुणी सन्तोंने अपने उलटे-सीधे उपदेशोंसे सभी प्रकारकी सामाजिक व्यवस्था विशृंखल करनेमें कोई कमी न छोड़ी। शंकरके मायावादसे भी अवस्था नहीं सुधर पाई। रामानुजने बाह्याचारको मुख्यता प्रदान करनेवाली विधिका विधान करके वैकुण्ठविहारी लक्ष्मीनारायणकी उपासनाका जो मंगल प्रचार किया उससे जनसाधारण-वर्गमें लक्ष्मीनारायणके प्रति कुछ श्रद्धा और भक्तिका भाव तो अवश्य उत्पन्न हुआ परन्तु सामाजिक जीवनको प्रभावित करनेवाले तत्त्वका उसमें पूर्ण अभाव था। इसके कुछ ही पीछे जयदेवने राधा-माधवकी जिस 'केलिकला' का प्रचार किया उसके अनुकरणपर चलनेवाले भक्तोंने कृष्ण-चरितका वही अंश सामने

रक्खा जो अपने माधुर्यसे लोगोंको रसाप्यायित भर कर सकता था। कृष्णका लोकमंगल तथा लोकसंग्रही रूप उन्होंने अपनी रचनाओंके द्वारा उपस्थित ही नहीं किया। अतएव जनसमाजके समस्त जीवनका आदर्श इनके द्वारा भी नहीं आ पाया। यह कार्य गोस्वामीजीने रामका मर्यादापूर्ण चरित उपस्थित करके सम्पन्न किया। उन्होंने अनुभव किया कि इस समय हिन्दू समाजको ऐसे आदर्शकी आवश्यकता है जिसे सामने रखकर वह अपनेको सुसंघटित और सुव्यवस्थित कर सके। भगवान्के विविध अवतारोंमें रामका ही स्वरूप ऐसा था जो मानवमात्रके लिये पूर्ण रूपसे आदर्श बन सकता था। इसीलिये रामकी इस गाथामें ऐसे चरित्रोंका समावेश किया गया जो समाजके सभी वर्गोंके सब पदोंके लिये आदर्श हो सकें तथा प्रत्येक मनुष्यके लिये सभी परिस्थितियोंका सामना करने और उनका समाधान ढूँढ लेनेके उपायोंका भो निर्देश कर सकें। इसीलिये गोस्वामीजीने रघुनाथकी गाथा 'भाषा'में उपस्थित करनेकी आवश्यकता समझी और अपने इस ग्रन्थमें उन्होंने यह कार्य पूरी सफलताके साथ सम्पन्न भी किया। अतः, गोस्वामीजीने 'स्वान्तःसुखाय' लिखकर भले ही अपनी शालीनताका परिचय दिया हो किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यह ग्रन्थ उन्होंने 'सर्वान्तःसुखाय' ही लिखा।

यह 'स्वान्तःसुखाय' रचनाका उद्देश्य किस प्रकार व्यापक 'सर्वान्तः-सुखाय' था इसका स्पष्टीकरण स्वयं गोस्वामीजीने रामचरितमानसके प्रारम्भमें कर दिया है—

कीरति भनिति भूति भल सोई।
सुरसरि-सम सबकर हित होई॥
जे एहि कथहि सनेह-समेता।
कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥

होइहहिं रामचरन अनुरागी ।
कलिमल-रहित सुमंगल भागी ॥

एहि बिधि निज गुन-दोष कहि, सबहि बहुरि सिर नाइ ।
बरनउँ रघुबर बिसद जसु, सुनि कलि-कलुष नसाइ ॥

अदभुत सलिल सुनत गुनकारी ।
आस पिआस मनोमल-हारी ॥
राम सुप्रेमहि पोषत पानी ।
हरत सकल कलि-कलुष गलानी ॥
भवश्रम सोषक, तोषक तोषा ।
समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥
काम कोह मद मोह नसावन ।
बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन ॥
सादर मज्जन पान किए तें ।
मिटहिं पाप परिताप हिए तें ॥

इससे स्पष्ट हो गया कि उन्होंने 'सबकर हित' के लिये, सबको 'कलिमल रहित' करने, 'कलि-कलुष' नष्ट करनेके लिये, 'भवश्रम'का शोषण करनेवाले, 'दुरित, दुःख, दारिद्र्य और दोषका शमन' करनेवाले, 'काम, क्रोध, मद, मोह' का नाश करनेवाले तथा 'विमल विवेक और विराग' बढ़ानेवाले उस मानस-जलकी सृष्टि की जिसमें सादर स्नान करने और जिसका सादर पान करनेसे हृदयका पाप और परिताप मिट जाय। यही रामचरितमानसकी रचनाका उद्देश्य है।

मूल सामग्रीका स्रोत

रामकथाका उद्गम वस्तुतः आदिकवि वाल्मीकि-प्रणीत रामायण ही है।

जिसने भी रामकथाका गान किया है उसने मुख्यतः आदिकवि प्राचेतसकी रचनाका ही आश्रय लिया है। उनके लिये किसी कविने कहा है—

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविता-शाखां वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम् ॥

[कविता-रूपी वल्लरीकी शाखापर बैठकर मधुर अक्षरवाले राम-राम शब्दोंको बड़ी मधुरताके साथ कूकनेवाले वाल्मीकि-रूपी कोकिलको प्रणाम करता हूँ।]

इसीलिये गोस्वामीजीने ग्रन्थके आरम्भमें ही उनकी वन्दना की है—

सीताराम-गुणग्राम-पुण्यारण्य-विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध-विज्ञानौ कवीश्वर-कपीश्वरौ ॥

इसके आगे तो और भी स्पष्ट रूपसे वे लिखते हैं—

बंदउँ मुनिपदकंज, रामायन जेहि निरमयउ ।

किन्तु 'भाषा'में रामचरितका वर्णन करनेके लिये गोस्वामीजीने केवल वाल्मीकिका ही अनुगमन नहीं किया है। वे तो निश्छल भावसे कहते हैं—

मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई ।
तेहि मग चलत सुगम मोहिं भाई ॥
व्यास आदि कविपुंगव नाना ।
जिन्ह सादर हरिचरित बखाना ॥
चरन-कमल बन्दौं तिन्ह केरे ।
पुरवहु सकल मनोरथ मेरे ॥
कलिके कविन्ह करौं परनामा ।
जिन्ह बरने रघुपति-गुन ग्रामा ॥

इतना ही नहीं—

जे प्राकृत कबि परम सयाने ।
भाषा जिन्ह हरिचरित बखाने ॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे ।
प्रनवउँ सबन्हि कपट सब त्यागे ॥

इस प्रकार गोस्वामीजीने कुछ छिपाया नहीं। आरम्भमें ही 'नाना-पुराण-निगम-आगम-सम्मत' लिखकर ही उन्होंने बता दिया है कि इसमें किसी एक स्थानसे सामग्री नहीं ली गई है। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि 'मानस'में जो अनेक कथाएँ आई हैं उनके लिये यह बात लिखी गई है, वरन् यह बात कथाके आधारके लिये कही गई है। इसलिये मूलकथाका आधार आदिकविकी रचना होते हुए भी अनेक स्थलोंपर वह मानसकी कथासे भिन्न है।

वस्तुतः मानसपर अध्यात्मरामायणका जितना प्रभाव है उतना और किसी ग्रन्थका नहीं। अध्यात्मरामायण कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है। यह ब्रह्माण्डपुराणका अंश है। इसमें सम्पूर्ण रामकथा उमा-महेश्वर-संवादके रूपमें कही गई है। तुलसीदासजीने भी इसी प्रणालीका आश्रय लेकर तीन वक्ताओं एवं तीन श्रोताओंके स्पष्ट माध्यमसे तथा चौथे स्वयं वक्ता और स्वयं श्रोताके माध्यमसे रामकी पूरी कथा कह डाली है और बीच-बीचमें बराबर पाठकके मनमें यह बात बैठाते रहनेका प्रयत्न किया है कि मैं जो कथा कह रहा हूँ यह वही है जिसे शिवने उमा और भुशंडिको सुनाया, भुशुंडिने गरुडको सुनाया और याज्ञवल्क्यने भरद्वाजको सुनाया। अध्यात्मरामायणसे गोस्वामीजीने संवाद-प्रणाली तो ग्रहण की ही साथ ही सबसे बड़ी बात उन्होंने उससे यह ली कि 'राम पूर्ण परात्पर ब्रह्म'के अवतार हैं।

तात रामकहँ नर जनि मानहु ।
निर्गुण ब्रह्म अजित अज जानहु ॥
निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर-महि-गो-द्विज-लागि ।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहिं मोच्छ सुख त्यागि ॥

इतना ही नहीं, रामको ब्रह्म माननेमें आना-कानी करनेवालोंके प्रति गोस्वामीजीका रोष चरम सीमातक पहुँच जाता है—

राम मनुज कस रे सठ बंगा ।

अध्यात्मरामायणमें भगवद्भक्तिकी प्राप्तिके लिये सत्संगको आवश्यक ही नहीं अनिवार्य बतलाया गया है । गोस्वामीजी भी कहते हैं—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग ।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥
भक्ति सुतंत्र सकल सुखखानी ।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥
पुन्य-पुंज बिनु मिलहिं न सन्ता ।
सतसंगति संसृति कर अन्ता ॥

इसी प्रकार रामने शबरीको नवधा भक्तिका जो उपदेश किया है वह दोनों ग्रन्थोंमें एक-सा ही है । दोनोंमें ही हरिको सत्कर्म समर्पण कर देनेकी बात कही गई है और दोनोंमें स्पष्ट कहा गया है कि शिवके प्रति द्वेष-बुद्धि रखनेवालेको रामकी भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती और न रामको भजे बिना शंकरकी भक्ति मिल सकती है । गोस्वामीजीने तो स्पष्ट शब्दोंमें श्रीरामसे ही कहला दिया है—

संकर भजन बिना नर, भगति न पावहि मोरि ।

वैसे अनेक स्थलोंपर गोस्वामीजीने अध्यात्म-रामायणसे मतवैभिन्य

भी प्रकट किया है किन्तु उन्होंने उससे गृहीत कथावस्तुमें अनेक संशोधन तथा परिवर्द्धन करके, उसे अत्यन्त कलापूर्ण बनाकर, उन्हीं उक्तियों और विवरणोंमें काव्यका जो उत्कर्ष दिखाया है वह अध्यात्मरामायणमें नहीं है। उसके वर्णन वर्णन-मात्र हैं।

महाभारत तथा अनेक पुराणोंमें जहाँ-जहाँ रामकथा आई है उन सबसे भी गोस्वामीजीने लाभ उठाया है। भागवतकी तो उक्तियाँ-तक गोस्वामीजीने अनेक स्थलोंपर ज्योंकी त्यों ले ली हैं। कलिधर्म-निरूपणका पूरा प्रसंग उन्होंने भागवतके आधारपर लिखा है। इनके अतिरिक्त अनेक अभ्यन्तर-कथाएँ भी मानसमें भागवतसे ली गई हैं।

संस्कृतके जिन अनेक काव्यों और नाटकोंसे उन्होंने सामग्री ली है उनमें मुख्य हैं रघुवंश, प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक। मानसपर रघुवंशका प्रभाव थोड़ा है। गीतावलीके सीता-निर्वासन आदि विषयक विवरणोंपर यह प्रभाव विशेष परिलक्षित होता है। किन्तु उपर्यङ्कित दोनों नाटकोंकी सरस उक्तियाँ गोस्वामीजीने अनेक स्थलोंपर ज्योंकी त्यों ग्रहण कर ली हैं। इतना ही नहीं, इनसे अपनी कथाके अनेक अंश भी गोस्वामीजीने चमत्कारपूर्ण बना लिए हैं। मानसमें जनकवाटिकामें रामसीताके प्रथम मिलनका जो कथांश आया है या परशुरामके आगमनपर लक्ष्मणके साथ उनका जो संवाद हुआ है उसके वर्णनका आधार प्रसन्नराघव नाटक ही है। परन्तु गोस्वामीजीने उसमें यथेच्छ काटछाँट तथा अभिवर्द्धन किया है। संवादोंमें अधिकतर हनुमन्नाटकका क्रम रक्खा गया है। इन सब आधारोंसे उक्तियाँ, कथांश और विवरण लेकर गोस्वामीजीने उन्हें इस कौशलसे सजा दिया है कि मूलकी अपेक्षा इस सुसम्पादित कथामें अधिक काव्यत्व और चमत्कार आ गया है। इनके संयोगसे उन्होंने रामचरितमानसको ऐसा पूर्ण कर दिया कि उनके मानसके समकक्ष

कोई भी ग्रन्थ नहीं टिक पाता। यह व्यापक पूर्णता स्वयं आदिकविमें ही नहीं है फिर औरोंने तो संक्षिप्त या एकपक्षीय विवरण ही उपस्थित किए हैं।

कुछ लोगोंने 'बार अनेक भाँति बहु बरनी'से यह समझानेका प्रयत्न किया है कि गोस्वामीजीने केवल संकलन किया है इसलिये मानसको उनकी स्वतन्त्र और मौलिक रचना नहीं माना जा सकता। किन्तु यदि गोस्वामीजी यह संकलन-कार्य न करते तो मानस 'छओं सास्त्र सब ग्रन्थनको रस' हो ही कैसे पाता? निश्चय ही रामचरितका गान सर्वप्रथम आदिकविने किया किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसके पश्चात् जिस-जिसने रामचरितका गान किया वह अमौलिक रहा। रामकी कथा औपन्यासिक कथाओंकी भाँति कोई मनगढ़न्त तो है नहीं, इसलिये मूल कथा तो सबकी वही रहेगी ही। यह मौलिकता केवल कथा-संचयमें नहीं वरन्, कथाके क्रम, शैली, गुम्फन, रचनाकौशल सभीमें हो सकती हैं। एक ही बातको अनेक प्रकारसे कह देना भी तो बड़ा भारी कवि-कौशल है। वही गोस्वामीजीने किया। अतः, गोस्वामीजीकी मौलिकताका अर्थ है प्राप्त सामग्रीको इस प्रकार संघटित और व्यवस्थित करना कि वह निखर आए, चमत्कृत हो जाय और उसकी ओर लोग इस प्रकार आकृष्ट हों कि निरन्तर उसका रस लेते रहनेपर भी उससे तृप्त न हों। रामचरित-मानसकी यह विशेषता सर्वविदित है कि गोस्वामीजीने अनेक नूतन कथा-प्रसंगोंका समावेश करके उसकी कथाको बहुत ही प्रभावात्मक बना दिया है। फिर गोस्वामीजीकी यह धारणा ही है कि उनका यह ग्रन्थ तभी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकता है जब यह सब शास्त्रों और ग्रंथोंसे पुष्ट हो।

इस दृष्टिसे गोस्वामीजीकी यह रचना मौलिक और पूर्ण है। इसमें

उन्होंने जो कुछ जहाँसे भी लिया है उसे सुन्दरतर रूपमें उपस्थित किया है, चाहे वह कथानक हो, उक्ति हो, वर्णन हो या कोई सिद्धान्त हो।

कथामें परिवर्तन कहाँ और क्यों ?

ऊपर बताया जा चुका है कि वाल्मीकि-कृत रामायण ही रामकी कथाका मूल आधार, राम-कथाका आदि स्रोत है। किन्तु गोस्वामीजीने रामकथाका उद्गम अन्यत्र भी बताया है। वे कहते हैं—

जागबलिक जो कथा सुहाई।
भरद्वाज मुनिबरहिं सुनाई॥
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी।
सुनहु सकल सज्जन सुख मानी॥
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा।
बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा।
रामभगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक मुनि पावा।
तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

और वही कथा—

मै पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकरखेत।

इसी कथाको—

भाषाबद्ध करबि मैं सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

इसका अर्थ यह हुआ कि गोस्वामीजीने वाल्मीकिके प्रति आभार अवश्य प्रकट किया है किन्तु कथा उन्होंने वाल्मीकिकी न कहकर वह

पुरातन कथा कही है जिसे शिवने उमा और कागभुसुंडिको, कागभुसुंडिने गरुडको और याज्ञवल्क्यने भरद्वाजको सुनाई है। वही कथा भक्त नरहरिदासजीने गोस्वामीजीको सुनाई तथा गोस्वामीजीने अपने मनको प्रबोध देनेके लिये भाषाबद्ध किया। ऐसी अवस्थामें वाल्मीकिकी रामकथा और गोस्वामीजीकी रामकथामें परिवर्तन अनिवार्य है।

वाल्मीकि-रामायण और मानस

वाल्मीकिने रामको विष्णुका अवतार पुरुषोत्तम माना है किन्तु तुलसीदासने रामका स्थान ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनोंसे ऊँचे माना है। इन त्रिदेवोंकी श्रेणी रामसे कहीं नीचे मानी गई है—

रामहिं भजहिं बिष्नु सिव धाता।
नर पाँवर कर केतिक बाता॥

दूसरी बात यह है कि ग्रन्थका उपक्रम और उपसंहार दोनोंमें यह वाल्मीकीय रामायणसे सर्वथा भिन्न है। वाल्मीकिने नारदसे जिज्ञासा की–

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥

[आजकल संसारमें गुणवान, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढव्रत कौन हैं ?]

इसपर नारदने जब रामका परिचय दिया उसके कुछ ही समय पश्चात् क्रौञ्चवधवाली घटना घटी जिसके अनन्तर ब्रह्माके आदेशसे वाल्मीकिने उस नूतन लौकिक छन्दमें रामकी सारी कथा कह डाली। किन्तु गोस्वामीजी लिखते हैं कि भरद्वाजने याज्ञवल्क्यसे जिज्ञासा की—

राम कवन पूछउँ प्रभु तोहीं।
कहिय बुझाइ कृपानिधि मोहीं॥

और तब याज्ञवल्क्य कहते हैं—

ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी।
महादेव तब कहा बखानी॥

वही कथा—

कहउँ सो मति अनुहार अब, उमासंभु संवाद।
भयउ समय जेहि, हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटइ विषाद॥

और इसके पश्चात् सती-उमाप्रसंग कहकर उन्होंने रामजन्मके-कारण और रामजन्मकी कथा आरम्भ कर दी।

गोस्वामीजीने रामके अवतारके चार कारण दिए हैं—नारद-शाप, मनु-शतरूपाको वरदान, जय-विजयको सनकादिकका शाप और जलन्धरकी पत्नीका शाप। ये चारों अवतार चार कल्पोंके हैं। इसीलिये प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजीने चार कल्पोंकी कथा एक साथ कह दी है। वाल्मीकिने रामावतारके ऐसे कोई कारण नहीं बताए हैं।

वाल्मीकिने लिखा है कि वृद्ध हो जानेपर भी जब दशरथके कोई सन्तान नहीं हुई तब वशिष्ठके परामर्शसे उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ किया और तब उनकी तीनों रानियोंसे समय पाकर चार पुत्र हुए। गोस्वामीजीने पुत्रेष्टि यज्ञकी बात संक्षेपमें लिखी अवश्य है किन्तु इससे पूर्व, राक्षसोंके उपद्रवसे त्रस्त धराका ब्रह्माके पास जाने, सब देवताओं-द्वारा विष्णुकी स्तुति करने एवं विष्णुका दशरथके पुत्रके रूपमें अवतार लेकर राक्षसोंका विनाश करनेकी प्रतिज्ञाकी बात विस्तारसे लिखी है जो औरोंने नहीं लिखी है। इसी प्रकार विश्वामित्रके साथ जाते समय रामको विश्वामित्र-द्वारा जो अनेक दिव्यास्त्र प्रदान किए गए और अनेक प्रकारके युद्धकौशल सिखाए गए उनके सम्बन्धमें गोस्वामीजीने संक्षेपमें लिख दिया है—

'विद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्हीं ॥'
'जाते लाग न छुधा पिपासा ।'
'अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ॥'
'आयुध सर्व समर्पिकै, प्रभु निज आस्रम आनि ।'

अहल्यावाले प्रकरणमें दोनोंके वर्णनोंमें भेद है। धनुर्भङ्गके पूर्व फुलवारीमें राम-सीताके परस्पर अवलोकनवाला प्रसंग तो वाल्मीकिमें है ही नहीं, साथ ही अन्य विवरण भी संक्षेपमें ही दिए गए हैं किन्तु गोस्वामीजीने इनका वर्णन बहुत ही सहृदयतासे किया है। सबसे बड़ा अन्तर परशुरामवाले प्रसंगमें है। वाल्मीकिने परशुरामका आगमन तब दिखाया है जब बारात लौट रही है। गोस्वामीजीने धनुर्भङ्ग होते ही परशुरामको उपस्थित कर दिया है। परशुरामसे सभी राजा डरते थे। परशुरामके उस समय आने और रामद्वारा पराभूत हो जानेसे रामका महत्त्व और शौर्य बढ़ गया जिससे राजाओंके उपद्रव शान्त हो गए। इसीलिये सम्भवतः गोस्वामीजीने इसके लिये उपयुक्त स्थल यही समझा। काव्यमें नाटकीय कुतूहल और प्रभाव उत्पन्न करनेकी दृष्टिसे यह सर्वथा उचित ही किया गया।

रामके वनगमनके प्रसंगमें भी यद्यपि मूलकथा एक ही है कि कैकेयीकी दुर्नीतिसे रामका निर्वासन हुआ किन्तु दोनोंमें बड़ा भारी अन्तर है। वाल्मीकिके अनुसार दशरथ गुप्त रूपसे रामसे कहते हैं कि मैं तुम्हें कल यौवराज्य पदपर अभिषिक्त कर दूँगा जिससे आगे चलकर कोई बखेड़ा न उठ खड़ा हो जाय। किन्तु गोस्वामीजीने यह सूचना वशिष्ठसे रामको दिलाते हुए कहलाया है—

राम करहु सब संजम आजू।
जौ बिधि कुसल निबाहै काजू ॥

मन्थरावाले प्रसंगमें भी दोनोंमें अन्तर है। गोस्वामीजीने मन्थरा-की बुद्धि सरस्वती-द्वारा भ्रष्ट कराई है और वाल्मीकिका कहना है कि उसने स्वयं अपनी कुटिल बुद्धिसे सब किया। इसी प्रकार कौशल्या, सीता और लक्ष्मणवाले वर्णनोंमें भी दोनोंमें अन्तर है।

लक्ष्मण और निषादकी वार्त्तावाला प्रसंग तथा भरत और निषाद-वाला वृत्तान्त भी दोनोंमें दो प्रकारसे मिलता है।

जयन्तवाली कथामें तो दोनोंमें बहुत ही अन्तर है। वाल्मीकि-ने लिखा है कि जयन्तने सीताजीके स्तनपर प्रहार किया किन्तु गोस्वामीजीने चरणोंपर चंचु-प्रहारकी बात लिखी है। शूर्पणखाके लिये वाल्मीकिने लिखा है कि वह भयानक और कुरूप वेशमें रामके यहाँ गई किन्तु गोस्वामीजीने 'रुचिर रूप' धरकर जानेकी बात लिखी है। शबरीवाले प्रसंगमें भी दोनोंके वर्णनोंमें अन्तर है। माया सीताकी बात भी वाल्मीकिमें नहीं आई है।

हनुमान् और रामके मिलनकी कथा भी दोनोंमें भिन्न प्रकारसे लिखी गई है। वाल्मीकिने हनुमान्‌जीको भिक्षुके रूपमें दिखाया है किन्तु गोस्वामीजीने बटुके रूपमें। दोनोंके वार्त्तालापमें तो बहुत अन्तर है ही। वाल्मीकिके अनुसार बालिने प्राण छोड़ते समय अंगदको सुग्रीवकी शरणमें छोड़ा है किन्तु गोस्वामीजीके अनुसार उसने अंगदको रामके हाथ सौंपा है।

सीताकी खोजके प्रसङ्गमें वाल्मीकिने अशोक-वनमें हनुमान्‌के स्वयमेव जानेकी बात कही है किन्तु तुलसीदासने विभीषणके बतानेपर उनके वहाँ जानेकी बात कही है। मुद्रिकावाला वर्णन भी दोनोंमें एक-सा नहीं है। वाटिकाका विध्वंस करनेके लिये हनुमान्‌जीका जाना तो दोनोंमें है किन्तु गोस्वामीजीने लिखा है कि वे सीताजीसे पूछकर गए और

फल खाकर यों ही उसे नष्ट करने लगे। परन्तु वाल्मीकिने सीताकी अनुमतिका उल्लेख ही नहीं किया है। वहाँ जाकर ध्वंस करनेका कारण भी यह लिखा है कि रावणका भेद जाननेके लिये उन्होंने यह युक्ति निकाली। रामेश्वरका लिंग स्थापित करनेका कोई प्रसंग वाल्मीकिमें नहीं आया है।

अंगदके दौत्यका वर्णन तो दोनोंने किया है परन्तु किरीट फेंकने और पैर रोपनेकी बात वाल्कीकिमें नहीं है। राम-रावण-युद्ध और दोनों सैन्य-दलोंके युद्धका वर्णन वाल्मीकिमें अत्यन्त विस्तृत है।

रामके लौटनेपर उनके राज्यारोहणके अनन्तर रामराज्यका वर्णन करनेके पश्चात् गोस्वामीजीने राम-द्वारा सीताके त्याग, लवकुशका विवरण, रामाश्वमेध और रामके स्वर्ग-गमनका कोई उल्लेख नहीं किया है। ग्रन्थका उपसंहार भी उन्होंने सर्वथा दूसरे ढंगसे किया है।

अध्यात्म-रामायण और मानस

मानसपर अध्यात्म-रामायणका रंग गहरा होते हुए भी अनेक विवरणोंमें मानसकी पद्धति निराली है। सबसे बड़ा अन्तर तो यही है कि अध्यात्म-रामायण तो केवल शंभु-उमाके संवादके रूपमें है किन्तु मानसमें चार वक्ता और चार श्रोता हैं और यह साधारण काव्य-कौशलकी बात नहीं है कि यह क्रम कहीं भंग नहीं होने पाया है। कितनी ही घटनाएँ मानसमें ऐसी हैं जिनका उल्लेख-तक अध्यात्म-रामायणमें नहीं है। कितनी ही घटनाओंमें गोस्वामीजीने इतना अधिक फेरफार कर दिया है कि कथाकी मार्मिकता, सुन्दरता, सरसता तथा आकर्षकता बढ़ गई है। अध्यात्मरामायणके उत्तरकाण्डकी कथा तो मानसमें आई ही नहीं है।

इन परिवर्तनोंका कारण समझनेमें कोई कठिनाई नहीं है। गोस्वामीजीने मानसकी कथामें केवल दो ग्रन्थोंसे सहायता ली है—

वाल्मीकि-रामायण तथा अध्यात्म-रामायणसे। अतः इन दो ग्रन्थोंके साथ रामचरितमानसकी रचनाका उद्देश्य स्पष्ट हो जानेपर तो अन्तरका कारण भली भाँति समझमें आ जाता है। वाल्मीकि-रामायणको ही लीजिए। वाल्मीकि आदिकवि हैं। उनके समयमें समाजकी अवस्था गोस्वामीजीके समयकी अवस्थासे पूर्णतः भिन्न थी। उस युगमें आवश्यकताएँ भिन्न थीं। आर्य-संस्कृति उस समय उत्कर्षोन्मुख थी। अतः उस सांस्कृतिक सन्दर्भमें रामको मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें दिखाकर ही समाजको निश्चित आदर्शकी ओर प्रवृत्त किया जा सकता था। इसके लिये यह परम आवश्यक था कि आर्योंकी सामाजिक, राजनीतिक, कलात्मक सभी अवस्थाओंका विशेष विवेचन और वर्णन किया जाय तथा रीति-नीति सबकी व्याख्या की जाय। इसके साथ ही वाल्मीकिको सूर्यवंशका इतिवृत्त भी प्रस्तुत करना था इसीलिये उन्होंने राम-विवाहके समय वंशावली देकर यह कार्य भी किया है। इसी क्रममें उन्होंने अपने युगकी आवश्यकताएँ ध्यानमें रखकर युद्ध आदिका भी पूर्ण वर्णन कर दिया है। तात्पर्य यह है कि रामकथाके माध्यमसे उन्होंने आर्य-संस्कृति और सभ्यताका चरम उत्कर्ष और आदर्श रूप उपस्थित करनेका जो अपना लक्ष्य निर्धारित कर रक्खा था उससे उनका सम्पूर्ण काव्य परिपूर्ण है।

अब अध्यात्मरामायणको लीजिए। यह तो निर्विवाद है कि रामायणकी रचनाके पश्चात् पुराणोंकी रचना हुई। दोनोंके रचना-कालमें वर्षोंका नहीं, शताब्दियोंका अन्तर है। इस बीच सामाजिक आदर्श, राजनीतिक अवस्थाएँ, धार्मिक और दार्शनिक वृत्तियाँ सब बदल चुकी थीं। अतः, जिस समय अध्यात्मरामायणकी या यों कहिए कि पुराणोंकी रचना हुई उस समय भारतवर्षका आर्य अथवा हिन्दू समाज वैदिक देवताओंकी उपासना-पद्धतिको मानते हुए भी पौराणिक देवताओंकी

उपासनाकी ओर वेगसे झुक चला था। त्रिदेववादकी स्पष्ट रूपसे स्थापना हो चुकी थी। साकार उपासनाके पथपर समाज आगे बढ़ चुका था। शिव और विष्णुकी आराधनाका मार्ग पुराणोंने पूर्ण प्रशस्त कर दिया था। शैव और वैष्णव-प्रधान कहे जानेवाले सभी पुराणोंमें दोनों देवोंकी उपासनाको महत्त्व प्रदान किया जा चुका था। राम और कृष्ण दोनों, विष्णुके अवतारके रूपमें प्रतिष्ठित हो चुके थे इसलिये इन दोनोंको भी विष्णुके रूपमें ही सम्मान मिल गया था। यही कारण है कि अध्यात्मरामायणमें सर्वत्र रामको विष्णुका अवतार मानकर उनकी स्तुति हुई है। अध्यात्म-रामायणमें इसी आधार-पर रामकी कथा वर्णित है। ब्रह्म, जीव और मायाके सम्बन्धमें अध्यात्मरामायणके वर्णन ठीक वे ही हैं जो समस्त पुराण-साहित्यको मान्य हैं। पुराणोंमें भगवद्भक्तिका विशद विवेचन करके भी उसे ज्ञान-प्राप्तिका साधन बताया गया है और ज्ञानको सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। अध्यात्मरामायणका भी प्रतिपाद्य यही है। इसी प्रकार साधकको स्वरूपमें स्थित होनेके लिये रामजीने यही धारणा करनेका आदेश दिया—

प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयोऽसकृद्विभातोऽहमतीवनिर्मलः ।
विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमक्रियः ॥
सदैव मुक्तोऽहमचिन्त्यशक्तिमानतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ।
अनन्तपारोऽहमहर्निशं बुधैर्विभावितोऽहं हृदि वेदवादिभिः ॥

[अध्यात्मरामायण ५।४३-४४]

[मैं प्रकाश-रूप हूँ, अजन्मा हूँ, मेरे समान कोई दूसरा नहीं है और सदा चमकते रहनेसे अत्यन्त स्वच्छ हूँ। मैं विशुद्ध विज्ञानमय, विकार-रहित, पूर्ण, आनन्दमय और निष्क्रिय हूँ।

मैं सदा ही मुक्त हूँ, अचिन्त्य शक्तिवाला हूँ, इन्द्रियों-द्वारा न ग्रहण

किए जा सकने-योग्य ज्ञानके स्वरूपवाला हूँ, मुझमें कोई विकार नहीं होता और ज्ञानवान् वेदवादी लोग हृदयमें दिन-रात मेरा ही ध्यान करते रहते हैं ।]

अध्यात्मरामायणमें रामका यही स्वरूप व्यापक रूपसे सर्वत्र भरा पड़ा है । फिर भी उसमें लिखा है कि वही पुराणपुरुष परमात्म-स्वरूप राम संसारपर अनुग्रह करनेके लिये मायारूप धारण कर लेते हैं । माया ही परम शक्ति है जिसकी शक्तिसे त्रिदेव शक्तिशाली होकर अपने-अपने कार्योंका सम्पादन करते हैं ।

इन विवरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि अध्यात्मरामायण मूलतः इतिहासका ग्रन्थ नहीं है । पुराणोंमें इतिहास अवश्य है किन्तु उनकी रचना इतिवृत्तात्मक ढंगसे नहीं हुई है । उनका प्रतिपाद्य वस्तुतः सर्ग, उपसर्ग, मन्वन्तर और वंशानुचरितका वर्णन ही है जिसे परिपुष्ट करनेके लिये कहीं-कहीं प्राचीन इतिहासका यत्र-तत्र उल्लेख कर दिया गया है । अध्यात्मरामायणकी रामकथाको भी इसी ढंगसे देखना चाहिए ।

रामचरित-मानस

अब रामचरितमानसपर विचार कीजिए । मानसकी रचनाके उद्देश्य-वाले प्रकरणमें बताया जा चुका है कि गोस्वामीजीने यद्यपि 'मोरे मन प्रबोध जेहि होई' कहकर कथाकी रचना की किन्तु उनका विचार वस्तुतः यह था कि हिन्दू-मात्रको इस कथासे प्रबोध हो और वह भगवान्‌की भक्तिकी ओर प्रवृत्त होकर उनसे अपने दुःखादिकी निवृत्तिके लिये प्रार्थना करे क्योंकि भगवान्‌का वचन है—

'आए सरन तजहुँ नहिं ताही' ।

अतएव उनकी शरण ग्रहण करणेसे ही समाजका लाभ सम्भव है ।

इसीके साथ उन्होंने रामकथाके माध्यमसे समाजके सम्मुख ऐसा आदर्श भी उपस्थित किया जिसे लक्ष्य मानकर चलनेसे हिन्दू जाति पुनः उत्कर्ष प्राप्त कर सकती थी। गोस्वामीजीके समयमें इतने मत-मतान्तर थे कि समाजके सामने कोई निश्चित आदर्श नहीं रह गया था। लोग पथ-भ्रष्ट हो चले थे। इसलिये उन्हें यह भ्रमजाल भी तोड़ फेंकना था जिससे लोगोंको स्पष्ट मार्ग मिल सके। इन सभी परिस्थितियोंके समाधानके लिये रचना करते समय निश्चय ही वे रामका इतिवृत्त मात्र प्रस्तुत करके सफल नहीं हो सकते थे। यही कारण है कि आदिकविकी कथामें उन्हें ऐसे अनेक परिवर्तन करने पड़े जिनसे कथा, युगके अनुकूल बनकर लोगोंको रुचिकर हो और उनका हित साधन कर सके। अध्यात्मरामायण-कारको भी परिस्थितियोंके अनुसार ही अनेक स्थलोंपर कथामें परिवर्त्तन करनेकी आवश्यकता इसीलिये अनुभव हुई। इस प्रकार वाल्मीकिने केवल मर्यादा-पुरुषोत्तम रामका इतिवृत्त प्रस्तुत किया है और अध्यात्म-रामायणकारने केवल रामभक्तिका प्रचार किया है। किन्तु गोस्वामीजीको दोनोंके समन्वयकी आवश्यकता थी और साथ ही ऐसा ग्रन्थ प्रस्तुत करना था जो इतिहास, पुराण, नीति धर्म सबका काम दे सके। अतः, मानसमें उन्होंने इन सबका समावेश किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि अध्यात्मरामायणकारने अपनी रचनामें काव्यतत्त्वकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। गोस्वामीजीकी रचना अन्य बातोंके साथ-साथ महाकाव्यका भी उत्कृष्टतम उदाहरण है। श्रुतिके समान इसीलिये उसमें गुरु-सम्मित और स्मृतिके समान सुहृत्सम्मित विवेचन नहीं किया जा सकता था। काव्यतत्त्वको दृष्टिमें रखकर उसकी रचना कान्ता-सम्मित उपदेशके अनुसार ही ठीक हो सकती थी। अतः, साहित्यशास्त्रमें महाकाव्यकी जो परिभाषा दी हुई है उसका पूरा ध्यान रखकर ही गोस्वामीजीने मानसकी

रचना की है । काव्यमें कथा और घटनाके संयोजनका औचित्य, उनका अनुपात, मार्मिक स्थलोंका चित्रण, रस तथा अलंकार आदिकी उचित योजना, चरित्रनिर्वाह, संवाद-योजना तथा कथा-प्रवाह आदिका जैसा समुचित प्रयोग रामचरितमानसमें है वैसा हिन्दीके किसी दूसरे महाकाव्यमें नहीं मिलता । इसीलिये उन महाकाव्योंकी अपेक्षा 'मानस'के वर्णनोंमें अधिक स्वाभाविकता और रस है ।

अप्रस्तुतविधान

प्रस्तुत तथा वर्णनीय विषयकी तीव्रतम और शीघ्रतम अनुभूति करानेके लिये तथा प्रस्तुतको भली भाँति हृदयंगम और स्पष्ट करनेके लिये अप्रस्तुतका संयोजन करना ही अप्रस्तुत-विधान या अलंकार-विधान कहलाता है । 'मुख सुन्दर' है कहनेसे यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि मुखके सौन्दर्यकी विशेषताएँ क्या-क्या हैं । किन्तु जब यह कहा जाय कि 'मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर है' तो स्पष्ट हो जाता है कि मुखमें चन्द्रमाका आकार, प्रकाश, शीतलता, मनोहरता, सुधोपम आनन्द, चमक तथा आह्लादकारिता विद्यमान है। इस अप्रस्तुत उपमानसे मुखके सौन्दर्यका भाव स्पष्ट समझमें आ जाता है । इसीको अप्रस्तुत-विधान कहते हैं ।

तुलसीदासने अपने वर्ण्य विषयको हृदयंगम करानेके लिये जिन उपमानों, कल्पनाओं और प्रतीकोंका आश्रय लिया है वे हमारे जीवनमें बराबर आनेवाले पदार्थ हैं । इससे वर्ण्य विषयका बोध होनेमें अत्यन्त सुविधा हो जाती है । एक उदाहरण लीजिए—

नगर ब्यापि गई बात सुतीछी ।
छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी ॥

रामके वनगमनकी बात किस वेगसे नगरमें फैल गई इसका यथार्थ

बोध बिच्छूके विषसंचरणसे भली प्रकार हो जाता है। बिच्छूका विष जैसे लहरलेकर पीड़ा देता रहता है वैसे ही राम-वनगमनकी बात अयोध्याके निवासियोंके लिये पीडाकारक सिद्ध हुई।

दूसरा उदाहरण लीजिए। जनकजी चित्रकूट आ रहे हैं। रामने सुना और वे दौड़ चले। जनक राजा हैं। वे सेनाके साथ पूरे राजसी ठाट-बाटसे आए हैं। उन्हें साथ लेकर राम आश्रमकी ओर चले। यहाँ गोस्वामीजीने जिस सांग रूपकका आश्रय लिया है उससे इस विषयका स्पष्ट बोध हो जाता है कि यह सम्पूर्ण समाज रघुनन्दनके वनवास और दशरथके निधनसे कितना शोकसन्तप्त है। गोस्वामीजीके लिये लाला भगवानदीनजीने कहा है कि 'वे रूपकोंके बादशाह थे।' इसमें सन्देह नहीं कि रूपकोंके माध्यमसे उन्होंने विषयका बोध करानेमें अद्भुत सफलता प्राप्त की है। यदि उनके रूपकोंका आनन्द लेना हो तो निम्नांकित स्थलोंके रूपक देखिए—

सर्वप्रथम मानसका रूपक लीजिए जो—

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।
बेद पुरान उदधि घन साधू॥

से प्रारम्भ होकर—

राम सुप्रेमहिं पोषत पानी।
हरत सकल कलि कलुष गलानी॥

तक अथवा—

तृषित निरखि रविकर भ्रम बारी।
फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥

तक चलता है। यह सबसे बड़ा साङ्ग रूपक है। इसके पश्चात् दूसरा

रूपक वह लीजिए जहाँ कैकेयी दोनों वर माँगकर राजा दशरथके आगे खड़ी है। वहाँ गोस्वामीजीने कई रूपकोंका प्रयोग किया है—

बिपति बीज बरखा रितु चेरी।
भुइँ भइ कुमति कैकयी केरी॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा।
बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥

आगे चलकर उत्प्रेक्षा और रूपक दोनोंको मिलाकर कैकेयीका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि निवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवितव्यता बस काम-कौतुक लेखई॥

आगे इसी प्रकार उत्प्रेक्षाके साथ रूपक बाँधते हुए कैकेयीका ही वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी।
मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई।
भरी क्रोधजल जाइ न जोई॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा।
भँवर कूबरी बचन प्रचारा॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला।
चली बिपति बारिधि अनुकूला॥

इस प्रकार आदिसे अन्त-तक एकसे एक सुन्दर रूपक रामचरित-मानसमें स्थान-स्थानपर जड़े पड़े हैं।

जिस समय श्रीरामचन्द्रजी धनुष उठानेके लिये—

'सब मंचन तें मंच एक सुन्दर बिसद बिसाल'

पर पहुँचते हैं उस समय वहाँ बैठे हुए विविध प्रकारके लोगोंने रामको विविध रूपोंमें देखा और नवों रस उल्लेख अलंकारके साथ रामके स्वरूपमें उसी समय मूर्तिमान हो उठे—

जिन्हके रही भावना जैसी।
प्रभु मूरत तिन्ह देखी तैसी॥
देखहिं रूप महारन धीरा।
मनहुँ बीर रस धरें सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी।
मनहुँ भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप वेखा।
तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोइ भाई।
नरभूषन लोचन सुखदाई॥

नारि बिलोकहिं हरखि हिय, निज-निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप॥

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा।
बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहि कैसे।
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी।
सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा।
सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरि-भगतन्ह देखे दोउ भ्राता।
इष्टदेव इव सब सुखदाता॥
रामहिं चितव भायँ जेहि सीया।
सो सनेह रस नहिं कथनीया॥

संस्कृत कवियोंमें कालिदास अपनी उपमाओंके लिये प्रसिद्ध हैं। किन्तु गोस्वामीजीने अपने काव्योंमें परम्परागत उपमानोंके साथ-साथ जो अनेक उपमान ठेठ लोक-जीवनसे चुने हैं उनसे भावकी तीव्रताका सहज ही अनुभव हो जाता है। विन्सेन्ट स्मिथका तो यहाँतक कहना है कि गोस्वामीजीको कुछ उपमाएँ तो कालिदासकी उपमाओंसे भी बढ़कर हैं। उदाहरण लीजिए—

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला।
पीपर-पात सरिस मन डोला॥

पीपलका पत्ता एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता। चलदल उसका नाम ही है। राजा भी कुछ स्थिर नहीं कर पा रहे हैं। उनका मन तर्क-वितर्कमें उलझा हुआ है। यहाँ पीपलके पत्तेकी उपमासे विषयका कैसा स्पष्ट बोध हो जाता है।

सीताके रूप-वर्णनमें कविने जिस कौशलसे काम लिया है, वह अद्भुत है। जितने संभव उपमान हो सकते थे सबका विवरण देकर अन्तमें वे कहते हैं —

सब उपमा कबि रहे जुठारी ।
केहि पटतरिय बिदेह-कुमारी ॥

चन्द्रमा उपमानके लिये तो उन्होंने स्पष्ट कह डाला—

जनम सिन्धु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक ।
सियमुख समता पाव किमि, चन्द बापुरो रंक ॥

सभी उपमानोंका निराकरण करके उन्होंने सीताजीके रूपका उपमान ढूँढ़नेके लिये एक प्रयोग बताया है। वह यदि सिद्ध किया जा सके तब सीताजीका उपमान बन सकता है, पर वह भी कुछ-कुछ—

जौं छबि-सुधा-पयोनिधि होई ।
परम रूपमय कच्छप सोई ॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू ।
मथै पानि-पंकज निज मारू ॥

एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल ।
तदपि सँकोच समेत कबि, कहहिं सीय सम तूल ॥

गोस्वामीजीने उत्प्रेक्षाएँ भी कम सुन्दर नहीं ढूँढ़ी हैं। एक उदाहरण लीजिए। राम और लक्ष्मण जनककी वाटिकामें लताभवनसे सहसा किस प्रकार प्रकट होते हैं—

लता-भवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाय ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलध-पटल बिलगाय ॥

मुनि विश्वामित्रजीकी आज्ञासे राम और लक्ष्मण अपने गुरुजीके लिये फूल संग्रह करनेको जनकजीकी फुलवारीमें पहुँचकर लताकुञ्जकी ओटमें फूल चुनने लगे। जिस समय पार्वतीजीकी पूजा करनेके लिये

जानकीजी उस उपवनके मन्दिरमें आईं, उसी समय राम और लक्ष्मण दोनों ही लताकुञ्जकी लटकती हुई लताओंको हटाकर जानकीजीके सामने इस प्रकार प्रकट हुए मानो सुन्दर, स्वच्छ, बिना कलङ्कवाले दो चन्द्रमा सहसा बादलका पर्दा हटाकर निकल आए हों। भावार्थ यह है कि जिस समय सीताजी अपने उपवनमें अपनी सखियोंके साथ पार्वतीजीके पूजनके लिये पहुँचीं उसी समय राम और लक्ष्मण भी लताकुञ्जकी ओरसे लटकती हुई लताओंको हटाकर इस प्रकार सहसा प्रकट होकर सुन्दर लगने लगे जैसे बादलको फाड़कर एकके बदले दो निष्कलङ्क चन्द्रमा निकलकर खिल उठे हों।

इस परिस्थितिको इस प्रकार समझनेका प्रयत्न करना चाहिए। राजा जनकका निमन्त्रण पाकर राम-लक्ष्मणको साथ लेकर विश्वामित्रजी जनकपुर पहुँचे। वहाँ एक दिन प्रातःकाल विश्वामित्रजीकी आज्ञासे राम और लक्ष्मण दोनों उनके पूजनके लिये फूल लेनेको जनकजीकी फुलवारीमें चले गए। उसी समय संयोगसे सीताजी भी उस उपवनके मन्दिरमें गिरिजाका पूजन करनेके लिये आई हुई थीं। किन्तु राम और सीताजीके बीचमें एक लता-मण्डप पड़ता था जिसपर छाई हुई लताएँ नीचे तक लटककर ऐसी परदेके समान बन गई थीं कि जबतक उन लताओंको हटाकर ही कोई दूसरी ओर न जाय तबतक उसके आर-पार कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। उस उपवनमें जानेका मार्ग भी वही लता-मण्डप था इसलिये एक ओरसे जब सीताजी अपनी सखियोंके साथ चली आ रही थीं उसी समय दूसरी ओरसे लता-मण्डपपर छाई हुई लताएँ हटाकर रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी दूसरी ओर निकल आए। रामचन्द्रजीने दाहिने हाथसे और लक्ष्मणने बाएँ हाथसे जब लताएँ हटाईं और वे लता-मण्डपसे निकले तो ऐसा जान पड़ा मानो

दो चन्द्रमाओंने अपने आगे छाए हुए बादलको हाथसे हटा दिया हो और वे बाहर निकलकर इस प्रकार चमकने लगे हों मानो बादलोंके आगे दो चन्द्रमा निकल आए हों। इस दोहेमें कविने उत्प्रेक्षा अलंकारसे जो विशेष चमत्कार उत्पन्न कर दिया है वह यह है कि चन्द्रमा तबतक नहीं निकलता जबतक बादल उसके आगेसे हट न जायँ और पीछे खुला आकाश न दिखाई पड़ने लगे। किन्तु यहाँ कई विलक्षण बातें हैं। यहाँ एकके बदले दो-दो चन्द्रमा निकल आए हैं। यद्यपि अन्य ग्रहोंमेंसे मंगलपर २, बृहस्पतिपर ९, शनिपर ९ और वरुण (यूरेनस) पर ४ चन्द्रमा हैं किन्तु पृथ्वीपर तो एक ही चन्द्रमा है और वह भी सकलङ्क है। यदि मंगलपर दो चन्द्रमा निकलनेकी बात कही गई होती तो उसमें कोई चमत्कार न होता। किन्तु चमत्कार यह है कि पृथ्वीपर एक साथ एकके बदले दो-दो चन्द्रमा निकल आए हैं। वे चन्द्रमा भी ऐसे निराले कि उनपर कलङ्क नहीं और ऐसे प्रतापी कि बादलको हटाकर निकले और निकलकर बादलोंसे आगे बढ़ आए। चित्र-विज्ञानके अनुसार श्वेत या उजलेके पीछे जितनी अधिक कालिमा होगी उतना ही अधिक श्वेत या उजला रंग चमकेगा। अतः, लता-मण्डपकी लताओंको हटाकर ज्योंही राम और लक्ष्मणने उन्हें छोड़ा त्यों ही वे उनके पीछे गहरे नीले बादलके समान गहरे नीले रंगकी चादर बनकर ऐसी लटक गईं कि आगे राम और लक्ष्मणका सुन्दर रूप और भी सुन्दर बनकर निखर आया। गोस्वामीजीके कहनेका यही तात्पर्य है कि लता-भवनसे निकलकर ज्योंही राम और लक्ष्मण आगे खड़े हुए त्योंही वे लता-मण्डपकी लताओंकी नीलिमा और गहन हरीतिमाके आगे और भी अधिक सुन्दर लगने लगे।

इस दोहेमें राम और लक्ष्मण दोनोंको चन्द्रमा माना गया है। पर

रामका रंग तो नीलाम्बुजश्याम (नीले कमलके समान साँवला) या दूर्वादल-श्याम (दूबके पत्तेके रंगके समान साँवला) है और केवल लक्ष्मणका रंग गोरा है। ऐसी स्थितिमें केवल लक्ष्मण ही सुन्दर दिखाई देने चाहिएँ थे क्योंकि रामका साँवला रंग तो लताके रंगमें मिलकर छिप जाना चाहिए था। किन्तु गोस्वामीजीने यही चमत्कार दिखाया है कि दूर्वादल, नीलकमल और नवघनके समान श्यामल होनेपर भी उनके साँवले रंगमें इतना तेज था कि लता-भवनकी लताओंके आगे खड़े होकर भी वे उससे भिन्न, प्रकाशमान, दीप्तिमान प्रतीत हो रहे थे। जिस समय सीताजी अपने उपवनमें गिरिजाका पूजन करने गईं उस समय उनकी एक सखी उधर निकल गई थी जिधर राम और लक्ष्मण गुरुजीके लिये सुमन-संग्रह कर रहे थे। उन्हें देखकर इन दोनों भाइयोंकी शोभाका वर्णन करते हुए उस सखीने भी कहा था—

स्याम-गौर किमि कहौं बखानी।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

तब प्रश्न यह है कि यदि वे इतने तेजस्वी थे तो तुलसीदासजीने उनकी उपमा सूर्यसे क्यों नहीं दी? इसलिये नहीं दी कि सूर्यसे आँखें चौंधिया जाती हैं, वह देखनेमें सुखद नहीं होता। रहीमने कहा भी है—

रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जु होय।
कहा बापुरो भानु है, तप्यौ तरैयनु खोय॥

स्वयं गोस्वामीजीने भी कहा है—

संत-उदय संतत सुखकारी।
बिस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी॥

राम तो उस तमारि चन्द्रमाके समान उदित हुए जो आँखोंको भी अच्छे लगें और अन्धकार भी दूर कर दें। इस साँवले रंगका विचित्र चमत्कार है कि वह साँवला होता हुआ भी चन्द्रमाके समान सुखद और अन्धकार दूर करनेवाला है। यदि न विश्वास हो तो बिहारीका दोहा देखिए—

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ैं स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्वल होय॥

जिस श्याम रंगमें डूबनेवाला उज्ज्वल हो जाता है वह रंग स्वयं कितना उज्ज्वल होगा! उस साँवलेपनमें भी कुछ विचित्र चमक और उजलापन है किन्तु उसे देख वही पाता है जो उसे हृदयकी आँखोंसे देखे। फिर तो साँवला रंग लुप्त हो जाता है और अखंड प्रकाश ही प्रकाश रह जाता है, जिसका साक्षात् दर्शन सीताजीने और उस सखीने किया था जो उनका साथ छोड़कर फुलवारी देखने चली गई थी—

एक सखी सिय संग बिहाई।
गई रही देखन फुलवारी॥

और जब वहाँसे लौटी तो तब सुध-बुध भूलकर, क्योंकि उसे साक्षात् परम ज्योतिके दर्शन हो गए थे। इसीलिये गोस्वामीजीने इन्हें चन्द्र कहा है।

हमें जो चन्द्रमा दिखाई पड़ता है वह गोल है, उसमें कलङ्क है। उसके हाथ-पैर नहीं हैं। किन्तु गोस्वामीजीने जो दो चन्द्रमा लताभवनसे प्रकट कराए हैं उनकी यह भी विशेषता है कि बादल उनपर तभीतक छाए रह सकते हैं जबतक वे चाहें और जब उनकी इच्छा प्रकट होनेकी

हो तब झट अपने हाथसे बादल हटा कर प्रकट हो जायँ और बादल भी लताओंके समान दोनों ओर हट-बढ़कर पीछे पड़ जायँ।

आध्यात्मिक व्याख्या

राम साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। उन्हींकी मायासे यह सृष्टि उत्पन्न होती है, उसका पोषण और लय होता है। यह माया जबतक जीवपर व्याप्त रहती है तबतक ब्रह्मका दर्शन नहीं होता। उस ब्रह्मका साक्षात्कार तभी हो सकता है जब जीव स्वयं ज्ञान प्राप्त कर ले या तब हो सकता है जब स्वयं भगवान् अपने इष्टपर कृपा करके स्वयं अज्ञानका, मोहका, मायाका आवरण हटाकर स्वयं प्रकट हो जायँ। सीताजी तो रामकी परा-शक्ति हैं, मायास्वरूपिणी हैं। उसी रामका रूप उन्हें सखियोंने लताकी ओटसे दिखा दिया। देखते ही वे योगस्थ और तन्मय हो गईं—

लोचन-मग रामहिं उर आनी।
दीन्हें पलक-कपाट सयानी॥

इसी एकात्मताके समय मायाका पट दूर हो गया क्योंकि—

प्रीति पुरातन लखइ न कोई।

स्वयं ब्रह्म राम अपने भक्तके पास उसे स्वीकार करनेके लिये मायापट हटाकर प्रकट हो गए। जीव और ब्रह्मका मिलन हो गया।

बिन्दुमें सिन्धु समान, यह अचरज कासों कहौं।
हेरनिहार हेरान, रहिमन आपुहि आपुमें॥

[बूँदमें समुद्र समा गया, ढूँढ़नेवाला स्वयं अपनेमें खो गया।]

तभी तो स्वयं पार्वतीजीने उनका समर्थन किया—

मन जाहि राच्यो मिलिहि सो बर सहज सुंदर साँवरो।

और इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने लता-भवनसे इन दो चन्द्रमाओं-का उदय कराकर एक भव्य आध्यात्मिक सौन्दर्यका विलक्षण दृश्य उपस्थित कर दिया।

इस प्रकार मानसमें कविने स्थान-स्थानपर जिस अप्रस्तुतका विधान किया है उससे यह समझनेमें तनिक भी देर नहीं होती कि गोस्वामीजी बड़े अद्भुत कवि थे।

भावानुकूल शब्दयोजना

गोस्वामीजी—जैसे उच्च कोटिके महाकविकी काव्य-रचनामें भावा-नुकूल शब्द-योजनापर विचार करनेकी बात ही नहीं उठनी चाहिए। वे शास्त्र-पारंगत विद्वान्, अत्यन्त निपुण कवि, सरस-हृदय गुणी, पतनोन्मुख हिन्दू-समाजके उद्धार कार्यमें प्रवृत्त महात्मा थे। व्युत्पत्ति (अनेक विषयोंका ज्ञान) और लोकका अनुभव भी उन्हें पर्याप्त था। प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त कष्टमय होनेके कारण उनके मनमें सर्व-साधारणके प्रति सहानुभूतिका भाव भी अधिक था। इसलिये रस, भाव, घटना और वर्णन आदिके अनुकूल शब्दयोजना होना उनकी रचनाओंमें स्वाभाविक ही था। यही कारण है कि इस अमित प्रतिभा-सम्पन्न शब्दशिल्पीने अपनी 'ग्राम्यगिरा'के माध्यमसे अपने सूक्ष्म विचारों और व्यापक सिद्धान्तोंको व्यक्त करनेमें अद्भुत सफलता प्राप्त की।

गोस्वामीजीने अपना सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख महाकाव्य कोशलेन्द्रके सर्वातिप्रिय साकेत धाममें उस समय बोली जानेवाली अवधीमें लिखनेका निश्चय किया। यह वस्तुतः कविकी परिचित बोली भी थी और इसीलिये उन्होंने अपने कथाकाव्यके लिये उस समय प्रचलित दोहे-चौपाईवाली पद्धति भी ग्रहण की। किन्तु भाषाके आदर्शके सम्बन्धमें उन्होंने अपना मत भिन्न रक्खा। अवधीमें कथा-काव्यकी रचना करनेवालोंने सर्वत्र एक-सी ठेठ

शब्दावलीका प्रयोग किया है। उनकी शब्दयोजना सभी प्रकारके वर्णनों और संवादोंमें एक ढंगपर चली है, अतः उसमें भाषाका कोई चमत्कार नहीं आ पाया। वही रचना, वास्तवमें रचना है जिसमें शब्दोंका प्रयोग इस ढंगसे किया जाय कि पाठक उसे पढ़ते ही रसमग्न हो जाय। जब-तक रचना पढ़ते समय पाठक उसमें तन्मय न हो जाय, तबतक रचना सफल नहीं कही जा सकती। और यह सारा कार्य तभी सम्भव है जब उसमें इस प्रकारके शब्दोंका प्रयोग किया जाय कि वर्ण्य विषयका पूरा चित्र खड़ा हो जाय। इसीलिये सफल कवियोंकी रचनाओंमें शब्द-योजना सरल और सजीव पाई जाती है। गोस्वामीजीने श्रेष्ठ कविताका लक्षण स्वयं बताया है—

सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, सादर करहिं बखान॥

महान् शब्दशिल्पी गोस्वामीजीके मानससे इस प्रकारके कुछ उदाहरण लीजिए—

१. दार्शनिक भावोंकी अभिव्यक्तिमें गोस्वामीजीने संस्कृतकी समास-बहुला शब्दावलीका प्रचुर प्रयोग किया है और इस बातका सदा प्रयत्न किया है कि वह स्थल दार्शनिक भावोंके अनुरूप गम्भीर बना रहे। उदाहरण लीजिए—

१. बुध बिस्राम सकल जन-रंजनि।
रामकथा कलि-कलुष-विभंजनि॥
रामकथा कलि-पन्नग-भरनी।
पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी॥

२. सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा।
दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा॥

आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।
तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥
३. अकल अनीह अनाम अरूपा।
अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥
भव गोतीत अमल अविनासी।
निर्विकार निरवधि सुखरासी॥

२. इतिवृत्तात्मक वर्णनोंके लिये जिस भाषाका प्रयोग हुआ है उसमें शब्द-योजना अत्यन्त साधारण बोलचालकी रक्खी गई है—

१. भैया कहहु कुसल दुइ बारे।
तुम नीके निज नयन निहारे॥
जा दिनतें मुनि गए लिवाई।
तबते आजु साँचि सुधि पाई॥
२. आगे चले बहुरि रघुराई।
ऋष्यमूक परबत नियराई॥

३. संवादोंमें जिस समय जिस प्रकारकी भाषा अपेक्षित हुई है वहाँ उसी प्रकारकी शब्दावलीका प्रयोग हुआ है—

(क) रावण-अंगद संवादमें जब रामकी निन्दा रावण करता है तब अंगद रोषपूर्ण वाणीमें कहते हैं—

राम मनुज कस रे सठ बंगा।
धन्वी काम नदी पुनि गंगा॥

(ख) इसी प्रकार जब परशुरामको बनानेकी घड़ी आती है तब लक्ष्मण कैसी व्यंग्यपूर्ण शब्दावलीका प्रयोग करते हैं—

अपने मुँह तुम आपनि करनी।
बार अनेक भाँति बहु बरनी॥

नहिं संतोष त पुनि कछु कहहू ।
जनि रिसि रोकि दुसह दुख सहहू ॥

अंगद भी रावणसे इसी प्रकारकी शब्दावलीका प्रयोग करते हैं—

धर्मसीलता तव जग जागी ।
पावा हमहुँ दरस बड़भागी ॥

(ग) राम-भरत-संवादके अवसरपर गोस्वामीजीने अत्यन्त नम्रताभरी प्रसादगुणयुक्त शब्दावलीका आश्रय लिया है—

महीं सकल अनरथ कर मूला ।
सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥

(घ) प्रेम-पूर्ण शृंगारिक वर्णनोंमें पदावली कैसी श्रुतिमधुर हो जाती है—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि ।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥

५. बीभत्स, भयानक और अद्भुत भावोंके वर्णनमें आई हुई शब्दावली शिवजीकी बारातका पूरा चित्र उतार देती है—

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू ।
बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना ।
रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना ॥

तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे ।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरे ॥
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै ।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ॥

६. युद्ध-वर्णनके प्रसंगोंमें आई हुई शब्दावली भी देखिए—

कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा ।
बहुतक बीर होहिं सतखंडा ॥
घुर्मि घुर्मि घायल महिं परहीं ।
उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं ॥

वीरोंके कटने, गिरने तथा उठकर लड़नेका पूरा चित्र सामने उपस्थित हो जाता है ।

मानसमें जो नाटकत्व आ गया है वह इस प्रकारकी भावानुकूल शब्द-योजनाके कारण ही ।

पात्रों और घटनाओंकी योजना

गोस्वामीजीकी सबसे बड़ी विशेषता घटनाओं और पात्रोंकी उपयुक्त योजना है । इनकी उपयुक्त योजनाका अर्थ है कि एक तो घटनाओंकी दृष्टिसे पात्र उसके उपयुक्त हों; दूसरे घटनाएँ सर्वत्र स्वाभाविक प्रतीत हों । ऐसा न हो कि वे कारण विशेषसे रख दी गई हों और उनका सन्निवेश व्यर्थ प्रतीत होता हो । यही बात पात्रोंके सम्बन्धमें भी है । पात्रोंकी व्यर्थ सृष्टि करके कथाका अनावश्यक विस्तार करनेसे काव्यका रस नष्ट हो जाता है । किन्तु मानसके सभी पात्र स्वाभाविक रूपसे आए हैं । उसमें न तो किसी पात्रको व्यर्थ ही अनवसर बीच-बीचमें उपस्थित किया गया न उससे आवश्यकतासे अधिक काम ही लिया गया है ।

महत्त्वकी बात है घटनाओंके अनुरूप पात्रोंकी सृष्टि । मानसकी कथा वाल्मीकि और अध्यात्मरामायणोंसे अनेक स्थलोंपर भिन्न है । बहुत-सी घटनाएँ जो उनमें विस्तारपूर्वक वर्णन की गई हैं, वे मानसमें संक्षिप्त रूपमें आती हैं या उनका उल्लेख मात्र कर दिया गया है । दूसरी ओर

मानसमें ऐसी अनेक घटनाएँ कविने दी हैं जिनका उन रामायणोंमें नाम तक नहीं है। इसका मुख्य कारण ग्रन्थकारोंका लक्ष्य-भेद है। लक्ष्यभेदके कारण ही गोस्वामीजीको घटनाओंका संकोच, प्रसारण, त्याग और सर्जन करना पड़ा है और इससे मानसका काव्यत्व भी अपेक्षाकृत अधिक उत्कृष्ट हो गया है। भानुप्रतापकी ही कथा ले लीजिए। इस घटनाका उल्लेख किसी अन्य रामायणमें कहीं नहीं है। यह उपाख्यान गोस्वामीजी अपनी ओरसे ले आए हैं। किन्तु इससे उन परिस्थितियोंमें चमत्कार आ जाता है जिनके कारण रामका अवतार हुआ। इसीसे गोस्वामीजीने कहा भी है—

सो सब हेतु कहब मैं गाई।
कथा विचित्र प्रबन्ध बनाई॥

प्रबन्धको विचित्र बनानेका अभिप्राय ही यह होता है कि उसमें घटनाओंका संयोजन करके उसे अधिक प्रभावपूर्ण बना दिया जाय। घटनाकी योजनाका एक उदाहरण हनुमानके द्वारा सीताको मुद्रिका देना भी है। इसी प्रकार पात्रोंकी योजनामें उन्होंने स्वतन्त्रतासे काम लिया है और उन्हें वे उसी अंशतक लाए हैं जहाँतक उचित हो और कोई यह न कह सके कि गोस्वामीजीने अपनी ओरसे जोड़-घटाकर कथाका मूल रूप ही बदल डाला है अथवा अमुक अंश या घटना कल्पित लाकर गोस्वामीजीने किसी प्रकारका व्यतिक्रम उपस्थित कर दिया है।

शील-निदर्शन

प्रबन्ध-काव्य, उपन्यास या कहानीके लिये कवि जिन पात्रोंकी उद्भावना करता है उनमें या तो अपनी रचनाके उद्दिष्ट परिणामकी दृष्टिसे किसी विशेष स्वभावका आरोप करता है या कोई विशेष आदर्श उपस्थित करनेके लिये उनमें किसी विशेष गुण या शीलकी

प्रतिष्ठा करता है। कभी-कभी निर्दिष्ट परिणाम प्रकट करनेके लिये वह कुछ विरोधी पात्रोंकी सृष्टि करके ऐसा संघर्ष भी उत्पन्न करता है जिससे इच्छित परिणाम निकल आवे। किन्तु गोस्वामीजीके सभी पात्र दैवी हैं, जिनके चरित्र और उद्देश्य शुद्ध हैं। वे केवल दैवके हाथमें पड़कर कोई बुरा कर्म करते हैं, अपनी भावना या इच्छासे नहीं।

राम, भरत, दशरथ, लछमण, हनुमान्, सीता, कौशल्या और सुमित्राके चरित्रके सम्बन्धमें तो बहुत कुछ कहा और लिखा गया है। रामचरितमानस इनके उदात्त भावोंसे आद्यन्त परिपूर्ण है किन्तु जिन पात्रोंकी साधारणतः लोग निन्दा करते हैं और उन्हें खल नायक या दुष्ट चरित्र कहते हैं उन्हें भी गोस्वामीजीने माँजकर उदात्त बना दिया है।

रामको वन भेजनेका सारा दोष कैकेयी और उसकी कुबड़ी दासी मन्थरापर थोपा जाता है। किन्तु गोस्वामीजीने कह दिया कि सरस्वतीने उसकी बुद्धि फेरकर उसे अपयशकी पिटारी बना दिया—

नामु मंथरा मंदमति, चेरी कैकयि केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥

इसमें मंथराका कोई दोष ही नहीं है। वह देवताओंके हाथकी कठपुतली बनकर यह सब कुचक्र रच रही है।

और कैकेयी? कैकेयीने तो जैसे ही मंथरासे सुना कि रामको युवराज बनाया जा रहा है वैसे ही वह कहती है—

सुदिन सुमंगलदायक सोई।
तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥
राम तिलकु जौं साँचेहु काली।
देउँ माँगु मनभावत आली॥

प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें ।
तिन्हकें तिलकु छोभु कस तोरें ॥

इस प्रकार रामके प्रति स्नेह रखनेवाली कैकेयी भी मन्थराके कपट-प्रबोधके कारण झट इतनी बदल जाती है कि वह उस कुबड़ीसे कहने लगती है—

तोहि सम हित न मोर संसारा ।
बहे जात कइ भएसि अधारा ॥

और इसके पश्चात् कठोर होकर कैकेयी रामके वनवासका, दशरथके मरणका और भरतकी ग्लानिका कारण बनती है। किन्तु जब वह चित्रकूटमें पहुँचती है तब वह पश्चात्तापकी प्रतिमा बन जाती है—

प्रथम राम भेंटी कैकेयी ।
सरल सुभायँ भगति मति भेयी ॥
पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी ।
काल-करम-बिधि-सिर धरु खोरी ॥

उस समय तीनों माताएँ कैसी थीं—

देखीं राम दुखित महतारीं ।
जनु सुबेलि अवली हिममारीं ॥

और जब राम वनसे लौटे तब लाजके मारे कैकेयी मिलने तक—नहीं आई इसलिये—

प्रभु जानी कैकयी लजानी ।
प्रथम तासु गृह गए भवानी ॥

यह सब पढ़कर कौन कहेगा कि कैकेयी हृदयसे कुटिल और कपटी थी ।

रावणको लीजिए। उसने भी क्या सचमुच रामसे द्रोह किया था और क्या दुर्भावनासे सीताजीका हरण किया था? नहीं। जिस समय शूर्पणखा अपने भाई खर-दूषण और त्रिशिराके वधका समाचार लेकर पहुँचती है उस समय रावण उसे समझा-बुझाकर धैर्य देता है किन्तु स्वयं यह विचार करता है—

खर-दूषन मोहि सम बलवन्ता।
तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवन्ता॥
सुर-रंजन भंजन महिभारा।
जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ।
प्रभु-सर प्रान तजें भव तरऊँ॥

इतना ही नहीं, जब वह सीताजीका हरण करनेको उद्यत होता है उस समय प्रत्यक्ष रूपसे तो—

सुनत बचन दससीस रिसाना।

किंतु—

मन महुँ चरन बंदि सुख माना।

इस एक अर्धालीसे रावणका चरित्र निर्मल स्फटिक हो जाता है।

और कुम्भकर्ण भी जब जागता है तब पहले रावणको समझाता है—

सुनि दसकंधर बचन तब, कुम्भकरन बिलखान।
जगदम्बा हरि आनि अब, सठ चाहसि कल्यान॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना।
भजहु राम होइहि कल्याना॥

अब भरि अंक भेंटु मोहिं भाई।
लोचन सफल करौं मैं जाई॥
स्याम गात सरसीरुह लोचन।
देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥

इतना ही नहीं—

राम रूप गुन सुमिरत, मगन भयउ छन एक।

इसके पश्चात् जब वह युद्धक्षेत्रमें विभीषणसे मिलता है तब गद्गद होकर कहता है—

बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर।
भजेहु राम सोभा-सुख-सागर॥

यह सब पढ़कर कौन कहेगा कि कुम्भकर्ण रामका भक्त नहीं था? इन चरित्रोंको पढ़कर उन कथाओंका महत्त्व स्पष्ट हो जाता है जो रामके जन्मका कारण बतलानेके लिये गोस्वामीजीने प्रारम्भमें दी हैं।

मानसकी कथाके नायक श्रीराम हैं। रामको सदा मर्यादा-पुरुषोत्तम कहा गया है। अध्यात्मरामायणने उनमें विष्णुत्वका पूर्ण रूपसे आरोप कर दिया है। किन्तु गोस्वामीजीके राम तो त्रिदेवसे भी श्रेष्ठ पूर्ण परात्पर ब्रह्म ही हैं। इस ब्रह्म रामने यद्यपि कई स्थानोंपर अलौकिक कार्य भी किए किन्तु उन्होंने सर्वत्र सामाजिक मर्यादाका अवश्य ध्यान रक्खा। रामका चरित्र युद्धमें, प्रेममें, मातृ-पितृ-गुरुभक्तिमें, भ्रातृ-स्नेहमें, शरणागत-वत्सलतामें सदैव मर्य्यादापूर्ण रहा है। सीताको वाटिकामें देखनेपर और उनकी ओर सहज ही आकृष्ट होनेपर भी रामने पूर्ण मर्यादाका ध्यान रक्खा है। युद्धमें उन्होंने किसी प्रकारका ऐसा कार्य न होने दिया न स्वयं किया जो धर्मयुद्धके नियमके प्रतिकूल हो।

शरणागत-वत्सलताका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण तो शत्रुके भाईके प्रति किए हुए व्यवहारमें ही दिखाई पड़ जाता है। कैकेयीके इतना सब कुछ करनेपर भी रामके मनमें उसके प्रति कोई विकार नहीं होता और न पितासे ही वे कुछ कहते हैं। उलटे वे कहते हैं—

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तेहि मँह पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर।

भरतके प्रति उनके स्नेहभावकी तो चर्चा ही व्यर्थ है। चित्रकूटमें भरतपर लक्ष्मणका रोष देखकर राम कहते हैं—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा।
बिधि-प्रपंच मह सुना न दीसा॥

ऐसे आदर्श चरित्रोंकी सृष्टि करके ही गोस्वामीजी अपने काव्यमें यह चमत्कृति ला सके हैं कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है उसका प्रकाश बढ़ता जाता है।

गोस्वामीजीके चरित्रचित्रणकी एक विशेषता यह भी है कि सभी मुख्य पात्रोंका चारित्रिक परिचय उन्होंने ग्रन्थके उपक्रममें ही करा दिया है और आदिसे अन्ततक ठीक वही विशेषता सभी पात्रोंकी मिलती है, कहीं किसी प्रकारका अन्तर नहीं आने पाया है। भरतका उदाहरण लीजिए। ग्रन्थारम्भमें ही गोस्वामीजी कहते हैं—

प्रनवउँ प्रथम भरतके चरना।
जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम-चरन पंकज मन जासू।
लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

भरतके चरित्रका यह वैशिष्ट्य मानस भरमें मिलेगा। राज्य मिलनेपर भरतके मनमें कोई उत्साह नहीं होता। वे राज्यपर रामका अधिकार समझते हैं और अपनेको उनका एक लघु सेवक—

मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा।

हनुमानजी जब भरतसे पहली बार मिलते हैं तो वे कहते हैं—

जौं मोरे मन बच अरु काया।
प्रीति रामपद-कमल अमाया॥
तौ कपि होउ बिगत स्रम-सूला।
जौ मोपर रघुपति अनुकूला॥

और अन्तमें—

कपि तव दरस सकल दुख बीते।
मिले आज मोहिं राम पिरीते॥

भरतके चरित्रका चित्रण करनेमें गोस्वामीजीने जो अद्भुत भावपूर्ण कौशल दिखाया है वह संसार-भरके काव्योंमें अद्वितीय है। सारा अयोध्याकाण्ड भरतके उज्ज्वल चरित्रकी मूर्तिमती गाथा है और भरतके अतिरिक्त लक्ष्मण, हनुमान् सभी अद्भुत हैं, स्पृहणीय हैं, वन्दनीय हैं, अनुकरणीय हैं।

पर दशरथको भी हम नहीं भूल सकते जिसने सत्यकी रक्षाके लिये रामको वनवास दिया और प्रेमकी रक्षाके लिये अपने प्राण दे दिए। गोस्वामीजीने एक सोरठेमें उनका चरित्र खोलकर रख दिया—

बन्दउँ अवध-भुआल, सत्य प्रेम जेहि रामपद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥

जियन-मरन फलु दसरथ पावा।
अण्ड अनेक अमल जसु छावा॥
जियत राम बिधु-बदन निहारा।
राम-बिरह करि मरन सँवारा॥

रामकी माता कौशल्या और लक्ष्मणकी माता सुमित्राका कम महत्त्व नहीं है। धीर, वीर, गंभीर कौशल्याने रामसे कहा—

जौं केवल पितु आयसु ताता।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु-मातु कहेउ बन जाना।
तौ कानन सत अवध समाना॥

क्या कोई साधारण माता इस धैर्य और तेजके साथ अपने पुत्रको ऐसा आदेश दे सकती है?

लक्ष्मणकी माता सुमित्रा भी किसी प्रकार कम नहीं है। ज्योंही लक्ष्मणने आकर कहा कि राम वनको जा रहे हैं और मैं भी उनके साथ जाना चाहता हूँ उसी समय बिना कुछ सोचे-बिचारे उस तेजस्विनी क्षत्राणीने—

धीरज धरेउ कुअवसर जानी।
सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही।
पिता राम सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू।
तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥

जौ पै राम सीय बनु जाहीं।
अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें।
सब मानिअहिं रामके नातें॥
तुम्हरेहिं भागु राम बन जाहीं।
दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

श्रीसीताजीका चरित्र कोई मनुष्य नहीं वर्णन कर सकता, गोस्वामीजीने भी नहीं वर्णन किया है। वे केवल जगदम्बाको स्मरण करके मौन हो जाते हैं—

जगदम्बा जगजननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधानकी॥
ताके जुगपद कमल मनावौं।
जासु कृपा निरमल मति पावौं॥

इस प्रकार मानसमें अपने सभी पात्रोंका चित्रण करनेमें उन्होंने उन पात्रोंमें सद्गुणोंका आरोप इस प्रकार किया है कि इससे काव्यमें कहीं भी अस्वाभाविकता या कृत्रिमता नहीं आने पाई। विचित्र बात यही है कि मानसके सभी पात्र रामकी भक्ति करते हैं यहाँतक कि रावण भी और कुम्भकर्ण भी। भक्ति-रसप्रधान इस काव्यमें इसीलिये उनके चरित्र-चित्रणमें आदर्शका रूप निखर आया है—वह आदर्श जिसकी आवश्यकता किसी एक समय या कालके लिये नहीं वरन् सभी युगों, सभी देशों और सभी परिस्थितियोंके लिये समान है।

सामाजिक तथा राष्ट्रिय आदर्श

रामराज्यका जो वर्णन गोस्वामीजीने किया है उसमें जिस मर्यादित

सामाजिक व्यवस्थाका स्वरूप प्रकट हुआ है वह किसी भी राज्य-व्यवस्था-के लिये स्पृहणीय है। उसी व्यवस्थामें यह सम्भव हो सकता है कि लोगोंका चारित्र्यिक विकास हो और सब लोग विषमता तथा वैमनस्यके भाव खोकर परस्पर प्रेम और सौहार्दका जीवन बिताएँ। सामाजिक मर्यादा-का ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है और यह सब इसलिये सम्भव हुआ कि रामने स्वयं अपने जीवनको ऐसा मर्यादापूर्ण और आदर्शमय बना लिया था कि लोग सहज ही उसकी ओर आकृष्ट हो गए। किसीपर किसी प्रकारका दबाब डालनेकी कोई आवश्यकता न पड़ी।

घटनाओंमें स्वाभाविकता

हम पीछे बता आए हैं कि कविकी कला और उसका कौशल इसीमें है कि वह अपने काव्यमें जिन अनेक घटनाओंकी सृष्टि करे वे कहींसे उखड़ी हुई या भरतीकी न लगें। काव्यमें एक प्रकारका प्रवाह होता है। यदि उसमें बीच-बीचमें ऐसी घटनाएँ आ जायँ कि कथाके प्रवाहमें उनके कारण व्याघात उपस्थित हो या उन घटनाओंके रहनेसे काव्य चमक न उठे तो उनका सन्निवेश व्यर्थ है।

मानसकी रचनाका उद्देश्य ही यह है कि मुमूर्षु हिन्दू जाति सम्बल पाकर उठ खड़ी हो और उसमें उल्लिखित आदर्शोंपर चलकर अपनेको पूर्ण कृतकार्य बनाए। मानसकारका विश्वास है कि पूर्ण परात्पर ब्रह्म ही भक्तोंका कष्ट निवारण करनेके लिये समय-समयपर, उनकी पुकारपर अवतरित होता है और दुष्टोंका उन्मूलन करके भक्तोंका हित साधन करता है।

मानसकी सारी कथा या उसमें आई हुई सारी घटनाएँ इसी कीलीपर घूमती हैं। सबसे पहली घटना लीजिए सतीका व्यामोह और उमामंगल।

रामकी कथासे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु इस कथा या घटनाका समावेश गोस्वामीजीने केवल यही दिखानेके लिये किया है कि मायाका चक्र ऐसा है कि उसमें सती-तककी बुद्धि भ्रान्त हो जाती है, फिर साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या। इस घटनाके समावेशसे पाठकके मनमें रामका महत्त्व आरम्भसे ही घर कर लेता है। उमाको समझाते हुए शंकर कहते हैं—

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख जग जोई।
भगत प्रेम बस प्रगट सो होई॥

यदि इस घटनाका उल्लेख न किया जाता तो रामके ठीक स्वरूपका बोध सुगमतासे हो न पाता। इसलिये रामकथाके प्रसंगमें रामका महत्त्व प्रतिपादित करनेके लिये ही यह घटना यहाँ रक्खी गई है और यह इस ढंगसे बैठाई गई है कि यह कथाका आवश्यक अंग बन जाय। ठीक इसी प्रकार नारदमोह, मनु-शतरूपा और प्रतापभानुकी कथाएँ मूल कथाका उत्कर्ष साधन ही करती हैं।

मानसमें और भी बहुत-सी जिन प्रासंगिक घटनाओंकी चर्चा आई है या जिनका उल्लेख कविने किया है वे सबकी सब अपने स्वाभाविक रूपमें आती गई हैं। यदि उन्हें वहाँसे हटा दिया जाय तो कथाका रस नष्ट हो जाय तथा ग्रन्थकारके उद्देश्यकी पूर्ति न हो पावे।

वर्णनोंमें स्वाभाविकता

जो अवस्था घटनाओंके समावेशकी है वही वर्णनोंकी है। गोस्वामीजीके वर्णन कहीं भी अनावश्यक रूपसे न तो इतने विस्तृत हो पाए न

इतने संक्षिप्त कि उनसे काव्यके चमत्कारमें कमी आवे। जहाँ जितने वर्णनकी आवश्यकता प्रतीत हुई उससे अधिक कविकी लेखनी नहीं चली है। हनुमान्-मिलनका ही प्रसंग लीजिए। वाल्मीकिने हनुमानसे जिस ललित, लच्छेदार देववाणीका प्रयोग कराया है उससे राम उनकी विद्या, भाषण-शुद्धता और स्वरमाधुर्यसे प्रभावित होकर लक्ष्मणसे उनकी प्रशंसा करने लगते हैं। गोस्वामीजीकी दृष्टिमें इसकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उनके राम-हनुमान्की बातें संक्षेपमें होती हैं और हनुमान तुरन्त—

'जगकारन तारन भव, भंजन धरनी भार'

—स्वरूप रामको पहचान लेते हैं और उनके चरणोंपर गिरकर कहते हैं—

मोर न्याउ मैं पूछा साईं।
तुम कस पूछहु नरकी नाईं॥

वस्तुतः बहुत लम्बे और ब्यौरेवार वर्णनकी यहाँ कोई आवश्यकता भी नहीं थी। जितना वर्णन गोस्वामीजीने किया है उतना ही आवश्यक है और इसीलिये वह स्वाभाविक लगता है।

दूसरा उदाहरण लीजिए। रावणको विभीषण अनेक प्रकारसे समझाता है कि सीताको लौटा दीजिए नहीं तो आपका अहित होगा। किन्तु गोस्वामीजीने जहाँ यह लिखा है कि विभीषणके बार-बार समझानेपर रावण क्रुद्ध होकर विभीषणको लात मारकर निकाल देता है वहाँ वाल्मीकिके अनुसार रावणके कतिपय दुर्वचन सुनकर ही विभीषण चल देते हैं। विभीषण-जैसे सत्पुरुषके लिये, जिसे शूर्पणखा भी 'धर्मात्मा' बता चुकी है, यह कदापि शोभा नहीं देता कि वे दुर्वचन मात्रपर

भाईका साथ छोड़ दें। इधर गोस्वामीजीने जिस ढंगसे वर्णन किया है उससे विभीषणकी सज्जनता और साधुता और निखर आती है तथा उनका रावणको छोड़कर चला आना अनुचित नहीं प्रतीत होता। वर्णनकी इस स्वाभाविकताने गोस्वामीजोके काव्यमें जो चमत्कार ला उपस्थित किया है वह वाल्मीकिके वर्णनमें भी नहीं मिलता।

मानसके संवाद

संवादोंका वास्तविक क्षेत्र तो नाटक है। नाटकमें ही संवादोंका महत्त्व भी है। संवादोंके ही कारण नाटक बनते या बिगड़ते हैं। काव्य, उपन्यास या कहानीमें संवाद या कथोपकथनका साधारण महत्त्व होता है, फिर भी उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि किसी कथा-काव्यमें बीच-बीचमें संवादोंकी योजना की जाय तो उसमें जीवन आ जाता है। केवल वर्णन करते जानेसे या कथा लिखते जानेसे रचनामें कोई चमत्कार नहीं आ पाता, वह मनको लुभा नहीं पाती। नाटकोंका स्थान सभी रचनाओंमें इसीलिये सर्वोत्तम माना गया है कि उनमें संवादोंके प्राधान्यके कारण विशेष रोचकताकी सृष्टि हो जाती है, पात्रोंका चरित्र निखर आता है।

रामचरित-मानस तो प्रकृतितः संवाद-काव्य है। यह पूरा काव्य ही उमा-महेश संवाद, कागभुशुंडि-गरुड संवाद, और भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद है। किन्तु 'संवाद' से हमारा तात्पर्य कथाके पात्रों-द्वारा कथाकी धारामें जोड़-तोड़के उत्तरसे है। इस प्रकारका अत्यन्त सुन्दर संवाद कालिदासके कुमार-संभवमें वहाँ है जहाँ उमा और बटु-रूप शिवने शंकरके रूप-गुण-स्वभावके सम्बन्धमें अत्यन्त युक्तियुक्त उत्तर-प्रत्युत्तर दिए हैं।

रामचरितमानसका प्रयोग आरम्भसे ही गोस्वामीजीके समयसे ही नाटकके रूपमें होता आया है। आज भी रामलीलाओंमें सर्वत्र मानसके ही

संवाद पात्रोंसे कहलाए जाते हैं। उनमें फेरफार करनेकी आवश्यकता कभी नहीं समझी गई और उन संवादोंके कारण लीलाओंकी रोचकतामें भी कभी कमी नहीं आई। यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि मानसकी संवाद-योजना नाटकीय दृष्टिसे की गई है। इसी कारण उनके संवादोंमें स्वाभाविकता, जोड़-तोड़के उत्तर-प्रत्युत्तर चमत्कार तथा ओजका भी समावेश हो पाया। तुलसीदासजीकी एक दूसरी विशेषता यह है कि संवादों या वर्णनोंमें उन्होंने जिन उक्तियोंका प्रयोग किया है वे केवल कवि-समाजमें प्रचलित उपमान मात्र नहीं हैं वरन् उनमें जीवनके व्यापक क्षेत्रमें आए हुए लोक-तत्त्व प्रचलित हैं। इससे उनकी उक्तियाँ अधिक सजीव हो उठी हैं और इनके कारण काव्य चमक उठा है। संवादोंमें जहाँ-जहाँ ऐसे अवसर आए हैं वहाँ-वहाँ संवाद प्राणवान् हो गए हैं।

संवादोंके माध्यमसे उन्होंने मानव-वृत्तिका कैसा अनुपम उद्घाटन किया है यह कैकेयी-मन्थरा संवादसे प्रकट हो जाता है। मन्थराकी यह व्यंग्य-वाणी देखिए—

रामहिं छाँड़ि कुसल केहि आजू।
जिन्हहिं जनेस देइ जुवराजू॥

मन्थराको कैकेयी डाँटती है फिर भी वह उसके चक्करमें आ ही जाती है। उसकी व्यग्रता देखिए—

भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिस्मय करसि, कारन मोहिं सुनाउ॥

मन्थरा-कैकेयी, कैकेयी-दशरथ, लक्ष्मण-परशुराम, हनुमान-रावण तथा अंगद-रावण संवादोंमें कविने जो शैली अपनाई है उससे संवादोंमें जीवन आ गया है। यह जीवन लानेके लिये ही उन्होंने प्रसन्न-राघव और

हनुमन्नाटक आदि नाटकोंसे ये संवाद लेकर उन्हें और भी अधिक सशक्त बनाकर उन्हें अपने काव्यमें समाविष्ट कर लिया है।

अनुपातका ध्यान

प्रबन्ध-काव्योंके कवियोंमें यह व्यापक दोष पाया जाता है कि वे जब किसी घटनाका वर्णन करने लगते हैं, किसी वर्ण्य विषयका ब्यौरा देने लगते हैं या संवादकी योजना करने लगते हैं तो उसीमें उलझकर प्रकृत विषयसे इतने दूर चले जाते हैं कि उसका सारा आनन्द ही जाता रहता है। ऐसे कवि विरल ही हैं जो अपने काव्योंमें अनुपातका ध्यान रखते हैं। जिस प्रबन्ध-काव्यमें अनुपातका ध्यान नहीं रक्खा जाता उसकी मूल कथा ही नष्ट हो जाती है और कथाका प्रवाह ऐसा कुंठित हो जाता है कि वह आनन्द देनेके बदले नीरस प्रतीत होने लगता है। जायसीकी गणना हिन्दीके महाकवियोंमें है। पर उन्होंने अपने पदमावतमें अनुपातका कितना ध्यान रक्खा है यह उनके लम्बे वर्णनोंसे प्रकट हो जायगा। भोजनका प्रसंग आया तो हलवाईकी दूकानकी सारी वस्तुओंके नाम गिना दिए। इस बातका भी उन्होंने ध्यान न रक्खा कि विरुद्ध पदार्थ भी एक साथ खाए जा सकते हैं या नहीं। लड़ाईका अवसर आया तो घोड़ों, तलवारों और भालोंके नाम ही गिनाने लगे। जब सूरदासजी-जैसे महाकवियोंमें यह प्रवृत्ति पाई जाती है तब सूदन आदिकी तो बात ही क्या ? इन लोगोंने यह कभी सोचा–तक नहीं कि इससे कथाके स्वाभाविक प्रवाहमें क्या बाधा पड़ती है। घटनाएँ उपस्थित करने लगे तो एकके पश्चात् एककी लड़ी जोड़ दी चाहे मूल कथासे उसका सम्बन्ध हो या न हो। संवाद कराने लगे तो उसीको सब कुछ समझ लिया और उसे हनुमानजीकी पूँछ बनाकर बढ़ा दिया। इस प्रकार कथा अस्तव्यस्त हो जाती है और उसकी मार्मिकता एवं भाव-

व्यंजकता समाप्त हो जाती है। मानसमें इस प्रकारकी एक भी घटना, वर्ण्य विषयका एक भी विस्तार अथवा संवादोंका कहीं भी अनावश्यक प्रस्तार न मिलेगा जिससे उनके गौरव और गाम्भीर्यपर आँच आ सके।

मार्मिक स्थलोंका चित्रण

सफल कवि वही है जो हृत्तलको स्पर्श करनेवाले मार्मिक प्रसंगोंका सहृदयता-पूर्वक वर्णन कर सके। मर्मको स्पर्श करनेवाले वर्ण यदि कविने चलते कर दिए या उनका वर्णन सहृदयता-पूर्वक न किया तो उसका काव्य रसपूर्ण नहीं कहा जा सकता। उससे न तो पाठकको कोई आनन्द प्राप्त हो सकता न उसका हृदयपर प्रभाव पड़ सकता है। भावकत्व और रस-मर्मज्ञत्व कवि बननेके लिये अनिवार्य गुण है। हिन्दीके अनेक प्रमुख कवियोंमें इस गुणका अभाव पाया जाता है। महाकवि केशवदासको ही लीजिए। जिस महिलाका इकलौता पुत्र वन चला जा रहा हो उसकी मनःस्थितिकी कल्पना तो कीजिए। उस समय सत्पुत्रके लिये यही शोभा देता है कि वह माताको ढाढ़स बँधावे और कहे कि आप चिन्ता न कीजिए, मैं शीघ्र ही आकर आपकी सेवा करूँगा। केशवदासने ऐसे स्थलपर जहाँ रामसे कौशल्याको पातिव्रत्यका उपदेश दिलाकर अपनी फूहड़ और भद्दी रुचिका परिचय दिया है वहाँ गोस्वामीजीने इस स्थलका वर्णन कैसा सुन्दर किया है—

१. कहि प्रिय बचन बिबेकमय, कीन्हि मातु परितोष ॥

२. लगे मातुपद आसिष पाई।
   बेगि प्रजा दुख मेटब आई ॥

३. लखि सनेह-कातर महतारी।
   बचन न आव बिकल भइ भारी ॥

राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना।
सभउ सनेह न जाइ बखाना॥

इसी प्रसंगमें राम और सीताका संवाद देखिए जिसे कविने इतना मार्मिक बना दिया है कि कठोरसे कठोर-हृदय व्यक्ति भी छाती फाड़कर रो उठे—

रामके वनवासका समाचार सुनकर सीताजी भी वहीं कौशल्याके पास पहुँच गई जहाँ राम बैठे थे और यह सोचने लगीं कि मेरे जीवननाथ तो वन जा रहे हैं, अब किस पुण्यके बलपर मेरा-उनका साथ हो। इसी बीच उनकी आँखोंमें आँसुओंके मोती ढुलकते देखकर कौशल्याने सीताजीके उच्च कुल और उनकी सुकुमारताका वर्णन करते हुए कह डाला—

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती॥
सुरसर सुभग बनज-बन-चारी। डाबर जोगु कि हंस-कुमारी॥

माताकी आज्ञासे रामने भी सीताको समझाना प्रारंभ किया। उन्होंने पहले सीताको सासकी सेवा करने, सास-ससुरका पद पूजने और पुरानी कथा कह-कहकर उनका जी बहलानेका आदेश दिया तथा हठ करनेका कुपरिणाम बताया कि किस प्रकार गालव और नहुपको हठके कारण संकट उठाने पड़े। फिर ढाढ़स बँधाते हुए उन्होंने समझाया—

दिवस जात नहिं लागहि बारा।

इसके पश्चात् उन्होंने वनकी भयंकरता, गर्मी, सर्दी और वर्षा, कुश कंटक और कंकड़से भरे हुए मार्ग पर पैदल चलनेका कष्ट, ऊबड़-

खावड़ मार्ग, बड़े-बड़े पर्वत, भयावनी कन्दराएँ, अगम नदी, नद और नाले, भालू, बाघ, भेड़िए और हाथी-जैसे जंगली जीवोंके घोर शब्द, भूमिपर सोना, वल्कल पहनना, कभी-कभी मिल जानेपर कन्द-फल-मूल खाना, मनुष्योंको खा जानेवाले राक्षसोंका कपट वेष धारण करके घूमना, पहाड़का लगनेवाला पानी, भयंकर सर्प, घोर जंगल, मनुष्यको चुरा ले जानेवाले राक्षस आदि सबका भय बताकर यही कहा—

हंस गवनि तुम नहिं बन जोगू । सुनि अपजस मोहि देइहिं लोगू ॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥
नव रसाल बन बिहरन सीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥

यह सब सुनकर सीताजीको—

सीतल सिख दाहक भइ कैसे । चकइहि सरद चन्द निसि जैसे ॥

और उसके पश्चात् उन्होंने स्पष्ट कह दिया—

प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम बिन रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ॥

अपना पक्ष समझाते हुए सीताजीने कहा कि माता, पिता, बहन, भाई, प्रिय, परिवार, मित्र, सास, ससुर, गुरु, पुत्र आदि जहाँतक सम्बन्ध है, वे सब पतिके बिना सूर्यसे भी अधिक ताप देनेवाले लगते हैं। शरीर, धन, भवन, पृथ्वी, पुर और राज्य सब बिना पतिके शोक-समाज है। इसके पश्चात् उन्होंने यहाँतक कह दिया—

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी ।
तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥

रामकी बताई हुई सब विभीषिकाओंका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥
को प्रभु सँग मोहिं चितवनहारा । सिंह-बधुहि जिमि ससक सिआरा ॥
मैं सुकुमार नाथ बन जोगू । तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥
ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौ न हृदउ बिलगान ।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख, सहिहइ पाँवर प्रान ॥

इस वचनसे हारकर रामको कहना पड़ा—

परिहरि सोच चलउ बन साथा ।

और वह चित्रमें बने हुए बन्दरसे डरनेवाली सीता, भूमिपर पैर न रखनेवाली सीता, आँखोंकी पुतलीके समान पाली हुई सीता, निर्भय होकर वनकी ओर चल दी। उन्हें देखकर ग्राम-वधुओंने ठीक ही कहा था—

आँखिनमें सखि राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनवास दियो है ।

युवक राम अपनी सुन्दरी पत्नीको साथ-साथ लिए वन चले जा रहे हैं। अपने अंगोंमें चक्रवर्त्ती राजाके सभी लक्षण धारण किए हुए भी वे वन जा रहे हैं। ऐसी अवस्थामें बटोहियोंका, मार्गमें पड़नेवाले गाँवोंके निवासियोंका और स्त्रियोंका उनके प्रति भाव क्या है इसका जैसा सरस चित्रण गोस्वामीजीने किया है वैसा रामकी कथा कहनेवाला कोई भी कवि नहीं कर सका है। एक उदाहरण लीजिए—

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे ।
जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥
राम लखन सिय रूप निहारी ।
होहिं सनेह-बिकल नरनारी ॥

मेघनादकी शक्तिके आघातसे लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े हैं। हनुमान उन्हें उठाकर रामके पास लाते हैं। फिर सुषेणके ओषधि बतलानेपर वे लाने चल देते हैं। आधीरात तक भी वे लौटते नहीं। रामकी चिन्ता बढ़ जाती है। वे सोचते हैं कि कहीं सबेरा हो गया तो लक्ष्मण न मिल सकेंगे। वे घबराकर विलाप करने लगते हैं। यह विलाप कितना स्वाभाविक, कितना हृदय-मन्थनकारी है यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

इसके अतिरिक्त मानसके मुख्य मार्मिक अंश ये हैं—फुलवारीमें राम-सीताका परस्पर प्रथम दर्शन, धनुर्भंगके पूर्व और पश्चात् सीताकी मनःस्थिति, रामका-वनगमन, चित्रकूटपर राम-भरत-मिलन, लक्ष्मणको शक्ति लगना, रामके लौटनेपर भरत और हनुमानका मिलन। इन प्रसंगोंका गोस्वामीजीने जैसा सरस निर्वाह किया है उनसे मन बरबस उधर खिंच जाता है। रामके लौटनेके ठीक पूर्व भरतकी मनःस्थितिका अवलोकन कीजिए—

जो करनी समुझै प्रभु मोरी।
नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
गुन अवगुन प्रभु मान न काऊ।
दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ॥

इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे स्थलोंके वर्णनमें गोस्वामीजीने अद्वितीय कौशल दिखलाया है। उनके पूर्व या पश्चात्‌का कोई कवि उनकी जोड़का ऐसा वर्णन कर नहीं सका है।

गोस्वामीजीकी छन्दोयोजना

गोस्वामीजीने अपने ग्रन्थोंमें छन्दःशास्त्रका भी प्रयोग बड़ी सटीकताके साथ किया है। उनके ग्रन्थोंमें प्रायः सभी प्रचलित छन्दोंका प्रयोग

प्रसंग या अवसरके अनुकूल ही हुआ है। रामचरितमानसमें प्रयुक्त छन्दोंपर विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि मानसमें आठ मात्रिक और ग्यारह वर्णिक छन्दोंका प्रयोग हुआ है। भाषा-रचनामें मात्रिक छन्द और मंगलाचरणके सब श्लोकोंमें वर्णवृत्तोंका प्रयोग हुआ है—

मात्रिक छन्द

चौपाई—

सुकृति संभु तन बिमल बिभूती।
मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी।
किए तिलक गुनगन बस करनी॥

दोहा—

जथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान॥

सोरठा—

जेहि सुमिरत सिधि होय, गननायक करिवर-बदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-रासि सुभ गुन सदन॥

डिल्ला—

मामभिरक्षय रघुकुलनायक।
धृत वर चाप रुचिर कर सायक॥
मोह महाघन पटल प्रभंजन।
संसय बिपिन अनल सुररंजन॥

हरिगीतिका—

सियराम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरतको।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥

दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसीसे सठहि हठि राम सनमुख करत को॥

चौपैया—

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसु-लीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहि भवकूपा॥

तोमर—

जब कीन्ह तेहि पाखंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥
बैताल भूत पिसाच। कर धरे धनुष नराच॥

त्रिभंगी—

ब्रह्माण्ड निकाया, निर्मित माया, रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो बासी, यह उपहासी, सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ज्ञाना, प्रभु मुसुकाना, चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥

वर्णवृत्त

अनुष्टुप्—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी-विनायकौ॥

इन्द्रवज्रा—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं
सीतासमारोपित-वामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

भुजङ्गप्रयात—

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेद-स्वरूपम् ।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥

वसन्ततिलका—

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादि-दोषरहितं कुरु मानसं च ॥

स्रग्धरा—

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ॥

शार्दूलविक्रीडित—

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥

वंशस्थ—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुममङ्गलप्रदा ॥

रथोद्धता—

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम् ।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शंकरमनंगमोचनम् ॥

मालिनी—

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥

नगस्वरूपिणी—

नमामि भक्तवत्सलं। कृपालु शील कोमलं॥
भजामि ते पदाम्बुजं। अकामिनां स्वधामदं॥

तोटक—

जयराम रमारमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहिजनं॥
अवधेस सुरेस रमेस विभो। सरनागत माँगत पाहि प्रभो॥

वर्णवृत्तोंका प्रयोग स्तोत्रोंमें ही हुआ है अतः उनपर विचार करनेका प्रश्न नहीं उपस्थित होता। मानस मूलतः मात्रिक छन्दोंमें लिखा गया है। इसलिये गोस्वामीजीकी छन्दोयोजनापर विचार करते समय मात्रिक छन्दोंके प्रयोगका ही विचार आता है।

रामचरितमानस कथा-काव्य है और उसकी भाषा अवधी है। उस समय अवधीमें कथाकाव्यकी रचना करनेवाले कवियोंने दोहे-चौपाईकी पद्धति चला दी थी जो कथाकी प्रवाहपूर्ण गतिके लिये व्यापक रूपसे लोकप्रिय हो चुकी थी। सवैयों और कवित्तोंकी प्रकृति मुक्तकके लिये तो ठीक है किन्तु कथाके लिये अपेक्षित प्रवाह उसमें नहीं मिल पाता। यही कारण है कि गोस्वामीजीने भी मानसके लिये दोहे-चौपाईका ही आश्रय लिया। किन्तु मानसकी एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें

दोहे और चौपाईका प्रयोग भी एक निश्चित योजनाके अनुसार किया गया है। प्रायः सर्वत्र आठ अर्धालियोंपर एक दोहा रक्खा गया है। प्रत्येक काण्डके अन्तमें एक हरिगीतिका छन्द देकर तब दोहा या सोरठा लिखकर काण्ड समाप्त किया गया है। अयोध्याकाण्डमें तो इस नियमका पालन और भी कड़ाईसे हुआ है। वहाँ प्रत्येक पच्चीस दोहेके पश्चात् एक हरिगीतिका छन्द दिया गया है। दोहोंके पश्चात् सोरठोंकी ही संख्या अधिक है। डिल्ला छन्दका प्रयोग लंकाकाण्डमें एक स्थानपर स्तोत्रके लिये हुआ है। त्रिभंगी और चौपैयेका प्रयोग भी स्तोत्रके लिये बालकाण्डमें ही आया है। तोमरका प्रयोग खर-दूषण एवं रामके युद्धमें तथा राम-रावणके युद्धमें तो हुआ ही है, लंकाकाण्डमें इन्द्रकृत रामकी स्तुतिमें भी हुआ है।

छन्दोंका विश्लेषण करनेसे प्रतीत होता है कि जहाँ वर्णनोंको पुष्ट करना आवश्यक हुआ है वहीं हरिगीतिका छन्दका प्रयोग किया गया है। दोहों और सोरठोंके प्रयोगमें यही अन्तर है कि जहाँ कोई विशेष चमत्कारकी बात कहनी हुई वहीं सोरठेका प्रयोग किया गया—

संकर चाप जहाज, सागर रघुवर बाहुवल।
बूड़ेसि सकल समाज, चढ़े जे प्रथमहिं मोहबस॥

युद्धमें प्रचंड गति होती है इसीलिये युद्धोंमें तोमर जैसे वेगशील छन्दका प्रयोग हुआ है। वर्णन सबके सब चौपाइयों और दोहोंमें हैं। प्रयुक्त छन्दोंके संख्या-क्रमसे देखा जाय तो पहला स्थान चौपाईका, दूसरा दोहेका, तीसरा सोरठेका और चौथा हरिगीतिकाका है।

रस–विधान

गोस्वामीजीका रामचरित-मानस महाकाव्य है। शास्त्रकारोंने महाकाव्यके जो भी लक्षण बताएँ हैं वे मानसपर पूर्ण रूपसे घटते हैं—

साहित्यशास्त्रके मनीषियोंने बताया है कि महाकाव्यमें शान्त, वीर और शृङ्गारमेंसे कोई रस प्रधान होना चाहिए तथा अन्य रस उसमें गौण रूपसे आने चाहिएँ। मानस भक्ति-प्रधान ग्रन्थ है इसलिये इसका प्रधान रस शान्त ही है। अतः रामभक्ति-रूपी सुरसरिकी धारा तो ग्रन्थ भरमें प्रवाहित है किन्तु अन्य आठ रस भी यथास्थान आ गए हैं।

शृङ्गारको रसराज माना गया है किन्तु रसराजका निर्वाह करनेमें बहुतसे कवि चूक जाते हैं। गोस्वामीजीने भी शृङ्गारका बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन किया है परन्तु इस बातकी ओर उनका ध्यान बराबर रहा है कि शील और मर्यादाका अतिक्रमण करनेवाले शृङ्गारिक वर्णन ग्रन्थमें कहीं भी न आने पावें। इतना होनेपर भी उनके वर्णनोंमें शृङ्गारकी ऐसी उदात्त भूमिकाएँ प्राप्त होती हैं कि पाठक उनमें रसमग्न हो जाता है। राम और सीताके मिलनका वर्णन शुद्ध शृंगारमय है किन्तु उसमें कहीं एक भी शब्द ऐसा नहीं आने दिया गया है कि कोई उँगली उठा सके। देखिए—

लता ओट तब सखिन लखाए।
स्यामल गौर किसोर सुहाए॥
देखि रूप लोचन ललचाने।
हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुबर छबि देखे।
पलकन्हिहूँ परिहरी निमेखे॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥
लोचन मग रामहिं उर आनी।
दीन्हें पलक कपाट सयानी॥

सीता प्रेम-विह्वल हो जाती हैं। किन्तु वर्णन इतना मर्यादापूर्ण है कि यहाँ न फूहड़ उछलकूद है, न कोई विकृत हाव-भाव हैं, न आँखोंके संकेत हैं। इसी प्रकार अरण्यकाण्डमें रामका विरहजन्य विलाप श्लील विप्रलंभका उत्कृष्ट उदाहरण है।

वीर रसका वर्णन तो अनेक स्थलोंपर हुआ है। जनकपुरीमें जब लक्ष्मणको अनुभव होता है कि विदेहकी अनुचित वाणीसे रघुवंश-विभूषणके वीरत्वका अपमान किया गया है तो वे क्रोधसे तिलमिला उठते हैं और झट बोल उठते हैं—

सुनहु भानुकुल पंकज भानू।
कहौं सुभाव न कछु अभिमानू॥
जौ राउर अनुसासन पाऊँ।
कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी।
सकौं मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना।
का बापुरो पिनाक पुराना॥

करुण रसका उद्रेक करनेवाले प्रसंग मानसमें बहुत आए हैं। अतिशय दुःखकी अवस्थासे मनमें करुणरसका संचार होता है। जिस समय राम अयोध्यासे वनकी ओर जा रहे हैं उस समयका दृश्य देखिए—

शोक विकल सब रोवहिं रानी।
रूप सील बल तेज बखानी॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा।
परहिं भूमितल बारहिं बारा॥

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी ।
घर-घर रुदन करहिं पुरबासी ॥

हास्य रसका उत्तम परिपाक शिवजीकी बारात और नारदमोहके प्रसंगमें हुआ है । नारदकी अवस्थाकी ओर तनिक दृष्टि-निक्षेप कीजिए—

काहु न लखा सो चरित विसेषा ।
सो सरूप नृप-कन्या देखा ॥
मर्कट बदन भयंकर देही ।
देखत हृदय क्रोध भा तेही ॥
जेहि दिसि बैठे नारद फूली ।
सेहि दिसि सो न बिलोकेउ भूली ॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं ।
देखि दसा हरगन मुसुकाहीं ॥

रौद्र रसका प्रयोग क्रोधावेगकी दशा प्रकट करनेके लिये होता है । भरतके ससैन्य चित्रकूट आनेका समाचार जानकर लक्ष्मणकी मनोदशा कैसी हो जाती है इसका उदाहरण लीजिए—

छत्रि जाति रघुकुल जनम, राम अनुज जग जानि ।
लातहु मारे चढ़त सिर, नीच को धूरि समान ॥
आजु राम सेवक जस लेऊँ ।
भरतहिं समर सिखावन देऊँ ॥

भयानक रसका वर्णन यों तो दो-चार ही स्थलोंपर ही आया है किन्तु रसका पूर्ण परिपाक इन स्थलोंपर दिखाई पड़ता है—

भरे भुवन घोर कठोर रव रवि-बाजि तजि मारग चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ॥

सुर असुर मुनि नर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

अद्‌भुत रसके भी कुछ अच्छे उदाहरण मानसमें पर्याप्त रूपसे मिल जाते हैं। व्यामोह-ग्रस्त सतीको रामने अपना जो रूप दिखाया है वह अद्भुत रसका अच्छा उदाहरण है—

सती दीख कौतुक मग जाता।
आगे राम सहित श्री भ्राता॥
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा।
सहित बन्धु सिय सुंदर वेषा॥
जहं चितवहिं तह प्रभु आसीना।
सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥

बीभत्स रसका वर्णन प्राचीन काव्योंमें केवल युद्ध अथवा श्मशानोंके प्रसंगमें आया है। आजकल तो ऐसे अनेक स्थान देखनेमें आते हैं जो बीभत्स रसका उद्रेक करनेके साधन बन सकते हैं, जैसे—अस्पताल, पशुवधालय, नगरोंकी सड़कोंपर एकत्र कूड़ेके ढेर। आजकलके आधुनिक सुरुचि(?)सम्पन्न लेखकों और कवियोंने इनका वर्णन भी किया है। रामचरितमानसमें इस रसका वर्णन दो ही स्थलोंपर हुआ है—राम-खरदूषण युद्धमें और राम-रावण युद्धमें। देखिए—

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला।
केलि करहिं योगिनी कराला॥
काक कन्ध धरि भुजा उड़ाहीं।
एकते एक छीनि धरि खाहीं॥

खैंचहिं आँत गृध्र तट भए।
जनु बंसी खेलत चित दए॥

ऊपर दिए हुए आठ रसोंके वर्णन पढ़कर स्पष्ट हो जायगा कि गोस्वामीजीने अवसरके अनुकूल रसकी सृष्टि करनेमें असामान्य सफलता प्राप्त की है। शान्त रसके उदाहरण तो प्रत्येक पृष्ठपर उपस्थित हैं इसलिये उन्हें देना आवश्यक नहीं प्रतीत हुआ।

रसोंके उपकरण एकत्र करके रसकी योजना तो अधिकांश कवि कर देते हैं किन्तु सुकविका कौशल इसीमें है कि वह रसके औचित्यका भी पूर्ण रूपसे निर्वाह कर सके अर्थात् वह न तो विरोधी रसोंको एकमें मिलावे और न ऐसी रचना करे कि उसमें रसदोष आ जायँ।

गोस्वामीजीके काव्योंमें कहीं भी विरोधी रससांकर्यकी अवस्था नहीं आने पाई है और जिन एक-दो स्थलोंपर आई भी है वह भिन्न व्यक्तियोंके लिये वर्णित होनेके कारण रसदोषसे मुक्त हो गई है। इसका उदाहरण लीजिए—

प्रभु कीन्ह धनुष-टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर व्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

यहाँ प्रयुक्त वीर और भयानक दोनों रस विरोधी हैं। किन्तु दोनोंका प्रयोग दो भिन्न विरोधी लोगोंके लिये होनेसे रसदोष नहीं आने पाया।

भाव, भावसन्धि, भावोदय, भावशान्ति, भावशबलता, रसाभास आदिके भी उदाहरण मानसमें अनेक स्थलोंपर आए हैं। इनमेंसे कुछ तो दोष हैं किन्तु इतने बड़े ग्रन्थमें रसविषयक कतिपय दोषोंका न होना ही

आश्चर्यकी बात होती। अतएव रस-विषयक इन नगण्य दोषोंके कारण मानसको सदोष काव्य नहीं कहा जा सकता।

अलंकार-विधान

अप्रस्तुत-विधानके प्रकरणमें हम गोस्वामीजीके काव्य (मानस) में प्रयुक्त उपमा, उत्प्रेक्षा, उल्लेख और रूपक आदि अलंकारोंकी चर्चा कर चुके हैं। यद्यपि काव्यका पूर्ण सौष्ठव रससिद्धिमें ही है किन्तु अलंकारोंके कारण उसमें चमत्कार तो आ ही जाता है। इसलिये घोर रसवादियोंने भी अपनी रचनाओंमें अलंकारोंका आश्रय लिया है। किन्तु अलंकार कविताके लिये होना चाहिए, कविता अलंकारके लिये नहीं अर्थात् अलंकारका प्रयोग रसोत्कर्षके लिये ही होना चाहिए केवल अलंकारकी गिनती करानेके लिये नहीं।

गोस्वामीजीने उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षापर तो असाधारण अधिकार सिद्ध किया ही है किन्तु अन्य अलंकारोंके प्रयोगमें भी वे बहुत ही सावधान रहे हैं। अनुप्रास-प्रियता भी गोस्वामीजीमें पर्याप्त है। हाँ, एक बात अवश्य है कि अन्य हिन्दी कवियोंकी भाँति उन्होंने आनुप्रासिक चमत्कारके लिये व्यर्थके शब्दोंकी सेना नहीं खड़ी की है। वे जानते थे कि अनुप्रास कहाँ किस ढंगसे लाना चाहिए। देखिए—

(१) खल परिहास होइ हित मोरा।
काक कहहिं कल कंठ कठोरा॥

(२) धर्मधुरीन धीर नयनागर।
सील सनेह सत्य सुख सागर॥

(३) काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरत-मातु मुसुकानि॥

इन उदाहरणोंमें एक भी शब्द ऐसा नहीं मिलेगा जो केवल अनुप्रासका चमत्कार दिखानेके लिये लाकर ठूसा गया हो।

यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि शब्दालंकारोंका प्रयोग भी इसी ढंगसे किया गया है कि ये अलंकार वर्णनके प्रसंगमें स्वाभाविक रूपसे आते और खपते गए हैं—

हरन मोह तम दिनकर कर-से।
सेवक सालि पाल जलधर-से॥ यमक।

रावन-सिर-सरोज-बनचारी ।
चलि रघुबीर सिलीमुख धारी॥ श्लेष।

बायस पालिय अति अनुरागा।
होइ निरामिष कबहुँ कि कागा॥ काकु वक्रोक्ति।

अर्थालंकारोंमें गोस्वामीजीको उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा ही अधिक प्रिय हैं जिनकी विस्तृत मीमांसा पीछे की जा चुकी है। उत्प्रेक्षाओंका तो ग्रन्थ भरमें जाल बिछा पड़ा है। किष्किन्धाकाण्डमें आए हुए वर्षा और शरद्के वर्णन केवल प्रकृति-नटीकी लीलाओंके चित्रण मात्र नहीं हैं वरन् कविने उन्हें माध्यम बनाकर उनके द्वारा उपदेश दिए हैं। इसीलिये उत्प्रेक्षाओंकी सहायता वहाँ नितान्त आवश्यक प्रतीत हुई है।

इनके अतिरिक्त मानसमें अपह्नुति, प्रतीप, भ्रान्ति, सन्देह, अतिशयोक्ति आदि अलंकारोंका भी यथास्थान प्रयोग हुआ है जिनसे रसके उत्कर्षमें बड़ी सहायता मिली और काव्यके सौष्ठवमें वृद्धि हुई है।

मानसका रचना-कौशल

रामचरितमानसकी रचना करते समय गोस्वामीजी यह अवश्य चाहते थे कि जैसे पंडितोंके लिये सभी लौकिक-पारलौकिक ज्ञान-

विज्ञानकी उपलब्धि करानेवाले वेद-शास्त्र-पुराण हैं वैसे ही साधारण जनके लिये भी 'जन-भाषा' में एक ऐसा ग्रन्थ प्रस्तुत कर दिया जाय जो उन्हें सारे ज्ञानका बोध करा सके। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उन्होंने रामके लोकपावन चरितका आश्रय लेकर उन्हींकी कथाके माध्यमसे साहित्य, संगीत, कला, ज्ञान, विज्ञान, धर्म, कर्म, राजनीति, समाजनीति, इतिहास सबका वर्णन इस एक ही ग्रन्थमें इस कौशलके साथ किया कि यदि ठीक ढंगसे मानसकी शिक्षा दी जाय तो फिर भारतीय संस्कृतिके सम्बन्धमें कुछ जानना शेष न रह जाय।

संस्कृतमें जितने महाकाव्य रचे गए हैं उन सबकी प्रायः यही पद्धति रही है कि कविने आख्यानकार या द्रष्टा होकर घटनाओं या कथाका वर्णन किया है। भागवतमें प्रश्नोत्तर-प्रणालीसे विष्णुके विभिन्न अवतारोंका अत्यन्त काव्यात्मक वर्णन कराया गया है। इसीलिये बहुतसे लोग उसे पुराण न मानकर महाकाव्य ही मानते हैं और कहते हैं—

विद्यावतां भागवते परीक्षा।

[विद्वानोंकी परीक्षा भागवतमें ही होती है]।

प्रायः सभी महाकाव्योंमें ईश-वन्दना, इष्टदेवकी स्तुति, मंगलाचरण अथवा वस्तु-निर्देश करके सीधे मुख्य नायककी कथा प्रारंभ कर दी गई है। यद्यपि महाकवि कालिदासने रघुवंशमें इच्छा तो की है रघुवंशका वर्णन करनेकी किन्तु उन्होंने भी कथा दिलीपसे ही प्रारंभ की है और यह कहकर प्रारंभ की है कि रघुवंशियोंके गुणोंने कानमें पड़कर मुझे काव्य-रचना करनेकी ढिठाई करनेको उकसाया—

तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः।

अपने कुमारसंभवमें उन्होंने पहले हिमालयका वर्णन किया है और उस प्राकृतिक दिव्य पृष्ठभूमिमें उमाका अवतार कराकर उन्होंने

कथा चला दी है। सभी महाकाव्योंकी प्रायः यही पद्धति रही है कि उसमें मुख्य नायक या नायिकाके जन्मसे कथा प्रारंभ कर दी जाती है। वाल्मीकिने भी रामायणका प्रारंभ इसी प्रकार किया है। किन्तु गोस्वामीजीका रामचरितमानस बड़े विलक्षण कौशलसे प्रारंभ हुआ है।

मानसशास्त्रके पण्डितोंका कहना है कि यदि कुतूहलके साथ रुचि उत्पन्न करके कोई कथा कही जाय तो वह अधिक आकर्षक होती है। सहसा सीधे कथा कह देनेसे उसे पढ़नेका कुतूहल नष्ट हो जाता है। गोस्वामीजीने उस कुतूहलका निर्वाह करनेके लिये प्रारंभमें गुरुका माहात्म्य बताकर सन्तों और दुष्टोंका चरित्र समझाया है और स्वभावतः कविके रूपमें अपना दैन्य प्रकट करके इस विश्वासके साथ डंकेकी चोटसे अपना काव्य प्रारंभ किया है कि—

एहि महं रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति-सारा॥

और 'मति अनुरूप रामगुन' गानेकी ही बात कही है। उसके पश्चात् रामचरितमानसके पात्रोंके चरित्रका विश्लेषण करके उन्होंने सबकी वन्दना की है। फिर रामनाम और ब्रह्म राम तथा 'भक्तोंके हित' सगुण रूप धारण करनेवाले ब्रह्मका परिचय देकर उन्होंने रामनामका माहात्म्य बताया है और उसके पश्चात् रामायणके जन्मकी कथा बताई कि किस प्रकार शंभुने यह कथा उमा और कागभुशुंडिको सुनाई, कागभुशुंडिने गरुडको सुनाई, याज्ञवल्क्यने भरद्वाजको सुनाई और वही कथा अपने गुरुसे सुनकर मैंने (तुलसीदासजीने) वर्णन की। उसके पश्चात् उन्होंने मानसका वह विशिष्ट रूपक खड़ा किया है जो संसारके साहित्यमें अद्वितीय और भव्य है। इसके पश्चात् उन्होंने शिव-पार्वतीकी कथा कहकर यह समझाया है कि शिवने क्यों उमाको रामकी कथा सुनाई और उसके पश्चात् फिर उन्होंने नारदजीके मोहकी, स्वायंभुव मनु और शतरूपाकी

तथा प्रतापभानुकी कथा कहकर बताया है कि किस प्रकार, क्यों रावण और कुम्भकर्णका जन्म हुआ और क्यों भक्तके कारण तथा संसारका क्लेश हरण करने और भूमिका भार दूर करनेके लिये भगवान् अवतरित हुए।

इतना रूपक बाँधनेकी आवश्यकता इसलिये पड़ी कि अन्य काव्योंमें जो नायक होते हैं वे साधारण रूपसे मनुष्य योनिमें उत्पन्न होते हैं और अपने किन्हीं विशेष गुणोंके कारण प्रसिद्धि पा जाते हैं और काव्यके नायक बन जाते हैं। किन्तु रामका अवतार तो विशेष कारणोंसे हुआ। स्वयं ब्रह्मने सोच-समझकर त्रिगुणात्मिका सृष्टिकी विषमता दूर करनेके लिये सगुण रूप धारण किया इसलिये यह आवश्यक ही था कि उन कारणोंका स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाय जिनके कारण भगवान्‌को अवतार लेना पड़ा, दशरथके घर राम बनकर आना पड़ा। यही कारण है कि गोस्वामीजीने बार-बार रामको ब्रह्म कहा है।

गोस्वामीजीने अन्य रामायणोंमें आई हुई सीताके वनवासकी कथा छोड़ दी है। उसका स्पष्ट कारण यही है कि वे उस रामचरितमानसकी रचना कर रहे थे जिसके पढ़नेसे 'काक होहि पिक बकउ मराला'। उसके लिये यह आवश्यकता ही नहीं थी कि अन्तमें अत्यन्त करुण रसका परिपाक करके कथाका अन्त किया जाता। वाल्मीकिका रामायण करुण काव्य है। उनके समय-तक काव्य-शास्त्रियोंने 'मधुरेण समापयेत्' वाला निर्देश कवियोंके लिये किया नहीं था क्योंकि वे तो स्वयं आदि कवि थे। किन्तु गोस्वामीजीके समयतक तो यह सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया था कि काव्यका अन्त सुखमय होना चाहिए। इसीलिये गोस्वामीजीने रामराज्यका वर्णन करके ग्रन्थ पूर्ण कर दिया है।

गोस्वामी तुलसीदासजीके रचना-कौशलकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि मानससे सब प्रकारके पाठकोंको समान रूपसे आह्लाद और ज्ञान

मिलता है। सारस्वत काव्यकी यही परिभाषा भी है। गोस्वामीजीने स्वयं कहा है कि यह तो 'नाना-पुराण-निगमागम-संमत' तथा 'क्वचिदन्यतोऽपि' और स्थानोंसे भी एकत्र सामग्रीसे बनाया हुआ निबन्ध है।

मानसका प्रभाव और उसके कारण

मानसके प्रचार एवं प्रभावकी व्यापकता बहुत कुछ तो उसके धर्मग्रन्थ होनेके कारण है। उत्तर भारतमें शिक्षित हिन्दुओंके कम घर ऐसे होंगे जहाँ रामचरितमानसकी प्रतियाँ न हों और उनका पाठ न होता हो। जो लोग स्वयं पाठ नहीं कर सकते वे दूसरोंसे सुनकर उसका रस प्राप्त करते हैं क्योंकि गोस्वामीजीने उसमें बराबर रामनामकी महिमा और रामकथाके माहात्म्यका उल्लेख किया है—

रामकथा गिरिजा मैं बरनी।
कलिमल-समनि मनोमल-हरनी॥
संसृति रोग सजीवन मूरी।
रामकथा गावहिं श्रुति सूरी॥
मनकामना सिद्धि नर पावा।
जे यह कथा कपट तजि गावा॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं।
ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥

सुखमय भविष्यकी कामना सभी करते हैं। गोस्वामीजीने सभी प्रकारके सुखोंकी उपलब्धिका सरल उपाय बता दिया। फिर कौन उसे प्रयोगमें नहीं लायगा? मानसके प्रचारका एक कारण तो यह है। दूसरा कारण है रामलीलाएँ। गोस्वामीजीने स्वयं रामलीलाका प्रवर्त्तन करके रामचरितमानसको लोक-प्रिय और व्यापक बना दिया क्योंकि उनकी देखा-देखी सारे उत्तर भारतमें स्थान-स्थानपर रामलीला प्रारम्भ हो

गई। इन रामलीलाओंमें रामचरितमानसका पाठ होता है और पाठके अनुसार रामलीला तथा उसके संवाद होते हैं। नाटकका प्रभाव जनतापर यों भी अधिक पड़ता है अतः नाट्यमय रामलीलाके कारण मानसका प्रचार सहसा बढ़ चला।

ग्रन्थका व्यापक प्रचार और प्रसार हो जानेसे प्रत्येक वर्गके लोग उसका पाठ, अध्ययन और अनुशीलन करने लगे। इसका फल यह हुआ कि निरक्षर श्रोता भी जहाँ अपनी बुद्धिके अनुसार उसका अर्थ लगाने लगे वहाँ सुधी-समाज भी उसमें रस लेने लगा और ज्यों-ज्यों वह उस मानसरोवरमें डुबकी लगाकर गहराईमें जाने लगा त्यों-त्यों उसमेंसे मोती ही नहीं, नित्य नये-नये रत्न निकलने लगे। साहित्य-रसिक तो इन नये रत्नोंकी आभासे ही चौंधिया गए।

रामचरित मानसका व्यापक प्रचार होनेका एक यह भी कारण है कि इसमें रामकी कथा है। वाल्मीकि-रामायणको लोग समझते भले ही न रहे हों किन्तु रामकी कथा व्यापक रूपसे हिन्दू समाजमें श्रद्धा, भक्ति और आस्थाका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण बनी रही है। इसलिये जब रामकी कथा रामलीला बनकर नाट्य रूपमें और श्रव्य काव्यके रूपमें प्रस्तुत हुई तब लोगोंकी श्रद्धाको ऐसा संबल मिला कि वह सहसा उद्बुद्ध हो उठी।

रामायणकी सरल भाषा (ग्राम्यगिरा) भी रामचरित मानसके प्रचारमें अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई। अपनी सरलताके कारण वह घर-घरमें पढ़ी जाने लगी यहाँतक कि स्त्रियोंके लिये तो इतनी ही शिक्षा पर्याप्त समझी जाने लगी कि वे रामायण बाँच लें। इस भाषा-सरलताके कारण गाँव-गाँव, घर-घरमें केवल नागरीके अक्षरोंसे

परिचित लोग भी रामायणका पाठ करने लगे और निरक्षर लोग भी सुन-सुनकर सैकड़ों दोहे-चौपाई कंठस्थ करने लग गए।

रामायणकी गेयता अर्थात् गा सकी जानेकी योग्यताके कारण भी रामायण अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। स्थान-स्थानपर झाँझ और ढोलकके साथ अनेक रागोंमें अनेक प्रकारकी टेक दे-देकर जब रामायणका व्यापक गायन होने लगा और प्रत्येक व्यक्ति अपने घरमें ही अवकाशसे समय अपने बाल-बच्चोंके साथ अथवा अपने इष्ट-मित्रोंके साथ बैठकर रामायण गाने लगा तब तो आगे चलकर इतनी रामायण-मंडलियाँ बन गईं कि वे घूम-घूमकर मेलों, उत्सवों और पर्वोंपर रामचरित-मानस गा-गाकर उसके प्रचारमें प्रबल सहायक सिद्ध हुईं।

मानसका सबसे अधिक प्रचार रामायणके व्यासोंने किया। यद्यपि उन्होंने मानसके बड़े विचित्र, अशुद्ध, भ्रामक और चमत्कारपूर्ण अर्थ करके अर्थका अनर्थ भी किया तथापि उसका एक अच्छा परिणाम यह भी हुआ कि साधारण जनताके साथ विद्वान् लोग भी मानसकी ओर प्रवृत्त होने लगे। व्यासोंके इस प्रयासका यह भी अच्छा परिणाम हुआ कि आर्य समाज, ईसाई पादरी और मुल्लाओंकी ओरसे तथा वर्तमान वैज्ञानिक और बुद्धिवादी लोगोंकी ओरसे मानसके चरित्रों और कथा-प्रसंगोंपर टीका-टिप्पणी और शंकाएँ की जाने लगीं और उनका समाधान होने लगा। उस धारामें बहुत-सी निराधार शंकाएँ भी उठाई जाने लगीं और साधारण जन-समाज भी आपसमें बैठकर नई-नई शंकाएँ उपस्थित करके मानसकी चौपाइयों और दोहोंके आधारपर उन शंकाओंका पांडित्यपूर्ण समाधान करने लगा।

मानसमें यह आस्था इतनी बढ़ी कि लोग मनोरथ पूर्ण करनेके निमित्त पूरे मानस या केवल सुन्दरकांडका पाठ करने लगे और

रामायण केवल काव्य न रहकर स्तोत्र बन गया जिसका पारायण लोग विशेष प्रकारके भौतिक लाभके लिये, अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ टालनेके लिये करने लगे, यहाँतक कि भवसागर पार करनेके इच्छुक मुमुक्षु महात्मा भी इसी उद्देश्यसे मानसकी ओर प्रवृत्त होने लगे। इन अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियों और क्रियाओंने मानसके प्रचारमें इतना सबल योग दिया कि आज रामचरितमानस भारतके प्रत्येक घरमें ही नहीं विश्व-भरमें सम्मान्य काव्य-ग्रन्थ समझा जाने लगा।

मानसकी भाषा अवधी है। उस समयतक अवधीमें जितने कवियोंने कथाकाव्य लिखे उनमें ईश्वरदासको छोड़कर सब मुसलमान थे, जिन्होंने सूफ़ी मतका प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही अपने ग्रन्थोंका प्रणयन किया। एक तो ये लोग अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, दूसरे इन्हें अपने मतका प्रचार करना था। अतएव इन्होंने अपने-अपने क्षेत्रोंकी बोल-चालकी भाषाका प्रयोग किया। भाषाकी शुद्धताकी ओर उनका ध्यान ही नहीं था। किन्तु गोस्वामीजीने मानसके अतिरिक्त भी जो ग्रन्थ अवधीमें लिखे उनमें ठेठ बोलचालकी भाषाका प्रयोग करते हुए भी भाषाकी शुद्धिकी ओर बराबर ध्यान रक्खा। मानसमें अधिकतर संस्कृतकी कोमल-कान्त-पदावलीका प्रयोग हुआ है, फिर भी कुछ स्थल ऐसे अवश्य हैं जहाँकी भाषा अत्यन्त सरल है। विषयके अनुरूप भाषाका प्रयोग करनेसे यह काव्य अत्यन्त सुन्दर हो गया है। गोस्वामीजीने भाषाकी शुद्धता और प्रौढताका जो मार्ग निकाला था उसपर यदि हिन्दीके कवि आगे चलते तो भूषण आदि कवियोंको शब्दोंका रूप विकृत करनेका साहस न होता। फिर भी मानसके प्रभावका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि कुछ कवियोंने आगे चलकर साधु भाषाका प्रयोग किया ही।

गोस्वामीजीके पूर्व पर्याप्त परिमाणमें कृष्ण-काव्य रचा जा चुका

था। जयदेवसे प्रभावित इन कृष्ण-काव्यों में राधा-माधवका ऐसा स्वरूप सामने आता जा रहा था जो सामाजिक मर्यादा और सामाजिक हितकी दृष्टिसे साधु नहीं कहा जा सकता था। गोस्वामीजीने रामका मर्यादापूर्ण जीवन उपस्थित करके काव्यकी उच्छृङ्खल वृत्ति रोककर एक आदर्श सामने रक्खा। यद्यपि आगेके कवियोंने भी उच्छृङ्खलताकी यह वृत्ति रीति-काव्योंमें बराबर दिखाई है किन्तु आदर्शसे प्रभावित बहुतसे लोगोंने अपनी रचनाओंमें इसका ध्यान भी रक्खा है और कितने ही कवियोंने अपने पात्रोंके चरित्र भी उदात्त दिखाए हैं। उस युगमें थोड़े-बहुत भी इस प्रकारके जो काव्य रचे जा सके वे मानसके ही प्रभावसे। मानसकी रचनाका सबसे बड़ा प्रभाव तो यह पड़ा कि फिर उसकी टक्करका दूसरा राम-काव्य लिखनेका किसीको साहस न हुआ और जिसने प्रयत्न भी किया उसे सफलता नहीं मिल पाई।

गोस्वामीजीका शास्त्र-ज्ञान

गोस्वामीजीने श्रीशेषसनातनसे पन्द्रह वर्षोंतक सब शास्त्रोंकी कितनी प्रौढ और व्यापक शिक्षा प्राप्त की थी इसका प्रमाण है मानसकी रचना। मानसमें धर्म, कर्म, इतिहास, राजनीति, दर्शन, साहित्य-शास्त्र, ज्यौतिष सब विषय इस प्रकार लाए गए हैं कि कविका ज्ञान सुनी-सुनाई बातोंपर आश्रित न होकर गम्भीर अध्ययन और अनुशीलनका परिणाम प्रकट होता है। बहुत-सी ऐतिहासिक (पौराणिक) कथाओंका समावेश और उल्लेख करके उन्होंने अपने इतिहास-ज्ञानका पूरा परिचय दिया है। पुराण वस्तुतः इतिहास ही हैं। यह दूसरी बात है कि उनमें आया हुआ इतिहास आजकलकी कालक्रम-पद्धतिपर न लिखा गया हो। इसका स्पष्ट कारण भी यह है कि जब दस-पाँच सहस्र वर्षका

इतिहास भी इस रूपमें प्रस्तुत करना कठिन है तब लाखों वर्षोंका इतिहास इस रूपमें कहाँ-तक लिखा जाता।

गीताके कर्म-योगका गोस्वामीजीको पूरा ज्ञान था। रावणसे शूर्पणखा कहती है—

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा।
हरिहिं समर्पे बिनु सत्कर्मा॥

कर्म तो मनुष्यको करना ही है। उससे छुटकारा नहीं मिल सकता। परन्तु कर्म-फलकी इच्छा छोड़कर उसे भगवान्को अर्पण कर देना ही सबसे बड़ा योग है। निश्चय ही यह बात लिखते समय गोस्वामीजीका ध्यान गीताके इस श्लोककी ओर था—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

राजनीति और राजधर्मका जैसा उत्तम स्वरूप भरतको उपदेशके समय इस दोहेमें बताया गया है उसका उदाहरण अन्यत्र नहीं मिल सकता—

मुखिया मुखसों चाहिए, खान-पानसों एक।
पालै पोसै सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक॥
राजधरम सरबस एतनोई।

और अपनी इस परिकल्पनाके अनुसार ही उन्होंने जिस रामराज्यका वर्णन किया उसके जोड़की राज्य-व्यवस्था संसारमें कभी सुनी-तक नहीं गई। मानस भक्ति-प्रधान ग्रन्थ है। उसमें सर्वत्र भक्तिकी महिमा गाई गई है। भक्तिका प्राधान्य दिखाना ही कविका उद्देश्य रहा है किन्तु इस प्रसंगमें उन्होंने ज्ञान और भक्तिका जो तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया

है उससे स्पष्ट हो जाता है कि गोस्वामीजीको सभी दर्शन-शास्त्रों तथा अपने समयमें प्रचलित मत-मतान्तरोंका विस्तृत ज्ञान था। कलिकालमें 'जल्पहिं पन्थ अनेक' कहकर उन्होंने उनकी खिल्ली भी उड़ाई है।

मानसमें ऐसे अनेक प्रसंग आए हैं जिनसे उनके ज्यौतिष-ज्ञानका परिचय मिलता है। लंकाकाण्डका पहला दोहा ही इस बातका प्रमाण है कि कविको काल-गणनाके पारिभाषिक शब्दोंका पूर्ण ज्ञान था। प्राचीन पद्धतिके शिक्षणमें इन सारे विषयोंका परिज्ञान गुरुजन यों ही करा डालते थे। जो व्यक्ति पन्द्रह वर्ष-तक श्रेष्ठ विद्वानोंके यहाँ शिक्षा प्राप्त करता रहा उसके सम्बन्धमें यह प्रश्न ही व्यर्थ है कि वह किन-किन शास्त्रोंका ज्ञाता रहा। फिर तुलसी-जैसे अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान्‌का तो कहना ही क्या?

क्या रामचरितमानस पुराण है?

इधर कुछ लोगोंने रामचरितमानसको महाकाव्यकी श्रेणीसे हटाकर पुराणकी श्रेणीमें ला रखनेका बीड़ा उठाया है। वे संभवतः पुराणका यह लक्षण नहीं जानते—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

(१) सर्ग या सृष्टिका विज्ञान, (२) प्रतिसर्ग या सृष्टिका विस्तार, लय और पुनः सृष्टि, (३) सृष्टिकी आदि वंशावली, (४) मन्वन्तरोंके विवरण तथा (५) वंशानुचरित अर्थात् सूर्य और चन्द्र आदि वंशोंका वर्णन, ये ही पाँच विषय पुराणोंमें वर्णित किए जाते हैं। पुराणकी इस परिभाषाके अनुसार रामचरितमानसपर इनमेंसे एक भी लक्षण नहीं घटता। इस परिभाषाके अनुसार किसी ग्रन्थको पुराण कहे जानेके लिये

जितने लक्षण अपेक्षित हैं उनमेंसे एक भी लक्षणा मानसमें है नहीं। इसलिये मानसको पुराण कहना भयंकर अज्ञान और प्रचंड दुस्साहस है।

गोस्वामीजीने पुराणोंकी अनेक कथाएँ रामकी काव्यमयी कथाके क्रममें इस प्रकार ढाल दी हैं कि पुराणोंकी लगभग सारी बातें कलात्मक ढंगसे मानसमें आ गई हैं। काव्यके कुछ लक्षण वर्तमान होनेसे किसी पुराणको काव्य नहीं कह सकते। किन्तु मानस तो पूर्ण रूपसे महाकाव्य है। उसमें गोस्वामीजीने लिखा है कि मैं कवि नहीं हूँ, न काव्य-रचना जानता हूँ पर रामकी कथा कह रहा हूँ। यहाँ उन्होंने अपनी विनम्रता और शालीनता दिखाकर कविता करनेका ही संकेत किया है और स्पष्ट कहा भी है कि मैं 'नाना-पुराण-सम्मत' निबन्ध (काव्य) रच रहा हूँ, पुराण नहीं; क्योंकि मानसमें न तो पुराणके क्रमसे सर्गका वर्णन है, न प्रतिसर्गका, न वंशका, न मन्वन्तरका। वंशानुचरितमें भी केवल सूर्यवंशका वर्णन आया है और वह भी केवल उतना ही जितना रामसे सम्बद्ध है।

गोस्वामीजीका दार्शनिक मत

गोस्वामीजी भक्त थे। उनका किसी प्रकारके दार्शनिक वितण्डावादसे कोई सम्बन्ध न था। उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है—

करउँ कथा हरिपद धरि सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

अपने मनको प्रबोध देनेवाले इस मानसकी रचना समाप्त करते हुए वे कहते हैं—

मो सम दीन न दीन-हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु बिषम भवभीर॥

यह बात केवल भक्त ही कह सकता है, सम्प्रदायवादी नहीं। गरुडसे कागभुशुण्डि कहते हैं—

> स्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी।
> राम भजिय सब काम बिसारी॥

ऐसी अवस्थामें भक्तको किसी दार्शनिक वादके चक्करमें पड़नेका अवकाश ही कहाँ रहता है? भक्त तो अपने प्रभुमें इतना तल्लीन हो जाता है कि उसके सामने केवल उसके प्रभु ही रह जाते हैं। वह अपनेको भी भूल जाता है। गोस्वामीजीने भक्तकी इस दशाका वर्णन विनयपत्रिका आदिमें बहुत किया है किन्तु मानस तथा अन्य ग्रन्थोंमें भी अपने प्रभुका गोस्वामीजीने जो स्थान-स्थानपर वर्णन किया या उनके माहात्म्यके सम्बन्धमें विचार प्रकट किए उनसे उनके दार्शनिक मतके सम्बन्धमें सन्देहकी बात उठती ही नहीं है।

भारतीय दर्शनके छह आस्तिकरूपोंमें केवल वेदान्त दर्शन आगे चलकर मान्य हुआ और शंकरसे लेकर वल्लभतक सबने ब्रह्मसूत्र (वेदान्त-दर्शन) पर अपनी सूझके अनुसार भाष्य करके अपने-अपने दार्शनिक मत प्रतिष्ठित किए। वेदान्त-दर्शनकारने मोटे रूपसे बतलाया है कि 'उद्भव-स्थिति-लय-कर्ता' एक ही शक्ति है जिसे ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्मके इस लक्षणको स्वीकार करके भी आचार्योंने अलग-अलग मत प्रकट किए और उसीका फल है कि शंकरने अद्वैत, रामानुजने विशुद्धाद्वैत, मध्वने द्वैत, निम्बार्कने द्वैताद्वैत और वल्लभने शुद्धाद्वैत चलाया।

शंकरके अद्वैत मतके अनुसार केवल एक सत्ता है—जो निर्गुण, निराकार निर्विकार ब्रह्म है। वही चेतन है। यह दृश्य जगत् केवल नामरूपात्मक है। यह उससे भिन्न नहीं वरन् उसीमें अध्यस्त है। इस नाम और रूपकी प्रतीतिका कारण वह माया है जो है तो अनादि और

अनिर्वचनीय किन्तु ज्ञानके द्वारा जिसका अन्त भी हो जाता है।

रामानुजके विशिष्टाद्वैत मतमें बताया गया है कि ब्रह्मके चेतन अंशसे जीव और अचेतन अंशसे प्रकृति उत्पन्न हुई है। इस जगत्के निमित्त एवं उपादान कारण ब्रह्म ही हैं अर्थात् वे ही अपनेको जगत् रूपमें प्रकट करके अनेक प्रकारकी लीलाका विस्तार और संवरण करते हैं। वे ही जीवको भी अपने सामर्थ्यसे प्रकट करते हैं तथा सृष्टिकी समाप्तिके अनन्तर मकड़ीके जालेकी भाँति सबको समेट लेते हैं। मोक्षका सर्वोत्तम साधन प्रपत्ति अर्थात् भगवान्‌की शरणमें जाना ही है। यह मत प्रपत्तिको ही मुख्य मानता है।

द्वैतवादके प्रवर्त्तक मध्वाचार्यका मत है कि जीव और ब्रह्म दोनोंकी नित्य और पृथक् सत्ताएँ हैं। जीव अणु एवं दास है तथा ब्रह्म सगुण, सविशेष एवं स्वतन्त्र है। जीवका परमार्थ यही है कि वह सालोक्य, सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य और सार्ष्टिमेंसे कोई एक मुक्ति प्राप्त कर ले।

अन्य मतोंके विवेचनकी यहाँ आवश्यकता नहीं है क्योंकि समीक्षकों-का विचार है कि गोस्वामीजी इनमेंसे ही एक मतके माननेवाले रहे। किन्तु ये विचारक भूल जाते हैं कि गोस्वामीजी किसी मत-विशेषकी डोरीमें बँधकर चलनेवाले नहीं रहे। उन्होंने जिस डोरीसे अपनेको बाँध रक्खा था वह तो इस प्रकार है—

जननी जनक बंधु सुत दारा।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सबकै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहिं बाँधि बर डोरी॥

वे एकमात्र राघवेन्द्रके भक्त थे, उनको ही 'तमशेषकारणपर' मानते थे और उन्हींके लिये उन्होंने कहा है—'वन्दे रामाख्यमीशं हरिम्'।

रामचरितमानस शुद्ध भक्तिकाव्य है। सिद्धान्त रूपसे भी उसमें भक्तिका ही प्रतिपादन है। उमासे महेश कहते हैं—

जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी।
जीवत सव समान तेइ प्रानी॥

ग्रन्थके अन्तमें कविका कहना है—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्॥
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

और फलस्तुतिमें कहा गया है—

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये।
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

इसलिये गोस्वामीजीका दार्शनिक मत तो भक्तिवाद है जिसके पाँच (दास्य, सख्य, वात्सल्य, शान्त और मधुर) भेदोंमेंसे वे दास्यभावकी भक्ति मानते थे।

अपने प्रभुका स्वरूप व्यक्त करते समय उन्होंने ब्रह्म, जीव और मायाके साथ त्रिदेवके सम्बन्धमें भी कुछ न कुछ विचार प्रकट किए हैं जो सब उनके अपने हैं। हम जिन दार्शनिक मतोंका ऊपर परिचय दे आए हैं उनमेंसे किसी एकसे तुलसीदासजीका एकात्म सम्बन्ध नहीं था क्योंकि मानसके अनेक वचनोंसे सभी मतोंका समर्थन मिल जाता है। इसी आधारपर कुछ लोग उन्हें समन्वयवादी बताते हुए कहते हैं कि विष्णु और शिवका अभेद दिखाकर उन्होंने काशीको शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्ची बननेसे बचा लिया।

ब्रह्म—

अद्वैतवादियोंकी भाँति गोस्वामीजीने भी यह स्वीकार किया है कि ब्रह्म ही एकमात्र नित्य, सत्य और शाश्वत सत्ता है। यह नाम-रूपात्मक जगत् मिथ्या है तथा इसमें जो कुछ सत्यकी भाँति भासित हो रहा है वह सब मायाके कारण। किन्तु गोस्वामीजीका मत है कि माया तो प्रभुकी दासी है और वे प्रभु या ब्रह्म साक्षात् श्रीराम हैं—

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई।
जागे जथा सपन भ्रम जाई॥

और वह ज्ञेय कौन है?

......सोइ रामू।

उमाने पूछा कि—

प्रभु जे मुनि परमारथबादी।
कहहिं रामकहँ ब्रह्म अनादी॥

वह—

जौं नृपतनय त ब्रह्म किमि?

और शिवने उत्तर दिया—

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेमबस सगुन सो होई॥
जो गुनरहित सगुन सोइ कैसे।
जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥

राम सच्चिदानन्द दिनेसा।
नहिं तहँ मोह-निसा लवलेसा॥
सहज प्रकास रूप भगवाना।
नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥

इस प्रकार राम ही साक्षात् सच्चिदानन्दघन परम तत्त्व हैं। जामवन्तने अंगदसे रामका परिचय देते हुए कहा है—

तात राम कहँ नर जनि मानहु।
निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥
हम सब सेवक अति बड़भागी।
सन्तत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥

इस विवरणसे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मको अनीह, अनाम, अरूप, अज, सच्चिदानन्द, परम धाम, व्यापक, विश्वरूप मानते हुए भी गोस्वामीजीका मत है कि वे 'परम कृपाल प्रनत अनुरागी भगवान्' 'भगतन हित लागी' देह धरकर अनेक चरित करते हैं जिससे लोग उनका यश गाकर भवसागर पार कर जायँ। इसी ब्रह्म रामकी कथा गोस्वामीजीने मानसमें गाई है।

मुक्ति और भक्ति—

जीवके सम्बन्धमें लक्ष्मणसे भगवान्ने कहा है—

माया ईस न आपु कहँ, जानि कहिय सो जीव।

आगे चलकर भुशुंडि कहते हैं—

ईश्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥

किन्तु यही जीव 'मायाबस' होनेसे 'कीर-मरकटकी नाईं' बँध जाता है।

यह बन्धन ऐसा बँधा कि या तो ज्ञानसे कटे या भक्तिसे। किन्तु 'ग्यान पन्थ कृपानकै धारा' है जिससे 'परत होइ नहिं बारा'। अतः—

जे चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हिं करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनाथ कहँ, भजहिं जीव ते धन्य॥

इसका कारण यह है कि—

सेवक-सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि॥

जीवका परम पुरुषार्थ यही है कि वह अज्ञान और मायाके बन्धनसे मुक्त हो जाय। यह बात गोस्वामीजी भी मानते हैं। रामने लक्ष्मणसे कहा है—

धर्मतें बिरति जोगतें ग्याना।
ग्यान मोक्षप्रद वेद बखाना॥

तो ठीक है परन्तु—

जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई॥

यह कहकर रामने भक्तिका प्राधान्य बताया है क्योंकि—

भगति करत बिनु जतन प्रयासा।
संसृतिमूल अबिद्या नासा॥

इसी बातको ध्यानमें रखकर—

.........हरिभगत सयाने।
मुकुति निरादर भगति लुभाने॥

इस विवरणसे ज्ञात होता है कि यद्यपि गोस्वामीजी मोक्षको जीवका परम पुरुषार्थ मानते हैं तथापि भक्तिका स्थान उनकी दृष्टिमें उससे भी ऊँचा है।

जीव—

जीव के सम्बन्धमें गोस्वामीजीने दो मत प्रकट किए हैं। एक स्थानपर वे लिखते हैं कि जीव ईश्वरका अंश है—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।

परन्तु दूसर स्थानपर वे लिखते हैं—

जौ अस हिसिपा करहिं नर, जड़ विवेक अभिमान।
परहिं कलपभर नरक महँ, जीव कि ईस समान ? ॥

ऐसी अवस्थामें 'ईस्वर-अंस'का अर्थ यहाँ यही करना पड़ेगा कि जीव भी ईश्वरके समान ही नित्य है और मायाका फन्दा टूट जानेपर वह 'चेतन, अमल, सहज, सुखरासी' हो जाता है। किन्तु वह ईश्वरका अंश उस प्रकार नहीं है जैसे आमका एक टुकड़ा काटकर हम कहते हैं कि यह उस पूरे आमका एक अंश है। यह बात भगवान्के इस कथनसे भी पुष्ट होती है कि—'जो अपने स्वरूपको, मायाको और ईश्वर को नहीं समझता वही जीव है'—

माया ईस न आपु कहँ जान कहिय सो जीव।

जहाँ गोस्वामीजी कहते हैं कि—

जौं अस हिसिषा करहिं नर, जड़ बिबेक अभिमान।
परहिं कलप भर नरक महँ, जीव कि ईस समान ॥

वहाँ निश्चय ही रामानुजका विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त बोल रहा है।

माया—

मायाके सम्बन्धमें गोस्वामीजीने बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है—

मैं अरु मोर तोर तैं माया।
जेहि बस कीन्हें जीव निकाया॥
गो-गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई॥

इस मायाके दो भेद हैं—विद्यामाया और अविद्यामाया। विद्यामायासे तो उद्भव, स्थिति और लय होता है तथा अविद्यामायासे दुःख आदि बढ़ते हैं। दोनों ही जीवको बन्धनमें डालनेवाली हैं। भक्तोंपर अविद्या मायाका तो कोई प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु विद्यामायाका प्रभाव पड़ सकता है और उससे केवल महा-मायापति (श्रीराम) ही बचा पाते हैं अन्यथा—

सिव बिरंचि कहँ मोहइ, को है बपुरा आन ?

अविद्या माया भी शठोंको ज्ञानहीन तो कर ही देती है साथ ही उन्हें दुराचारकी ओर प्रवृत्त करके उन्हें और खड्डुमें भी गिरा देती है।

मायाका यह बन्धन तभी कट सकता है जब मायापतिका अनुग्रह प्राप्त हो। यद्यपि इसके लिये ज्ञानका मार्ग भी ग्रहण किया जा सकता है तथापि भुशुंडिसे भगवान् कहते हैं—

तिन्हतें पुनि मोहि प्रिय निज दासा।
जेहि गति मोरि न दूसर आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहहुँ तोहिं पाहीं।
मोहिं सेवकसम प्रिय कोउ नाहीं॥

जगत्—

जगत्का स्वरूप क्या है इस सम्बन्धमें तो उनका यह पद्य ही प्रसिद्ध है—

केसव कहि न जाइ का कहिए ।
देखत तब रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए ॥
सून्य भीतिपर चित्र, रंग नहिं, तनु-बिनु लिखा चितेरे ।
धोए मिटै न मरे भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे ॥
रविकर-नीर बसै अति दारुन, मकर-रूप तेहि माँहीं ।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहचानै ॥

[हे अव्यक्त विष्णुरूप ब्रह्म ! हम क्या कहें ! आपकी अत्यन्त रंग-बिरंगी सृष्टिकी रचना देखकर कुछ कहते नहीं बनता। मन ही मन समझकर चुप रह जाना पड़ता है, क्योंकि ऐसी रचना तो न कहीं देखी गई न सुनी गई। समझमें ही नहीं आता कि यह बनी कैसे ? यह नाम और रूपसे भरा हुआ रंग-बिरंगा अनोखा संसार-रूपी चित्र बिना किसी आधार-फलकके सूनी भीत पर आकाशमें ही कैसे बन गया है ? अनेक प्रकारके फूलों, पत्तियों, जीवों और तितलियोंके पंखोंमें अनेक प्रकारके लाल, पीले, हरे, नीले, बैंगनी, गुलाबी, आसमानी, उन्नावी, भूरे, काले रंग कहाँसे आ गए ? बिना रंगके यह रंग-बिरंगा संसार बन कैसे गया ? फिर इस संसारको बनानेवाला ब्रह्म भी बिना शरीरवाला है। उसने बिना शरीरके, बिना हाथ-पैरके ही यह संसार बना कैसे डाला ?

संसारमें जो चित्र बनाए जाते हैं उनका बनानेवाला कोई शरीरधारी होता है किन्तु इस संसाररूपी चित्रको बनानेवाला तो त्रिगुणातीत, नाम-रूपसे परे, अलख, निरंजन ब्रह्म है। फिर संसारके चित्रोंपर यदि पानी डाल दिया जाय तो मिट जायँ और जिस फलकपर (लकड़ी, कागज, कपड़े या भीतपर) वे बने हों वे नष्ट भी किए जा सकते

हैं किन्तु इस रंग-बिरंगी सृष्टिका चित्र तो ऐसा निराला है कि लाख धोने पर भी न मिटे। संसारमें जो चित्र बनते हैं उन्हें देखनेसे सुख मिलता है किन्तु आपके इस चित्रकी ओर देखनेसे सुखके बदले दुःख मिलता है।

एक और भी विचित्र बात है कि आपकी यह सृष्टि सब झूठी है, मृगमरीचिका है, जिसके जलमें रूपका अत्यन्त भयंकर मगर बैठा हुआ है। यह रूपका मगर भी ऐसा विचित्र है कि इसके मुख ही नहीं है, फिर भी जो लोग वहाँ जल पीने आते हैं उन्हें निगल जाता है।

तुलसीदासजीके कहनेका अभिप्राय यह है कि जब कोई साधारण चित्रकार चित्र बनाता है तो वह शरीरवान् होता है, वह रंग लेकर किसी प्रत्यक्ष काष्ठ-फलक, भित्ति, वस्त्र अथवा कागजपर चित्र बनाता है। चित्र बनानेके लिये वह रंग एकत्र करता है, अनेक प्रकारसे रंग मिलाता है। यदि कोई चाहे तो पानी डालकर या खुरचकर उस चित्रको मिटा भी सकता है और जिस आधार या फलकपर वह चित्र बना हो उस आधार या भीतको भी नष्ट कर सकता है। चित्रकार जो चित्र बनाता है वह इसलिये कि उसे देखकर लोग प्रसन्न हों। यदि वह किसी भयानक दृश्यका भी चित्र बनाता है तब भी देखनेवाले लोग कहते हैं—'वाह! कितना सुन्दर चित्र बनाया है।' वह चित्र देखकर सबको आनन्द तो मिलता ही है, साथ ही लोग यह भी चाहते हैं कि यह चित्र सदा हमारे पास रहे, हम इसे निरंतर देखते रहें। उस चित्रको देखनेसे उन्हें सात्त्विक आनन्द मिलता है, प्रेरणा मिलती है। किन्तु भगवान्‌ने जो यह संसार-रूपी चित्र बनाया है यह सब बातोंमें उपर्युक्त चित्रसे भिन्न है। इसे बनानेवाला ब्रह्म शरीर-रहित है। यह संसार बना है आधार-रहित शून्यमें। इसमें न कोई रंग लगाए गए, न यह धोनेसे मिट पा सकता है, न इसका आधार ही नष्ट हो सकता है और न इसकी ओर देखनेसे

सुख ही प्राप्त होता है। सबसे भयंकर बात तो यह है कि जो इसकी सुन्दरतापर आकृष्ट होकर इसमें रमता है उसे यह खा जाता है, समाप्त कर डालता है।

आपके इस संसार-रूपी चित्रकी विचित्रताके कारण ही बड़े-बड़े आचार्योंको इसके स्वरूपके संबंधमें इतना विचार करना पड़ा कि किसीने कहा यह सत्य है, किसीने कहा यह झूठ है और किसीने कहा यह सत्य भी है, झूठ भी है।

तुलसीदासजीका मत है कि मनुष्य अपनेको तभी पहचान सकता है जब वह संसारको न सत्य समझे, न झूठ समझे, न यही समझे कि यह सत्य भी है झूठ भी है।]

तुलसीदासजीका यह संकेत है कि यह संसार सदसद्-विलक्षण है अर्थात् यह सत्य और झूठ दोनोंसे निराला है। अपने इस मतका आभास उन्होंने रामचरितमानसके प्रारम्भमें दे दिया है—

यन्मायावशवर्त्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुराः
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्बोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

[जिनकी मायाके वशमें सारा विश्व, ब्रह्मा आदि देवता और असुर पड़े हुए हैं, जिनकी सत्तासे ही यह सारा दृश्य जगत् उसी प्रकार सत्य प्रतीत होता है जैसे रस्सीको देखकर सर्पका भ्रम होता है, जिनका केवल चरण ही भवसागरमें तरनेकी इच्छा करनेवालोंके लिये एकमात्र नाव है, उन सब प्रकारके कारणोंसे बड़े अर्थात् सबकी रचना करनेवाले, सब कारणोंके कारण राम नामवाले भगवान् हरिकी मैं वन्दना करता हूँ।]

इस श्लोकमें गोस्वामीजीने बताया कि यह संसार वास्तवमें वह नहीं है जो हमें दिखाई पड़ता है। जैसे रस्सीको देखकर साँपका भ्रम हो जाता है और हम उसे सत्य मानकर उससे वैसे ही डरते हैं जैसे साँपसे डरते हैं, उसी प्रकार संसारका ठीक स्वरूप न जाननेके कारण हम उसे देखकर दुःख पाते हैं। अर्थात् यह दुःख भ्रमके कारण है और यह भ्रम तभी दूर हो सकता है जब हम समझ लें कि यह संसार 'है और नहीं से विलक्षण' (सत्–असत् विलक्षण) है। यह 'है' क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है पर यह जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है यह उसका भ्रमात्मक स्वरूप है। अतः, उसका वास्तविक स्वरूप इस 'है' और 'नहीं'से कुछ निराला है। क्योंकि जो है वह तो रस्सी है, जो नहीं है वह सर्प है। किन्तु जो वह नहीं है, उसीके कारण अर्थात् सर्पके भ्रमके कारण ही हम उससे डरते, घबराते, भागते और कष्ट पाते हैं। अतः, हमें समझना चाहिए कि जो है और जो नहीं है, उससे कुछ विचित्र ही यह संसार है। अतः, जिन्हें यह भान हो जाय कि यह संसार सत्य और झूठसे निराला है, न सत्य है, न झूठ है और न सत्य और झूठ दोनों है, वही ठीक अपनेको पहचान सकता है, आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है। जबतक बुद्धिमें भ्रान्ति रहेगी तबतक आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता और यह आत्मज्ञान भगवत्कृपाके बिना संभव नहीं है। यह बुद्धिका भ्रम केवल भगवद्भक्तिसे ही दूर हो सकता है, क्योंकि वही इस मायामय जगत्में आत्मसाक्षात्कार करा सकती है।

गोस्वामीजीने संसारको निराधार चित्रके रूपमें जो वर्णित किया है यही भाव एक संस्कृत कविने निम्नांकित श्लोकमें व्यक्त किया है—

निरुपादानसंभारमभित्तावेव तन्वते।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ॥

[बनानेकी किसी सामग्रीके बिना और भीत-रूपी किसी आधारके बिना भी यह संसार-रूपी चित्र खींचनेवाले अद्‌भुत कलाकार त्रिशूलधारी भगवान् त्रिशूली (शंकर) को हमारा प्रणाम है।] चित्रकार तो तूलिका लेकर चित्र खींचता है किन्तु चित्रकार शंकरजी तो शूल लेकर बिना आधारकी भीतपर सृष्टि-रूपी चित्र बना देते हैं। वाह रे अनोखे कलाकार!]

इसीलिये कहा गया—

केसव ! कहि न जाइ का कहिए !

वास्तविकता यह है कि ग्रन्थ भरमें गोस्वामीजीने भक्तिका माहात्म्य ही बताया है। यह ग्रन्थ ही भक्तिरस—प्रधान है। गोस्वामीजी राम और राम-नामके अनन्य-भक्त थे। रामको ही वे परब्रह्म मानते थे जो भक्तोंके कल्याणके लिये समय-समयपर अवतरित होते रहते हैं और जिनकी लीला गाकर मनुष्य चौरासी लाख योनियोंके चक्रसे छुटकारा पा सकता है। इसके अतिरिक्त न तो वे किसी दार्शनिक वादके फेरमें पड़े हैं और न किसीके प्रचारसे उनका कोई सम्बन्ध रहा है। भक्तिकी प्रधानता दिखानेके प्रसंगमें यदि कहीं कोई वाक्य ऐसा आ गया हो जिससे किसी एक सिद्धान्तका समर्थन होता हो और कहीं दूसरे किसी वाक्यसे किसी अन्य सिद्धान्तका पोषण होता हो तो लोग अपनी इच्छानुसार भले ही उनमें वाद और सिद्धान्त ढूँढ़ा करें।

उनका दार्शनिक सिद्धान्त कवितावलीके निम्नाङ्कित सवैयोंसे स्पष्ट हो जाता है—

राम हैं मातु पिता गुरु बन्धु औ संगि सखा सुत स्वामि सनेही।
रामकी सौंह भरोसो है रामको राम-रग्यो रुचि राच्यो न केही॥
जीअत राम मरे पुनि राम सदा गति रामहिकी इक जेही।
सोइ जियै जगमें तुलसी, न तु डोलत और मुए धरि देही॥

सिय राम सरूप अगाध अनूप बिलोचन मीननुको जलु है।
स्रुति रामकथा मुख रामको नाम हिए पुनि रामहिंको थलु है॥
मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति रामसों, रामहिको बलु है।
सबकी न कहै तुलसीके मते इतनो जग जीवनुको फलु है॥

निम्नांकित दोहा भी उनका वास्तविक मत प्रकट करनेके लिये पर्याप्त है—

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥

साम्प्रदायिक सामंजस्य

पौराणिक कालके पश्चात् भारतमें उपासनाके मुख्य सम्प्रदाय दो ही रहे—शैव और वैष्णव। प्रायः समस्त पुराण-साहित्यमें शिव और विष्णुका अभेद दिखाया गया है। वैष्णव कहे जानेवाले पुराणोंमें शिवकी पूजा-अर्चाकी विधि एवं उनका माहात्म्य दिखाया गया है और शैव कहे जानेवाले पुराणोंमें विष्णुके सम्बन्धमें भी ऐसा ही उल्लेख है। आगे चलकर समन्वयकी यह बुद्धि नहीं रह पाई। पुराणोंमें आस्था रखनेपर भी शैवोंने शिवको और वैष्णवोंने विष्णुको प्रधान देवता माना और अपने-अपने उपास्यको श्रेष्ठ सिद्ध करते-करते ये लोग इस सीमातक जा पहुँचे कि एक दूसरेके प्रति द्वेष-बुद्धि रखने लगे। उत्तर भारतमें भी यह अवस्था उत्पन्न हो ही चली थी कि गोस्वामीजी सहसा अवतरित हो गए। उन्होंने अनुभव किया कि यदि तत्काल इस प्रवृत्तिपर अंकुश न लगाया गया तो इससे पारस्परिक वैमनस्य बढ़ेगा और इसका परिणाम यह होगा कि हिन्दुओंकी शक्ति व्यर्थके संघर्षमें पड़कर और भी क्षीण हो जायगी। अतएव उन्होंने शिव और विष्णु (या राम) में उस अभेद भावकी स्थापनाका निश्चय किया जो पुराणोंमें आ चुका था और जो कालक्रमसे लुप्त हो

चुका था। रामचरित-मानसके द्वारा उन्होंने यह अत्यन्त गुरुतर कार्य सम्पन्न भी कर लिया।

गोस्वामीजी वैष्णव थे किन्तु उन्होंने अपने पंथमें शिवको भी लपेट लिया और मानसमें यह प्रतिपादित किया कि सबसे बड़े वैष्णव तो शिव हैं जिनकी कृपाके बिना रामकी भक्ति प्राप्त ही नहीं हो सकती। राघवेन्द्र स्वयं कहते हैं—

संकर-प्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलपभर, घोर नरक-महुँ वास॥

रामके कथनानुसार दोनोंकी ही उपासना आवश्यक है। एकको त्यागकर दूसरेको नहीं पाया जा सकता। रामचरितका गान आरम्भ करनेसे पूर्व गोस्वामीजी कहते हैं—

सपनेहुँ साँचेहु मोहिंपर, जौ हर-गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ॥

और इसका कारण यही है कि शिवसे बढ़कर रामभक्त दूसरा कोई है ही नहीं, यहाँतक कि रामकथाके उद्‌गम भी वे ही हैं—

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवासन भाषा॥

और वे ही एक हैं जिनके सम्बन्धमें श्रीरामने स्पष्ट कहा है—

संकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि॥

इस प्रकार गोस्वामीजीने राम और शिव या विष्णु और शिवमें अभेद भावकी स्थापना करके उस समय व्याप्त साम्प्रदायिक वैमनस्यपर अंकुश लगाकर कमसे कम उत्तर भारतको तो दो विरोधी शिविरोंमें बँटनेसे बचा ही लिया।

वर्णाश्रम-व्यवस्थाके प्रति आस्था

भुशुंडिने कलिधर्मनिरूपणके प्रसंगमें जो कुछ भी कहा है वह इस बातका सबसे बड़ा प्रमाण है कि भगवद्भक्तिके लिये गोस्वामीजी यह आवश्यक नहीं समझते थे कि लोग गृह त्यागकर संन्यासी हो जायँ। गोस्वामीजीने अपनी रचनाओंमें आचरणकी शुद्धतापर बड़ा बल देनेके साथ ही—

हरिहिं समर्पे बिनु सत्कर्मा।

—कहकर कर्मयोगका प्रतिपादन किया और ज्ञानमार्गकी कठिनाइयोंकी चर्चा करके भक्तिमतका पोषण किया। इसके लिये गृहत्यागी संन्यासी बननेकी उन्होंने कोई आवश्यकता ही नहीं समझी। कलिधर्म-निरूपणके प्रसंगमें वे स्पष्ट कहते हैं—

नारि मुई गृह संपति नासी।
मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥

इस प्रकार अनधिकारी रूपसे संन्यासी हो जानेकी वे निन्दा करते हैं। वे संन्यास-धर्मके निन्दक नहीं थे पर अधिकारीका भेद वे अवश्य मानते थे। गोस्वामीजीकी दृष्टिमें प्रत्येक व्यक्तिको वैसा ही कर्म करना चाहिए जैसा उसके लिये शास्त्रोंमें बतलाया गया है। शास्त्र-विरोधी आचरण करनेवालोंका उन्होंने कसकर विरोध किया है—

स्रुति संमत हरि भक्ति पथ, संजुत बिरति बिबेक।
तेहि न चलहिं नर मोहबस, कल्पहिं पंथ अनेक॥

मनुष्य-समाजके लिये निर्धारित श्रुतिमार्ग वर्णाश्रम-धर्म है गोस्वामीजी इसे कितना आवश्यक समझते थे यह कलिमें व्याप्त अनाचारको देखकर उत्पन्न उनकी दुःखमयी वाणीमें सुनिए—

बरन धर्म नहिं आस्रम चारी।
स्रुति विरोध-रत सब नरनारी॥

आगे चलिए—

सब लोग बियोग बिसोक हए।
बरनास्रम धर्म अचार गए॥

इससे स्पष्ट हो जायगा कि गोस्वामीजी शास्त्रसम्मत वर्णाश्रम-धर्मको आवश्यक मानते थे और इसके विरुद्ध—

मिथ्यारम्भ दंभ कर जोई।
ता-कहँ सन्त कहइ सब कोई॥

—को वे सामाजिक जीवनके लिये घोर अभिशाप मानते थे। रामको उन्होंने 'श्रुतिसेतुपालक' कहा है क्योंकि रामका ही चरित्र ऐसा मर्यादापूर्ण है कि उन्होंने सभी सामाजिक मर्यादाओंका पालन किया। गोस्वामीजीकी दृष्टिमें सामाजिक मर्यादाके लिये वर्णाश्रमधर्म कितना आवश्यक है यह इसीसे प्रकट हो जाता है कि गोस्वामीजीने सर्वत्र मर्यादावादकी ही प्रशंसा की है।

भारतीय सांस्कृतिक जीवनका चित्रण

कलिधर्म-निरूपणके प्रसंगमें जो कुछ लिखा गया है उसपर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संस्कृतिका आदर्श क्या है। कलिमें सभी प्रकारकी सामाजिक मर्यादाएँ नष्ट हो जाती हैं, लोग आचारहीन हो जाते हैं तथा 'निगमका अनुशासन' नहीं मानते। इस प्रसंगमें कलिकालके लोगोंके भ्रष्ट आचारोंके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है उसका ठीक उलटा स्वरूप श्रेष्ठ और आचार-सम्मत है तथा वही भारतीय सांस्कृतिक जीवनका प्रतीक है। वह आदर्शमय जीवन कैसा होना चाहिए इसका ही पूरा चित्रण रामचरितमानसमें किया गया है।

गोस्वामीजीने राम, भरत और लक्ष्मणके उदात्त चरित्रोंके माध्यमसे दिखलाया है कि भाइयोंका आदर्श व्यवहार किस प्रकारका होना चाहिए। दशरथके चरित्रमें सत्यप्रियता तथा आदर्श पिताका चित्रण किया गया है। कौशल्याके रूपमें आदर्श माताका, सीताके रूपमें आदर्श पत्नीका, हनुमानके रूपमें आदर्श सेवकका, सुग्रीव और विभीषणके रूपमें आदर्श मित्रका वर्णन किया गया है। राम तो हमारे सामने कई रूपोंमें आते हैं। वे आदर्श भाई, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श राजा, आदर्श मित्र और शरणागतवत्सलके रूपमें हमारे सामने आते हैं। हमारे सांस्कृतिक जीवनके आधार ये आदर्श ही हैं। जिस भारतीय संस्कृतिको अमर कहा गया है, जिसका गुण-गान आज विदेशी लोग भी करते नहीं अघाते, जिसकी ओर आज संसारकी आँखें लगी हुई हैं और जिसके कारण भारत आज भी जगद्गुरु बना हुआ है उसके तत्त्व हमारे इस आदर्शपूर्ण एवं मर्यादित जीवनमें ही हैं। इसका जैसा उत्तम चित्रण मानसमें हुआ है वैसा संसारके किसी एक ग्रन्थमें एक साथ नहीं मिल सकता। यही रामचरितमानसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

मानव-जातिको सन्देश

गोस्वामीजीने मानसकी रचना 'स्वान्तःसुखाय' और 'मोरे मन प्रबोध जेहि होई' के उद्देश्यसे की किन्तु इस 'स्व' का अर्थ बड़ा व्यापक है। 'ईस्वर अंस जीव अबिनासी' की धारणाके अनुसार देखिए तो यह सम्पूर्ण विश्व उस विराट् विभुका ही स्वरूप है। इसलिये 'स्वान्तः-सुखाय' का अर्थ हुआ 'सबके सुखके लिये' अर्थात् मानवके ही नहीं, प्राणिमात्रके सुखके लिये, चर-अचर सबके सुखके लिये। गोस्वामीजीने सबके सुखका ध्यान करके ही इस रामकथा की रचना की और

इसमें सन्देह नहीं कि जहाँ पूर्ण श्रद्धा और भक्तिके साथ रामका गुणगान होता है वहाँके सभी जीवधारियोंपर उसका प्रभाव पड़ता है, चाहे हम उसे समझ पायँ या न समझ पायँ। गोस्वामीजीने रामकी कथा रचकर, उसमें भक्तिका प्रतिपादन करके, कर्मयोगकी शिक्षा देकर, कल्पित मतों और पन्थोंका खंडन करके, सन्तों और खलोंका स्वरूप प्रकट करके मनुष्यको बताया कि क्या उसका लक्ष्य है, कैसा उसका आचार होना चाहिए, किस धर्मका उसे पालन करना चाहिए, एक दूसरेके साथ किस प्रकारका सम्बन्ध रखना चाहिए, छोटोंका बड़ोंके प्रति और बड़ोंका छोटोंके प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिए, सामाजिक व्यवस्थाएँ कैसी होनी चाहिएँ, राज्य-व्यवस्था कौन-सी उत्तम है तथा मनुष्यका श्रेय और प्रेय क्या है। वैशेषिक दर्शनमें कणादने धर्मका लक्षण बताया है—

यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः ॥

[जिससे इस लोकमें अभ्युदय अर्थात् लौकिक सुख तथा निःश्रेयस (मुक्ति) प्राप्त हो वही धर्म है।]

व्यासजी कहते हैं—

सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः ।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले ॥

[जो मन, वचन और कर्मसे सबका सदा मित्र है और सदा सबके हितमें लगा रहता है वही धर्म है।]

इसी धर्मकी विस्तृत व्याख्या अनेक चरित्रों तथा उन अनेक उपदेशों द्वारा मानसमें की गई है जिन्हें अपने जीवनमें ढालकर मनुष्य सरलतासे इहलौकिक और पारलौकिक रस प्राप्त कर सकता है।

अतः, मानव जातिके लिये गोस्वामी तुलसीदासजीका संदेश वही है जो व्यासजीने बताया था—

अष्टादश-पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

इसीको गोस्वामीजीने इस अर्धालीमें बाँध दिया है—

परहित सरिस धरम नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहि अधमाई ॥

और इसी उद्देश्यसे उन्होंने ग्राम्यगिरामें 'सरल कबित कीरति बिमल' लेकर उस रचनाको जन्म दिया जिससे 'सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।' मानव जातिको और विश्वके कवियोंको इससे बड़ा दूसरा कौन-सा संदेश मिल सकता है ?

(ख) विनयपत्रिका

गोस्वामीजीकी रचनाओंमें मानस प्रथम और विनयपत्रिका अन्तिम है किन्तु महत्त्वकी दृष्टिसे मानसके पश्चात् विनयपत्रिकाकी ही गणना होती है । मानसकी प्रस्तावनामें गोस्वामीजीने लिखा है—

कीरति भनिति भूति भल सोई ।
सुरसरि-सम सब कहँ हित होई ॥

इसमें सन्देह नहीं कि विनयपत्रिकामें राघवेन्द्रकी कथाके रूपमें उनकी कीर्तिका गान भले ही न किया गया हो किन्तु गोस्वामीजीकी जो वाणी इन पदोंके रूपमें मुखरित हुई है वह भक्तोंके लिये अवश्य ही सुरसरिकी भाँति हितकारक सिद्ध हुई । विनयके इन पदोंमें अत्यन्त विनीत भक्तका आर्त्त हृदय बोल उठा है । गोस्वामीजीकी भक्ति दास्य भावकी थी और विनयपत्रिकामें भक्तिका यह स्वरूप चरम उत्कर्षको प्राप्त हो गया है ।

इस विचित्र पत्रमें भक्तने अपने प्रभुसे अपनी अवस्थाका पूर्ण रूपसे वर्णन करनेके साथ उनसे अपने कष्टोंकी निवृत्तिके लिये प्रार्थना की

है। यह केवल स्फुट पदोंका संग्रह मात्र नहीं है जैसा कुछ लोग कहा करते हैं। पत्रकी रूपशैलीमें लिखे हुए मुक्तकात्मक प्रबन्ध-काव्यका यह उत्कृष्टतम उदाहरण है। इस प्रकारका पत्र-काव्य संसारकी किसी भाषामें न पहले लिखा गया और न उसके अनन्तर ही। अत्यन्त प्रौढ और ललित भाषामें रचे हुए इस काव्यमें कविने केवल अपने हृदयके उद्गार ही नहीं प्रकट किए हैं वरन् पत्रका पूरा इतिहास भी उपस्थित कर दिया है।

पत्र लिखते समय 'श्रीगणेशाय नमः' लिखनेकी चाल सदासे रही है। गोस्वामीजीने राजाधिराज राघवेन्द्रके पास भेजे जानेवाले इस पत्रके पहले पदमें मंगलमय गणनाथकी स्तुति की है जिसमें उनके पास-तक पत्र पहुँचनेमें कोई बाधा न आवे। फिर उन्होंने अनेक देव-देवियोंकी प्रार्थना करके रामके सबसे बड़े सेवक भक्तराज हनुमानजीकी प्रार्थना की और तब तीनों भाइयोंकी प्रार्थना कर चुकनेपर जगदम्बा जानकीजीसे निवेदन किया—

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ॥

दो पदोंमें जगदम्बासे निवेदन कर लेनेके पश्चात् छह पदोंमें उन्होंने रामकी स्तुति की और फिर अनेक प्रार्थनाओंके अनन्तर २७१ वें पद-तक भगवान्‌की महिमा, अपनी दीनता, कलिजन्य-दुःख आदिका वर्णन कर चुकनेपर पाँच पदोंमें बाल्यावस्थासे तबतकके दुःखोंकी चर्चा करके अन्तमें निवेदन किया है कि अब आप ही मुझे अपनाइए। इसके आगे उन्होंने रामसे स्वयं पत्रिका पढ़नेका अनुरोध करके हनुमान आदिसे निवेदन किया है कि मेरा यह पत्र प्रभुकी सेवामें उपस्थित कर दें। लक्ष्मणजीने सबकी रुचि जानकर श्रीरामकी सेवामें पत्र उपस्थित कर दिया। अन्तिम पदमें कहा गया है कि श्रीरामने आवेदन-पत्र स्वीकार

करके उसपर हस्ताक्षर कर दिया। इस प्रकार पत्रिकाका पूरा इतिहास इसमें आ जानेके कारण यह पूरा कथाकाव्य हो गया है।

गोस्वामीजीने रामचरितमानस महाकाव्यके रूपमें भगवच्चरितका गान किया और कथा तथा स्तुतिसे पूर्ण पत्रकाव्यके रूपमें अपने उद्धारकी प्रार्थना करके तथा उसकी स्वीकृति प्राप्त करके अपनी लेखनीको विश्राम देनेके पश्चात् फिर कुछ लिखनेकी आवश्यकता न समझी। वास्तवमें रामचरितमानसकी रचनामें गोस्वामीजीका उद्देश्य काव्य-रचना करना नहीं वरन् लोक-कल्याणके लिये भगवच्चरितका गान करना था। उन्होंने अपने 'मनके प्रबोध'के लिये तथा 'रघुनाथकी निरन्तर प्रियता' प्राप्त करनेके लिये तो मानसके रूपमें उनका गुणगान आरम्भ किया और विनयपत्रिकाके रूपमें अपना आत्मनिवेदन करके पूर्ण विश्राम लिया क्योंकि जब भगवान्ने उनकी विनीत प्रार्थना स्वीकार ही कर ली तब उन्हें कुछ लिखनेकी आवश्यकता ही क्या रह गई?

फ्रांसके प्रसिद्ध कवि दाँतेने अपने 'दिविना कोमीदिया' (दैवी उल्लास) में अपनेको काव्यका नायक मानकर नरक और स्वर्गका जो चित्रण किया है उसमें उसने अपने समयके और उसके पूर्वके प्रसिद्ध कवियों और व्यक्तियोंको ही अपने काव्यका चरित्र बनाया है। उसके काव्यका उद्देश्य आनन्द देना नहीं वरन् डाँटना, फटकारना, सुपंथकी ओर चलनेके लिये आग्रह करना है और मनुष्योंका चरित्र सुधारनेके लिये उन्हें यह शिक्षा देना है कि किस प्रकार जीवन-निर्वाह करनेसे प्रसाद या सुख मिलेगा और किस प्रकारका जीवन व्यतीत करनेसे दण्ड या दुःख मिलेगा। वह संसारके प्रसिद्ध कवि वर्जिलके साथ नरकमें जाता है, जहाँ संसारके बड़े-बड़े प्रसिद्ध कवि, राजे और पादरी पड़े यातना भोग रहे हैं। वहाँसे निकलकर वह पार्थिव स्वर्गकी चोटीपर पहुँच

जाता है जहाँ उसकी प्रियतमा बिएत्रिस मिलती है जो उसे स्वर्गमें ले जाती है, जहाँ उसे परमदेवका दर्शन हो जाता है और वह ईश्वरके साथ एकात्म हो जाता है। गोस्वामीजीने भी विनयपत्रिकामें अपनेको नायक तो बनाया है पर उनकी प्रार्थनाको भगवान्-तक पहुँचानेमें कोई लौकिक व्यक्ति नहीं वरन् सब देवता और उनके इष्ट रामके सभासद् ही सहायक होते हैं। अपनी इस पत्रिकामें कलिकालके अनाचारोंका वर्णन करके उन्होंने सब देवताओंसे 'रामचरन-रति'की प्रार्थना की है और भगवान्से निवेदन किया है कि मुझे कलिकालके चंगुलसे छुड़ा दें। भगवान् उनकी प्रार्थना स्वीकार भी कर लेते हैं। इस दृष्टिसे विनयपत्रिकाको मुक्तक छन्दोंमें लिखा हुआ भावात्मक प्रबन्ध-काव्य ही समझना चाहिए।

गोस्वामीजी एकनिष्ठ रामभक्त थे। उन्होंने विनयपत्रिकामें जिस-जिस देवतासे भी प्रार्थना की है उससे यही कहा है—

राम-चरन रति दीजै।

विनयपत्रिकाके पहले पदमें गणेशजीकी स्तुति करते हुए गणपतिको 'सकल सिद्धिप्रद' और 'मुदमंगल-दाता' कहकर भी गोस्वामीजीने उनसे 'सिद्धि, मोद और मंगल'की याचना न करके यही कहा—

माँगत तुलसिदास कर जोरे।
बसहिं रामसिय मानस मोरे॥

इसी प्रकार राम-कथाके उद्घाटक और रामके सर्वश्रेष्ठ भक्त शिवजीसे भी वे यही कहते हैं—

देहु कामरिपु! रामचरन-रति।

इस दृष्टिसे इस पत्रिकामें रामकी भक्ति और उसका श्रेष्ठत्व मानससे कहीं बढ़कर दिखाया गया है। रामकी प्रीतिसे संसृतिमूलक भव-रोगके

निवारणका जो विश्वास गोस्वामीजीको था उसीका परिचय उन्होंने अपने इस अन्तिम ग्रन्थमें देते हुए सारी विनयपत्रिकामें रामकी श्रेष्ठता और अपनी दीनताका ही वर्णन किया है। विनयपत्रिकाका वास्तविक प्रतिपाद्य भी यही है। दैन्यभावका उतना उत्कर्ष सूर-सागरमें भी नहीं दिखाई पड़ता जितना विनयपत्रिकामें है, यद्यपि सूरसागरमें भी विनयके पद कुछ कम सुन्दर नहीं हैं।

भक्ति-रसका जैसा सरस प्रवाह विनयपत्रिकामें मिलता है वैसा कम ग्रन्थोंमें मिलता है। यह ग्रन्थ इतना प्रभावशील है कि इसके विनय-सम्बन्धी पदोंकी सरितामें जो एक बार भी निष्ठाके साथ अवगाहन कर ले वह निश्चय ही कुमार्गसे हटकर भगवच्चरणारविन्दकी ओर आकृष्ट हो जायगा।

विनयपत्रिकाका साहित्यिक महत्त्व

इस ग्रन्थमें दो प्रकारकी भाषा-शैलियोंका प्रयोग किया गया है। प्रारम्भिक ६१ पदोंकी भाषा समास-बहुला संस्कृत-प्राय है। इन पदोंमें विविध देवोंकी स्तुतियाँ हैं और इन्हींके अन्तर्गत ४३ और ४४ संख्यक वे दोनों पद भी हैं जो वास्तवमें आवेदनपत्र हैं—

जयति सच्चिद्व्यापकानन्द यद्ब्रह्म-विग्रह-व्यक्त लीलावतारी।
बिकल-ब्रह्मादि-सुर-सिद्धि-संकोचवश विमल-गुण-गेह-नरदेह-धारी॥
जयति कोशलाधीश-कल्याण कोशलसुता-कुशल कैवल्य-फल-चारु चारी।
बेदबोधित-कर्म-धरणी-धेनु-विप्र-सेवक-साधु-मोदकारी॥
जयति ऋषि-मख-पाल शमन सज्जनशाल शापवश-मुनिवधू-पापहारी।
भंजि भवचाप दलि दाप भूपावली सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी॥
जयति धार्मीकधुर धीर रघुवीर! गुरु-मातु-पितु-बन्धु-वचनानुसारी।
चित्रकूटाद्रि-विन्ध्याद्रि-दंडकबिपिन-धन्यकृत पुन्यकानन-बिहारी॥

जयति पाकारि-सुत-काक-करतूति-फलदानि खनि गर्त्त गोपित बिराधा।
दिव्य-देवी-बेष देखि निशिचरी जनु बिडम्बित करी बिश्वबाधा॥
जयति खर-त्रिशिर-दूषण-चतुर्दशसहस्र-सुभट-मारीच-संहारकर्ता।
गृध्र-शवरी भक्ति-विवश करुणासिंधु चरित-निरुपाधि त्रिविधार्ति-हर्ता॥
जयति मदअंध कुकबंध बधि बालि-बलशालि बधि करण-सुग्रीव-राजा।
सुभट-मर्कट-भालु-कटक-संघट सजत नमत पद रावणानुज निवाजा॥
जयति पाथोधि-कृत-सेतु-कौतुक-हेतु काल-मन-अगम लई ललकि लंका।
सकुल सानुज सदल दलित दसकंठ रण लोक-लोकप किए रहित-शंका॥
जयति सौमित्रि-सीता-सचिव-सहित चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी।
दासतुलसी मुदित अवधबासी सकल राम भे भूप बैदेहि रानी॥१॥

जयति राजराजेन्द्र राजीवलोचन राम-नाम-कलिकाम-तरु सामशाली।
अनय-अंभोधि-कुंभज निशाचर-निकर-तिमिर-घनघोर-खर-किरणमाली॥
जयति मुनिदेव नरदेव दसरत्थके देव-मुनि-वन्द्य किए अवधबासी।
लोकनायक-लोक-सोक-संकट-समन भानुकुल-कमल-कानन-बिकासी॥
जयति शृङ्गार-सर-तामरस-दाम-द्युति-देह गुणगेह विश्वोपकारी।
सकल सौभाग्य-सौन्दर्य-सुषमारूप मनोभव-कोटि-गर्वापहारी॥
जयति सुभग शारंग-सु-निखंग-सायक-सक्ति-चारुचर्मासि-बरबर्मधारी।
धर्मधुर धीर रघुबीर भुजबल-अतुल हेलया दलित भूभार भारी॥
जयति कलधौत-मणि-मुकुट-कुंडल-तिलक झलकि भलि भाल बिधुबदन शोभा।
दिव्य भूषन-बसन पीत उपवीत लिए ध्यान कल्याण-भाजन न को भा?
जयति भरत-सौमित्र-शत्रुघ्न-सेवित सुमुख सचिव-सेवक-सुखद-सर्वदाता।
अधम आरत दीन पतित पातक-पीन सकृत नतमात्र कहै पाहि पाता॥
जयति जय भुवन दस चारि जस जगमगत पुन्यमय धन्य जय रामराजा।
चरित-सुरसरित-कविमुख्य गिरि-निःसरित पिबत मज्जत मुदित सत समाजा॥

जयति वर्णाश्रमाचार-पर-नारिनर सत्य-सम-दम-दया-दान-सीला।
बिगत-दुखदोष संतोष सुख सर्वदा सुनत गावत राम-राजलीला॥
जयति वैराग्य-विज्ञान-वारांनिधे नमत नर्मद पाप-ताप-हर्ता।
दासतुलसी चरणशरण संशयहरण देहि अवलंब बैदेहि-भर्त्ता॥२॥

संभवतः गोस्वामीजीने विचार किया होगा कि स्तोत्रकी भाषा देव-वाणी ही हो तभी अच्छा है। इन दो पदोंके पश्चात् ६१ वें तक जो पद हैं वे आवेदन दे-देनेपर स्तुतिके रूपमें कहे गए हैं। इसके पश्चात् जहाँ उन्होंने रामके प्रति विनयोंकी शृङ्खला आरम्भ करके अपनी दशाका वर्णन किया है वहाँकी भाषा अत्यन्त सरल हो चली है। किन्तु दोनों प्रकारकी शैलियोंमें प्रवाह और ओज इतना अधिक है कि इस क्षेत्रमें गोस्वामीजीकी समता कोई नहीं कर सकता।

विनय-पत्रिकाकी रचना गेय पदोंमें हुई है। अतः, उसमें अन्य किसी छन्दका प्रयोग नहीं किया गया। ये पद राग-रागनियोंके निर्देशके साथ लिखे गए हैं जिससे गोस्वामीजीकी अगाध संगीत-शास्त्रज्ञताका भी परिचय मिलता है।

यद्यपि विनय-पत्रिकासे भी गोस्वामीजीकी सेव्य-सेवक भक्ति ही सिद्ध होती है किन्तु 'मानस' के ही समान इसमें भी कहीं-कहीं गोस्वामीजीने ऐसी बातें कह दी हैं जिनसे कभी तो यह प्रतीत होता है कि वे अद्वैतवादका समर्थन करते हैं और कभी विशिष्टाद्वैतवादका।

नाचत ही निसि दिवस मरयो।
तब ही तें न भयो हरि थिर जबतें जिव नाम धरयो॥

× × ×

तुलसिदास निज भवन द्वार प्रभु दीजै रहन परयो।

यहाँ 'जिव नाम धरयो' और 'प्रभु दीजै रहन परयो' से स्पष्ट हो जाता है कि वे विशिष्टाद्वैतका समर्थन करते हैं। किन्तु—

अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त-विभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं ॥

वाले पदमें वे रामको स्पष्ट 'अव्यक्त, विभु, एक, अनवद्य, अज और अद्वितीय' कहकर अद्वैत मतका समर्थन कर रहे हैं। परन्तु यह अवश्य है कि—

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।

तथा—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानी हौं भिखारी।

तथा अन्य ऐसे कितने ही पदोंमें वे जीव और ब्रह्मको पृथक् मानकर द्वैतवादका ही समर्थन करते प्रतीत होते हैं। किन्तु सिद्धान्ततः वे शुद्ध रामभक्त थे। किसी सैद्धान्तिक वादसे उनका कोई ऐकान्तिक सम्बन्ध नहीं था।

साहित्यिक दृष्टिसे विनयपत्रिकामें गोस्वामीजीकी प्रौढ कवित्व-शक्तिके पूर्ण विकासका परिचय मिलता है। विनय-पत्रिकासे कविके इतिहास, भूगोल तथा साहित्यशास्त्रके अगाध पाण्डित्य, शब्दों और अर्थोंपर अखंड अधिकार, काव्य-रचनामें अद्वितीय प्रवीणता, भावुकता और अभिव्यञ्जना-कौशलका तो भरपूर परिचय मिलता ही है साथ ही उनके समास-बहुल पदोंकी शब्दावलीमें उनकी अद्भुत विद्वत्ता और रचनाशक्तिका परिचय भी अनायास मिल जाता है।

मानसके ही समान विनयपत्रिकामें भी उन्होंने शिव और रामकी एकात्मता और शिवमें अपनी निष्ठाका स्थान-स्थानपर परिचय तो दिया ही है किन्तु निम्नांकित हरिशंकरी पदमें तो उस एकात्मताका उन्होंने उद्घोष ही कर दिया है—

दनुज-बन-दहन गुन-गहन गोविंद नंदादि-आनंददाताऽविनासी ।
संभु सिव रुद्र संकर भीम घोर-तेजायतन क्रोधरासी ॥
अनंत भगवंत जगदंत अंतक-त्रास-समन श्रीरमन भुवनाभिरामं ।
भूधराधीस जगदीस ईसान विज्ञानघन ज्ञानकल्यान-धामं ॥
वामनाव्यक्त पावन परावर बिभो प्रगट परमातमा प्रकृति-स्वामी ।
चन्द्रसेखर सूलपानि हर अनघ अज अमित अविछिन्न बृषभेशगामी ॥
नीलजलदाभ-तनु स्याम बहु-काम-छबि राम राजीवलोचन कृपाला ।
कंबु-कर्पूर-वपु-धवल निर्मल मौलि जटा सुरतटिनि सित सुमनमाला ॥
वसन-किंजल्क-धर चक्र-सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति बिसाला ।
मार-करि-मत्त-मृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरन-संसारज्वाला ॥
कृष्ण करुनाभवन दवन-कालीय-खल विपुल कंसादि निर्बंसकारी ।
त्रिपुर-मद-भंगकर मत्तगज-चर्मधर अंधकोरग-ग्रसन-पन्नगारी ॥
ब्रह्म व्यापक अकल सकलपर परमहित ज्ञानगोतीत गुणवृत्तिहर्ता ।
सिंधुसुत-गर्व-गिरि-वज्र गौरीस भव दक्षमख-अखिल-विध्वंसकर्ता ॥
भक्तिप्रिय भक्तजन-कामधुक-धेनु हरि हरन दुर्घट-विकट-बिपति-भारी ।
सुखद नर्मद बरद बिरज अनवद्यऽखिल बिपिन-आनंद-बीथिन-बिहारी ॥
रुचिर हरिसंकरी-नाम मंत्रावली द्वंद्व-दुख-हरनि आनन्दखानी ।
बिष्णुसिवलोक-सोपान सम सर्वदा बदति तुलसीदास बिसद बानी ॥

विनयपत्रिका संसारका सबसे अद्भुत ग्रन्थ है क्योंकि उसमें एक मर्त्यलोकके प्राणीने साक्षात् भगवान्‌के पास कलिकालके उपद्रवों और अत्याचारोंके विरुद्ध आवेदनपत्र दिया है और वह आवेदनपत्र भगवान्‌के पास पहुँचा है, उसकी सुनवाई हुई है, सभी सभासदोंने उसकी स्तुति की है और वह स्वीकृत हुआ है। संसारके किसी कविने कभी भगवान्‌के पास इस प्रकारका कोई आवेदनपत्र काव्यके रूपमें नहीं भेजा।

विनयपत्रिका केवल आवेदनपत्र ही नहीं, वरन् मुक्तक छन्दोंमें उस पत्रिकाके जन्मसे लेकर उसके स्वीकृत होने-तकका पूरा विवरण भी है, इतिहास भी है और भक्तके दैन्य भाव, उसके उल्लास, उसकी विवशता, उसके कष्ट और उसके आत्म-निवेदनका इतना भव्य, सुन्दर, सूक्ष्म और विश्लेषणात्मक विवेचन है कि उसमें पांचाली, गौडी और वैदर्भीकी संस्कृत रीतियोंका भी पूर्ण संयोग ला सम्पन्न किया गया है।

विनय-पत्रिकाकी पद्धति

विनयपत्रिकाकी आचार-पद्धति ठीक वही है जो मुग़ल राजसभामें प्रचलित थी। वहाँ किसी महत्वपूर्ण कार्यके लिये आवेदनपत्र देनेसे पूर्व राजसभामें आनेजाने-वालोंको, मन्त्रियोंको, बादशाहके भाइयों और सगे-सम्बन्धियोंको, बादशाहके मुँहलगोंको और बेगम साहबाको साधकर तब आवेदन पत्र दिया जाता था। आवेदनपत्र दे-देनेपर दुहाई दी जाती थी। बादशाह अपने सब सभासदोंसे सम्मति लेते थे और फिर स्वीकृति देकर अपनी मुद्रा अंकित कर देते थे। आवेदनपत्रमें दो अनुच्छेद होते थे। पहलेमें बादशाहके पराक्रम और कीर्त्तिका वर्णन, दूसरेमें तेज, प्रताप, उदारता आदि गुणोंका वर्णन करके संक्षेपमें प्रार्थना कर दी जाती थी। इसी आचार-पद्धतिके अनुसार पहले गोस्वामीजीने गणेश, शंभु, कालिका, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नको साधकर माता सीताजीको प्रसन्न किया और तब अपनी विनय-पत्रिका देकर ४५ से ६१ तकके पदोंमें रामकी दुहाई दी है जिसे एक प्रकारका स्तोत्र ही समझना चाहिए। उसके पश्चात् अपने दैन्य, भगवान्से अपने अनेक सम्बन्ध आदिका विस्तृत निवेदन करके अपनी विवशता, भगवान्की शरणागत-वत्सलता और राममें अपनी एकान्त निष्ठाका परिचय देकर उन्होंने रामसे प्रार्थना की है—

विनयपत्रिका दीनकी, बापु ! आपु ही बाँचो ।
हिय हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूछिए पाँचो ॥

तदनन्तर उन्होंने हनुमान, शत्रुघ्न, भरत और लक्ष्मणसे निवेदन किया है कि—'समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीनकी।' अन्तिम पदमें वर्णन किया गया गया है कि हनुमान् और भरतकी रुचि देखकर लक्ष्मणने तुलसीकी एकान्त भक्तिका स्मरण किया तो सारी सभा समर्थन कर उठी और राम भी हँसकर बोल उठे—'सत्य है सुधि मैं हू लही है' और फिर 'परी रघुनाथ हाथ सही है'। विनयपत्रिकापर हस्ताक्षर हो गए। इस प्रकार यह दिव्य भक्ति-रससे ओत-प्रोत काव्य सम्पन्न हो जाता है।

विनयपत्रिकाके कुछ पद लीजिए

को जाँचिए संभु तजि आन ?
दीनदयालु भगत-आरतिहर सब प्रकार समरथ भगवान ।
कालकूट-ज्वर जरत सुरासुर, निज पन लागि कियो विषपान ॥
दारुन दनुज जगत-दुखदायक जार्यो त्रिपुर एक ही बान ।
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत संत स्रुति सकल पुरान ।
सोइ गति मरन-काल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान ॥
सेवत सुलभ उदार कलपतरु पारबती-पति परम सुजान ।
देहु कामरिपु रामचरन-रति तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥ १ ॥

दानी कहुँ संकर सम नाहीं ।
दीनदयालु दिबोई भावै जाचक सदा सोहाहीं ॥
मारि कै मार थप्यो जगमें जाको प्रथम रेख भट माहीं ।
ता ठाकुरको रीझि निवाजिबो कह्यो क्यों परत मो पाहीं ? ॥

जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि माँगत सकुचाहीं ।
बेदबिदित तेहि पद पुरारि-पुर कीट पतंग समाहीं ॥
ईस उदार उमापति परिहरि अनत जे जाचन जाहीं ।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने कबहुँ न पेट अघाहीं ॥ २ ॥

बावरो रावरो नाह, भवानी !
दानि बड़ो दिन देत दए बिनु बेद बड़ाई भानी ॥
निज घरकी बरबात बिलोकहु हौ तुम परम सयानी ।
सिवकी दई संपदा देखत श्री-सारदा सिहानी ॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुखकी नहीं निसानी ।
तिन रंकनको नाक सँवारत हौं आयो नकबानी ॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौंपिए औरहिं, भीख भली मैं जानी ॥
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंग्य-जुत सुनि बिधिकी बरबानी ।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन जगत-मातु मुसुकानी ॥ ३ ॥

भीषणाकार, भैरव भयंकर, भूत-प्रेत-प्रमथाधिपति, बिपतिहर्ता ।
मोहमूषक-मार्जार संसार-भय-हरण तारणतरण करण कर्ता ॥
अतुल बल बिपुल बिस्तार बिग्रह गौर अमल अति धवल धरणीधराभं ।
शिरसि संकुलित कल कूट पिंगल जट-पटल शतकोटिविद्युच्छटाभं ॥
भ्राज बिबुधापगा-आप पावन परम मौलिमालेव शोभाविचित्रं ।
ललित लल्लाटपर राज रजनीश कल, कलाधर नौमि हर धनद-मित्रं ॥
इंदु-पावक-भानु-नयन मर्दन-मयन ज्ञानगुण-अयन विज्ञानरूपं ।
रवन गिरिजा भवन भूधराधिप सदा श्रवणकुंडल बदन छबि अनूपं ॥
चर्म-असि-शूल-धर डमरू-शर-चाप-कर यान वृषभेष करुनानिधानं ।
जरत सुर असुर नरलोक शोकाकुलं मृदुलचित अजित कृत गरलपानं ॥

भस्मतनु भूषणं, व्याघ्रचर्माम्बरं, उरग-नरमौलि-उरमालधारी।
डाकिनी-शाकिनी-खेचरं-भूचरं यंत्रमंत्र-भंजन प्रबल कल्मषारी॥
काल अतिकाल कलिकाल व्यालाद खग त्रिपुरमर्दन भीम कर्म भारी।
सकल-लोकान्त-कल्पान्तशूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी॥
पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता।
पाहि भैरव-रूप रामरूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी बिधाता॥
यस्य गुणगण-गनति बिमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी।
शेष सर्वेश आसीन आनन्दवन प्रणत तुलसीदास त्रासहारी॥ ४॥

दुसह-दोष-दुख-दलनि करु देवि दाया।
विश्वमूलासि, जन-सानुकूलासि, शरशूलधारिणि महामूल माया॥
तडित-गर्भांग सर्वांग सुंदर लसत दिब्य पट भव्य भूषण बिराजै।
बालमृगमंजु-खंजन-बिलोचनि चन्द्रबदनि लखि कोटि रतिमार लाजै॥
रूप-सुख-सील-सीमासि भीमासि रामासि बामासि बर बुद्धि बानी।
छमुख-हेरंब-अम्बासि जगदम्बिके शंभुजायासि जय जय भवानी॥
चंड-भुज-दंड-खंडिनि बिहंडिनि महिषमद भंग करि अंग तोरे।
शुम्भ निःशुंभ कुम्भीश रण-केशरिणि क्रोधबारिधि बैरिवृंद बोरे॥
निगम-आगम-अगम गुर्वि तव गुणकथन उर्विधर करै सहस जीहा।
देहि मा मोहि प्रण प्रेम, यह नेम निज राम घनश्याम, तुलसी पपीहा॥ ५॥

जयति जय सुरसरि जगदखिल-पावनी।
बिष्णु-पदकंज मकरंद-इव अंबु बर बहसि दुख दहसि अघवृन्द बिद्रावनी॥
मिलित जलपात्र अज-युक्त-हरिचरनरज बिरज बरबारि त्रिपुरारिसिर-धामिनी।
जह्नु-कन्या धन्य पुन्यकृत सगर-सुत, भूधर-द्रोनि-बिद्दरनि बहुनामिनी॥
यक्ष गंधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहिं सुकृतपुंज जुतकामिनी।
स्वर्गसोपान विज्ञान-ज्ञानप्रदे! मोहमदमदन-पाथोज-हिम-जामिनी॥

हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीर वर मध्यधारा विशद विश्वअभिरामिनी ।
नील पर्यंक कृत शयन सर्पेश जनु सहसशीशावली स्रोत सुरस्वामिनी ॥
अमित-महिमा अमित-रूप भूपावली-मुकुटमनि-वंदिते लोकत्रयगामिनी ।
देहि रघुबीर-पद-प्रीति निर्भरमातु दासतुलसी त्रासहरणि भवभामिनी ॥६॥

सेइय सहित सनेह देहभरि कामधेनु कलि कासी ।

समनि सोक-संताप-पाप-रुज सकल सुमंगल-रासी ॥
मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुरबासी ।
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अबिनासी ॥
अंतरअयन अयन भल, थन फल, बच्छ वेद-बिस्वासी ।
गल-कंबल बरुना बिभाति जनु लूम लसति सरिता-सी ॥
दंडपानि भैरव बिषान मलरुचि खलगन भयदा-सी ।
लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा-सी ॥
मनिकर्निका-बदन-ससि सुंदर सुरसरि सुखसुखमा सी ।
स्वारथ-परमारथ-परिपूरन पंचकोस महिमा-सी ॥
बिस्वनाथ पालक कृपालु चित लालति नित गिरिजा-सी ।
सिद्ध सची सारद पूजहिं मन जोगवति रहति रमा-सी ॥
पंचाच्छरी प्रान मुद माधव गव्य सुपंचनदा-सी ।
ब्रह्म-जीव सम रामनाम-जुग-आखर बिस्व-बिकासी ॥
चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी ।
लहत परम पद पय पावन जेहि चहत प्रपंच-उदासी ॥
कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति-कला-सी ।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी ॥ ७ ॥

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु ।
कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु ॥

भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुबर-बिहार-थलु।
सैलसृंग भवभंग-हेतु लखु दलन कपट-पाखंड-दंभ-दलु॥
जहँ जनमे जग-जनक जगतपति बिधि हरि हर परिहरि प्रपंच छलु।
सकृत प्रवेस करत जेहि आश्रम बिगत बिषाद भए पारथ नलु॥
न करु बिलंब बिचारु चारु मति बरष पाछिले सम अगिलो पलु।
मंत्र सो जाइ जपहि जो जपि भे अजर अमर हर अँचइ हलाहलु॥
रामनाम-जप-जाग करत नित मज्जत पय पावन पीवत जलु।
करिहैं राम भावतो मनको सुख-साधन अनयास महा फलु॥
कामदमन कामना-कल्पतरु सो जुगजुग जागत जगतीतलु।
तुलसी ताहि बिसेष बूझिए एक प्रतीति प्रीति एकै बलु॥८॥

जयति अंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत-बिधु बिबुधकुल-कैरवानन्दकारी।
केसरी-चारु-लोचन-चकोरक-सुखद लोकगन-सोकसंतापहारी॥
जयति जय बालकपि-केलि-कौतुक-उदित-चंडकरमंडल-ग्रासकर्ता।
राहु-रवि-सक्र-पवि-गर्व-खर्वीकरन सरन भयहरन जय भुवनभर्ता॥
जयति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि रुद्र अवतार संसार-पाता।
बिप्र-सुर-सिद्ध-मुनि-आसिषाकर बपुष बिमल-गुन-बुद्धि-बारिधि बिधाता॥
जयति सुग्रीव-सिच्छादि-रच्छन-निपुन बालि-बलसालि-बध मुख्य हेतू।
जलधि लंघन-सिंह सिंहिका-मद-मथन रजनिचर-नगर-उत्पातकेतू॥
जयति भूनंदिनी-सोच-मोचन बिपिन-दलन घननादबस-बिगतसंका।
लूमलीला-अनल-ज्वालामालाकुलित होलिकाकरन-लंकेस-लंका॥
जयति सौमित्रि-रघुनंदनानंदकर, रिच्छ-कपि-कटक-संघटबिधाई।
बद्ध-बारिधि-सेतु अमरमंगलहेतु भानुकुलकेतु-रनबिजयदाई॥
जयति जय बज्रतनु दसन नख मुख बिकट चंड-भुजदंड तरु-सैल-पानी।
समर-तैलिकयंत्र तिल-तमीचर-निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी॥

जयति दसकंठ-घटकरन-बारिदनाद-कदन-कारन कालनेमि-हन्ता ।
अघट-घटना-सुघट सुघट-बिघटन-बिकट भूमि-पाताल-जल-गगन-गंता ॥
जयति बिस्वविख्यात बानैत बिरुदावली बिदुष बरनत बेद बिमल बानी ।
दास तुलसी-त्रास-समन सीतारमन-संग सोभित राम राजधानी ॥ ९ ॥

जयति मंगलागार संसारभारापहार बानराकार बिग्रह-पुरारी ।
राम-रोषानल-ज्वाल-मालामिस-ध्वांतचर-सलभ-संहारकारी ॥
जयति मरुदंजनामोद-मंदिर नतग्रीव-सुग्रीव-दुःखैक-बंधो ।
यातुधानोद्धत क्रुद्ध-कालाग्निहर सिद्ध-सुर-सज्जनानन्दसिन्धो ॥
जयति रुद्राग्रणी विश्वविद्याग्रणी विश्वविख्यात भट चक्रवर्ती ।
सामगाताग्रणी कामजेताग्रणी रामहित रामभक्तानुवर्ती ॥
जयति संग्राम-जय रामसंदेसहर कोसला-कुसल-कल्यान-भाखी ।
रामविरहार्कसंतप्त भरतादि-नरनारि-सीतलकरन-कल्पसाखी ॥
जयति सिंहासनासीन सीतारमन निरखि निर्भर-हरष-नृत्यकारी ।
रामसम्राज-सोभा-सहित सर्वदा तुलसिमानस-रामपुर-बिहारी ॥ १० ॥
जयति लक्ष्मणानन्त भगवंत भूधर भुजगराज भुवनेश भूभारहारी ।
प्रलयपावक-महाज्वाल-माला-वमन शमन-संताप लीलावतारी ॥
जयति दाशरथि समर-समरथ सुमित्रासुवन शत्रुसुवन-राम-भरत-बन्धो ।
चारु चम्पकबरन बसनभूषन-धरन दिव्यतर भव्य लावण्यसिन्धो ॥
जयति गाधेय-गौतम-जनक-सुखजनक बिस्वकंटक-कुटिल-कोटिहन्ता ।
बचन-चय-चातुरी-परसुधर-गर्वहर सर्वदा रामभद्रानुगन्ता ॥
जयति सीतेस-सेवा-सरस विषयरस-निरस निरुपाधि धुरधर्मधारी ।
विपुल-बलमूल शार्दूलविक्रम जलदनादमर्दन महाबीर भारी ॥
जयति संग्रामसागर-भयंकर-तरण-रामहितकरण-बरबाहु-सेतू ।
उर्मिलारमण कल्याणमंगलभवन दासतुलसी-दोष-दवन-हेतू ॥११॥

जयति भूमिजारमण-पदकंज-मकरंद-रस-रसिक-मधुकर-भरत भूरिभागी।
भुवन-भूषण-भानुवंश-भूषण भूमिपाल-मणि-रामचन्द्रानुरागी॥
जयति बिबुधेश-धनदादिदुर्लभ महाराज-सम्राज-सुखप्रद-बिरागी।
खड्गधाराव्रती-प्रथमरेखा प्रकट शुद्ध-मति-युवति-व्रत प्रेम-पागी॥
जयति निरुपाधि भक्ति-भावयंत्रित-हृदय बंधुहित-चित्रकूटाद्रिचारी।
पादुका-नृपसचिव पुहुमिपालक परम धीर गंभीर बर बीर भारी॥
जयति संजीवनी-समय-संकट हनूमान धनु बान महिमा बखानी।
बाहुबल-बिपुल परमिति पराक्रम अतुल गूढगति जानकी-जानि जानी॥
जयति रन-अजिर-गन्धर्व-गन-गर्वहर फेरि किए राम-गुनगाथ-गाता।
मांडवी-चित्तचातक-नवाम्बुदबरन सरन-तुलसीदास-अभयदाता॥१२॥

जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन सत्रु-तम-तुहिनहर-किरनकेतू।
देव! महिदेव-महि-धेनु-सेवक-सुजन-सिद्धि-मुनि सकल-कल्यान-हेतू॥
जयति सर्वाङ्गसुंदर सुमित्रासुवन भुवनबिख्यात भरतानुगामी।
वर्म-चर्मासि-धनु-बाण-तूणीरधर सत्रुसंकट-समन यत्प्रनामी॥
जयति लवणाम्बुनिधि-कुम्भसम्भव महादनुज-दुर्जन-दवन दुरितहारी।
लक्ष्मणानुज भरत-राम-सीता-चरनरेनु-भूषित-भाल तिलकधारी॥
जयति श्रुतिकीर्ति-वल्लभ सुदुर्लभ सुलभ नमत नर्मद-भक्तिमुक्तिदाता।
दास-तुलसी चरन सरन सीदत, विभो! पाहि! दीनार्त्त-संताप-हाता॥१३॥

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ॥
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥

बूझि हैं 'सो है कौन' ! कहिबी नाम दसा जनाइ ।
सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ॥
जानकी जगजननि जनकी किए बचन सहाइ ।
तरै तुलसीदास भव तव-नाथ-गुनगन गाइ ॥ १४ ॥

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण-भव-भय-दारुणं ।
नवकंज-लोचन कंजमुख करकंज पद-कंजारुणं ॥
कंदर्प-अगणित-अमित-छबि नवनील-नीरज-सुन्दरं ।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनकसुता-वरं ॥
भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकंदनं ।
रघुनंद आनँदकंद कोशलचन्द दसरथ-नंदनं ॥
सिर मुकुट, कुंडल तिलक चारु, उदार अंग बिभूषणं ।
आजानुभुज सरचाप-धर संग्रामजित-खरदूषनं ॥
इति बदत तुलसीदास संकर-सेष-मुनि-मनरंजनं ।
मम हृदय-कंज निवास करु कामादि खल-दल-गंजनं ॥ १५ ।

संत संतापहर बिश्वविश्रामकर राम कामारि अभिरामकारी ।
सुद्धबोधायतन सच्चिदानंदघन सज्जनानंदबर्द्धन खरारी ॥
सील-समता-भवन विषमता-मति-समन राम रामारमन रावनारी ।
खड्गकर चर्मवर-वर्मधर रुचिर कटितूण सर-सक्ति-सारंगधारी ॥
सत्यसंधान निर्वाणप्रद सर्वहित सर्वगुन-ज्ञान-विज्ञानसाली ।
सघन-तम-घोर-संसार-शर्वरी-नामदिवसेस-खर-किरनमाली ॥
तपन तीछन तरुन तीव्रतापघ्न तपरूप तनुभूप तमपर तपस्वी ।
मान-मद-मदन-मत्सर-मनोरथ-मथन मोह-अंभोधि-मंदर मनस्वी ॥
बेदबिख्यात बरदेस बामन बिरज बिमन बागीस बैकुंठस्वामी ।
काम-क्रोधादि-मर्दन विवर्धन-क्षमा शांतविग्रह विहगराजगामी ॥

परम पावन पापपुंज-मुंजाटवी-अनल-इव-निमिष-निर्मूलकर्ता ।
भुवन-भूषन दूषनारि भुवनेस भूनाथ श्रुतिमाथ जय भुवन-भर्ता ॥
अमल अविचल अकल सकल संतप्त कलि विकलता भंजनानन्दरासी।
उरगनायक-सयन तरुन-पंकज-नयन क्षीरसागर अयन सर्ववासी ॥
सिद्ध-कवि-कोविदानंददायक पदद्वंद मंदात्ममनुजैर्दुरापं ।
यत्र संभूत अति पूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरित पापं ॥
नित्य निर्मुक्त संयुक्त-गुन निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता ।
विश्व-पोषन-भरन विश्वकारन-करन सरन-तुलसीदास-त्रासहर्ता ॥१६॥
सकलसुखकन्द आनन्दबन-पुन्यकृत बिन्दुमाधव द्वन्द्व-बिपतिहारी ।
यस्यांघ्रिपाथोज अज संभु सनकादि सुक सेस मुनिवृंद अलि निलयकारी ॥
अमल मरकत-स्याम काम-सतकोटि-छबि पीतपट तड़ित इव जलदनीलम् ।
अरुणशतपत्र-लोचन बिलोकनि चारु प्रणतजन सुखद-करुणार्द्रशीलम् ॥
काल-गजराज-मृगराज दनुजेश-बन-दहन-पावक मोह-निसि-दिनेशम् ।
चारि भुज चक्र कौमोदकी जलज दर सरसिजोपरि यथा राजहंसम् ॥
मुकुट कुण्डल तिलक अलक अलिव्रात इव भृकुटि-द्विज-अधरबर-चारुनासा ।
रुचिर सुकपोल दर ग्रीव सुखसींव हरि इन्दुकर-कुन्दमिव मधुरहासा ॥
उरसि बनमाल सुबिसाल नव मञ्जरी भ्राज श्रीबत्स-लाञ्छन उदारम् ।
परम ब्रह्मण्य अति धन्य गतमन्यु अज अमित बल बिपुल महिमा अपारम् ॥
हार केयूर कर कनक-कङ्कण रतनजटित मणि मेखला कटिप्रदेशम् ।
युगल पद नूपुरा मुखर कलहंसवत सुभग सर्वांग सौन्दर्यवेषम् ॥
सकल-सौभाग्य-संयुक्त त्रैलोक्यश्री दक्षदिशि रुचिर वारीशकन्या ।
बसत बिबुधापगा निकट तट सदन बर नयन निरखन्ति नर तेऽतिधन्या ॥
अखिल-मङ्गल-भवन निबिड़-संसय-समन दमन व्रजिनाटवी कष्टहर्ता ।
विश्वधृत विश्वहित अजित गोतीत शिव विश्व-पालन-हरण विश्वकर्ता ॥

ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य-निधि सिद्धि अणिमादि दे भूरि दानम् ।
ग्रसित-भवब्याल अतित्रास तुलसीदास त्राहि श्रीरामउरगारियानम् ॥१७॥

तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंज-हारी ॥
नाथ तू अनाथको अनाथ कौन मोसों ।
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसों ॥
ब्रह्म तू हौं जीव तुही ठाकुर हौं चेरो ।
तात मात गुरु सखा तू सब बिधि हितु मेरो ॥
तोहि मोंहि नाते अनेक मानिए जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन-सरन पावै ॥ १८ ॥

और काहि माँगिए, को माँगिबो निवारै ?
अभिमतदातार कौन दुखदरिद्र दारै ?
धरम-धाम राम काम-कोटि-रूप रूरो ।
साहिब सब बिधि सुजान दान-खड्ग सूरो ॥
सुसमय दिन द्वै निसान सबके द्वार बाजै ।
कुसमय दसरथके दानि ! तैं गरीब निवाजै ॥
सेवा बिनु गुन-बिहीन दीनता सुनाए ।
जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाए ॥
तुलसिदास जाचक-रुचि जानि दान दीजै ।
रामचन्द्र चन्द्र तू चकोर मोहि कीजै ॥ १९ ॥

ऐसी मूढ़ता या मनकी ।
परिहरि रामभगति-सुरसरिता आस करत ओसकनकी ॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घनकी ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि पुनि हानि होति लोचनकी ॥

ज्यों गच काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तनकी ।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आननकी ॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मनकी ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पनकी ॥ २० ॥

काहे तें हरि मोंहि बिसारो ।
जानत निज महिमा मेरे अघ तदपि न नाथ सँभारो ॥
पतितपुनीत दीनहित असरन-सरन कहत श्रुति चारो ।
हौं नहिं अधम सभीत दीन किधौं बेदन मृषा पुकारो ॥
खग-गनिका-गज-ब्याध-पाँति जहँ तहँ हौं हूँ बैठारो ।
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो ॥
जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेसते न्यारो ।
तौ हरि रोस भरोस दोस गुन तेहिं भजते तजि गारो ॥
मसक बिरञ्चि, बिरञ्चि मसक सम करहु प्रभाव तुम्हारो ।
यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु नाथ तहाँ कछु चारो ॥
नाहिंन नरक परत मोकहँ डर जद्यपि हौं अति हारो ।
यह बड़ि त्रास दास-तुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो ॥ २१ ॥

सुनि सीतापति सील सुभाउ ।
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ ॥
सिसुपनतें पितु मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ ।
कहत राम बिधुबदन रिसौहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ ॥
खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ ॥
सिला साप-संताप-बिगत भइ परसत पावन पाउ ।

दई सुगति सो न हेरि हरष हिय चरन छुए पछिताउ ॥
भवधनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गए ताउ ।
छमि अपराध छमाइ पाँइ परि इतौ न अनत समाउ ॥
कह्यो राज बन दियो नारिबस गरि गलानि गयो राउ ।
ता कुमातुको मन जोगवत ज्यों निज तनु मरम कुघाउ ॥
कपि सेवाबस भए कनौड़े कह्यौ पवनसुत आउ ।
देबे को न कछू रिनियाँ हौं धनिक तु पत्र लिखाउ ॥
अपनाए सुग्रीव बिभीषन तिन न तज्यो छल छाउ ।
भरतसभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ ॥
निज करुना करतूति भगतपर चपत चलत चरचाउ ।
सकृत प्रनाम प्रनत-जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ ॥
समुझि समुझि गुन ग्राम रामके उर अनुराग बढ़ाउ ।
तुलसिदास अनयास रामपद पइहै प्रेम-पसाउ ॥ २२ ॥

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।
काको नाम पतितपावन जग, केहि अति दीन पियारे ?
कौनै देव बराय बिरद-हित हठि हठि अधम उधारे ?
खग मृग व्याध पखान बिटप जड़ जवन कवन सुर तारे ?
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया-बिबस बिचारे ।
तिनके हाथ दासतुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ? ॥ २३ ॥

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
साधन-धाम बिबुध-दुर्लभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों ॥
कोटिहुँ मुख कहि जायँ न प्रभुके एक एक उपकार ।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं दीजै परम उदार ॥

बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
तातें सहिय बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक॥
कृपा-डोरि, बंसी-पद-अंकुस परम प्रेम-मृदु-चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो॥
हैं स्रुति-बिदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरै॥ २४॥

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
रामकृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं।
पायो नाम चारु चिंतामनि उर-करतें न खसैहौं॥
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं।
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं॥
मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद कमल बसैहौं॥ २५॥

माधव! अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया॥
सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव-बिपति सतावै॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजल-रूप विषय कारन निसि-बासर धावै॥
जेहिके भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै।
सपने परबस पर्‌यो जागि देखत केहि जाइ निहोरै?
ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य-झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं॥ २६॥

हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी?
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी॥

अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं।
बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस पर्‍यो कीरकी नाईं॥
सपने ब्याधि बिबिध बाधा भइ मृत्यु उपस्थित आई।
बैद अनेक उपाय करहिं जागे बिनु पीर न जाई॥
स्रुति-गुरु-साधु-सुमृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति बिपत सकै को टारी?
बहु उपाय संसार-तरन कहँ बिमल गिरा स्रुति गावै।
तुलसिदास 'मैं मोर' गए बिनु जिय सुख कबहुँ न पावै॥ २७॥

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्रीरघुबीर धीर हितकारी॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा॥
तम मोह लोभ अहँकारा। मद क्रोध बोध-रिपु मारा॥
अति करहिं उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहि जानि अनाथा॥
मैं एक, अमित बटमारा। कोउ सुनै न मोर पुकारा॥
भागेहु नहिं नाथ उबारा। रघुनायक करहु सँभारा॥
कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तस्कर तव धामा॥
चिंता यह मोहि अपारा। अपजस नहिं होय तुम्हारा॥ २८॥

मैं हरि पतितपावन सुने।
मैं पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने॥
ब्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने?
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने।
दास-तुलसी सरन आयो राखिए अपने॥ २९॥

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी॥
जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो॥ ३०॥

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम सनेह-सगाई॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसेहुँ पितुतें अधिक गीधपर ममता गुरु गरुआई॥
तिय-बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रनपरयो बन्धु बिभीषन ही को सोच हृदय अधिकाई॥
घर गुरुगृह प्रियसदन सासुरे भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरीके फलनिकी रुचि माधुरी न पाई॥
सहस सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई।
केवट-मीत कहे सुख मानत बानर बन्धु बड़ाई॥
प्रेम कनौड़ो रामसों प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई।
तेरो रिनी हौं कह्यो कपीससों ऐसी मानिहि जो सेवकाई॥
तुलसी राम सनेह सील लखि जो न भगति उर आई।
तौ तेहि जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गँवाई॥ ३१॥

रघुबर! रावरि यहै बड़ाई।
निदरि गनी आदर गरीबपर करत कृपा अधिकाई॥

थके देव साधन करि सब सपनेहुँ नहिं देत दिखाई ।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई ॥
मिलि मुनिवृन्द फिरत दंडकबन सो चरचौ न चलाई ।
बारहिं बार गीध सबरीकी बरनत प्रीति सुहाई ॥
स्वान कहेतें कियो पुर बाहिर जती गयन्द चढ़ाई ।
तिय-निंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई ॥
यह दरबार दीनको आदर रीति सदा चलि आई ।
दीनदयालु दीन तुलसीकी काहु न सुरति कराई ॥ ३२ ॥

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बन्धु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि भए मुदमंगलकारी ॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम-पद एतौ मतो हमारो ॥ ३३ ॥

कौन जतन बिनती करिए ।
निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिए ॥
जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन सो हठि परिहरिए ।
तातें बिपति-जाल निसि दिन दुख तेहि पथ अनुसरिए ॥
जानत हूँ मन बचन कर्म पर-हित कीन्हें तरिए ।
सो बिपरीत देखि परसुख बिनु कारन ही जरिए ॥
स्रुति पुरान सबको मत यह मत संग सुदृढ़ धरिए ।
निज अभिमान मोह ईर्षा-बस तिनहि न आदरिए ॥

संतत सोइ प्रिय मोहिं सदा जातें भव-निधि परिए।
कहो अब नाथ! कौन बल तें संसार-सोक हरिए॥
जब कब निज करुना सुभाव तें द्रवहु तो निस्तरिए।
तुलसिदास बिस्वास आन नहिं कत पचि पचि मरिए॥ ३४॥

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु हीते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते।
हम-हम करि धन-धाम सँवारे अंत चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सबही ते।
अंतहुँ तोहिं तजेंगे पामर! तू न तजै अबहीं ते॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ विषय-भोग बहु घीते॥ ३५॥

मारुति मन रुचि भरतकी लखि लखन कही है।
कलिकालहुँ नाथ नामसों प्रतीति प्रीति एक किंकरकी निबही है॥
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाजकी देखत गरीबको साहब बाँह गही है॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैंहूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथकी, परी रघुनाथ हाथ सही है॥३६॥

(ग) गीतावली

गीतावली कोई ग्रन्थमयी रचना नहीं है। इसमें गोस्वामीजीने स्फुट पदोंमें रामके बालरूपका वैसा ही वर्णन किया है जैसा सूरने कृष्णका किया है। इन फुटकर पदोंमें उन्होंने रामकी बाल-माधुरी और आगे चलकर राजा रामकी रूप-माधुरीका ही गान किया है। अनन्त सौन्दर्यके निधान रामका रूप सदा ही मोद प्रदान करनेवाला था इसलिये

गोस्वामीजीने रामकी प्रौढावस्थामें भी उस लावण्यमय सौन्दर्यका दर्शन किया और इसीलिये जहाँ कृष्णभक्त कवि बालकृष्णसे आगे नहीं बढ़े वहाँ गोस्वामीजीने राजा रामका भी वर्णन उसी शैलीमें किया जिसमें कृष्णका बालचरित गाया गया था। इसीसे हिंडोल, रामकी दिनचर्या, उनके आनन्दमय जीवन, रामराज्यके सुख और ऐश्वर्यका वर्णन उत्तर-काण्डके अनेक पदोंमें विस्तारसे किया गया है।

प्रबन्ध-काव्यके रूपमें रामचरित-मानसकी रचना कर चुकनेके पश्चात् गोस्वामीजीके मनमें सम्भवतः यह विचार उत्पन्न हुआ होगा कि राम-कथाका वर्णन प्रत्येक रुचिवाले व्यक्तिके लिये भी कर दिया जाय। वृन्दावनकी यात्राके अवसरपर भक्तवर सूरदास तथा अन्य कृष्ण-भक्त कवियों-द्वारा विरचित कृष्णलीला-सम्बन्धी ललित पद सुनकर उनके मनमें भी यह बात उठ खड़ी हुई होगी कि ऐसे ललित पदोंमें रामका भी गुणगान किया जाय। फलतः, गोस्वामीजीने समय-समयपर रामचरितकी मुख्य-मुख्य घटनाओंपर जो ललित पदोंकी रचनाएँ कीं और जिनका यथा-समय गान करते रहे वे ही आगे चलकर गीतावलीके रूपमें सम्पादित कर ली गईं।

गीतावलीपर सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियोंके पदोंकी छाप स्पष्ट है। गोस्वामीजीने इसमें वही शैली, वैसी ही भावधारा, वही ललित, माधुर्यपूर्ण भाषा और राग-रागिनियोंका वही ढंग अपनाया। इन पदोंकी ऐसी रसपूर्ण शब्दयोजना देखकर प्रतीत होता है कि रामके अनन्य भक्त गोस्वामीजी स्वयं इन पदोंको गाते समय पूर्णतः तन्मय हो जाया करते थे। सूरके कुछ पद गीतावलीमें ज्योंके त्यों मिलते हैं यहाँतक कि उनमें केवल 'श्याम'के बदले 'राम' भर बदला मिलता है। यह या तो भक्तोंकी कृपाका परिणाम हो या संभवतः तुलसीने ही सूरके

पदोंपर रीझकर श्यामके बदले राम करके उन्हें अपने इष्टके गुणगानका सरस माध्यम बना लिया हो।

मानसकी रचनाका उद्देश्य गीतावलीकी रचनाके उद्देश्यसे कुछ भिन्न था। यही कारण है कि सीता-परित्यागकी जो कथा गोस्वामीजीने मानसमें छोड़ दी थी वह कथा भी गीतावलीमें आ गई है। कथा प्रसिद्ध है कि दशरथके अकाल-निधनपर उनकी शेष आयु रामचन्द्रने ही भोगी इसलिये अपने भागकी अपनी आयुभर तो उन्होंने सीताको साथ रक्खा किन्तु जब दशरथकी शेष आयु भोगनेका समय आया तब उन्होंने सीताका त्याग कर देना ही उचित समझा। गीतावलीमें आए हुए इस पदसे भी इसी बातकी ध्वनि मिलती है—

भोग पुनि पितु आयुको, सोइ किए बने बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी, नहिं और अनघ उपाउ॥

गोस्वामीजीने इसमें प्रायः समस्त रामचरितपर पद रचे हैं। इसीलिये जब इनका संग्रह हुआ तब कथाकी दृष्टिसे काण्डोंके अनुसार इनका विभाजन कर लिया गया। उसी समय सम्भव है बीचकी कथा-शृङ्खला जोड़नेके लिये अवशिष्ट पद भी रच लिए गए हों। यद्यपि ग्रन्थकी पद्धतिपर इन पदोंकी रचना नहीं हुई किन्तु कथा इसमें पूरी है।

गीतावलीके सभी पद गेय हैं। इसे राग-रागिनियोंमें रचनेका उद्देश्य यही रहा कि साहित्य-रसिकोंके अतिरिक्त संगीत-प्रेमियोंको भी इन पदोंके माध्यमसे राम-चरितके सुधा-रसका पान करा दिया जाय।

इसमें कथाका आरम्भ रामजन्मसे ही हुआ है—

आज सुदिन सुभ घरी सुहाई।
रूप-सील–गुन-धाम राम नृपभवन प्रगट भए आई॥

मानसमें बाललीलाके नामपर जहाँ कुछ भी नहीं है वहाँ गीतावलीमें इस सम्बन्धके अनेक पद हैं। इसके अतिरिक्त जनकपुरीके प्रसङ्गमें राम और सीताके सौन्दर्य-वर्णनसे सम्बन्ध रखनेवाले भी बहुतसे पद आए हैं।

वन-पथपर जाते हुए राम, लक्ष्मण और सीताके सौन्दर्यका वर्णन देखिए कैसा मनोहारी है—

मनोहरताके मानो ऐन।
स्यामल गौर किसोर पथिक दोउ, सुमुखि निरखु भरि नैन॥
बीच बधू बिधु-बदनि बिराजति, उपमा कहुँ कोउ है न।
मानहु रति ऋतु-नाथ सहित, मुनि-बेष बनाए मैन॥

मार्गमें पड़नेवाले ग्रामोंके निवासियोंकी भावनाओंका भी अवलोकन कीजिए—

जेहि जेहि मग सिय-राम गए
तहँ तहँ नर-नारि बिनु छर छरिगे॥
निरखि निकाई अधिकाई बिथकित भए
बच, बिय-नैन-सर सोभा-सुधा भरिगे॥

चित्रकूटका वर्णन तो कविने बहुत ही भावभरे शब्दोंमें किया है। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि श्रीरामका दर्शन उन्हें चित्रकूटमें ही हुआ था अतएव उसके प्रति उनके मनमें सहज आकर्षण था। अयोध्याकाण्डमें कौशल्याके पुत्र-प्रेमका और भरतके चरित्रका भी अत्यन्त उदात्त तथा मनोहर रूपमें चित्रण किया गया है। यद्यपि इससे आगेकी कथामें केवल कथा-मात्रका निर्वाह हुआ है किन्तु उत्तरकाण्डमें कविका कौशल देखते ही बनता है।

इस समूचे ग्रन्थसे जैसे सुधाधारा प्रवाहित होती है। इसका रचना-कौशल, इसकी अत्यन्त मुग्धकारिणी वर्णन-शैली, तुलसीकी

काव्य और संगीत-प्रतिभाका समन्वय विनयपत्रिकाकी भाँति इसमें भी मुखर हो उठा है। इसकी रचनामें शुद्ध, प्रौढ और साहित्यिक ब्रजभाषाका प्रयोग हुआ है। कृष्णचरितका गान करनेवाले ब्रजभूमिके निवासी कवियोंने भी ऐसी सुष्ठु भाषाका प्रयोग करनेमें वह सफलता नहीं प्राप्त की जो गोस्वामीजीने प्राप्त कर ली है।

गीतावलीके कुछ सुन्दर सरस पदोंका रस लीजिए—

सोइए लाल लाडिले रघुराई।
मगन मोद लिए गोद सुमित्रा बार-बार बलि जाई॥
हँसे हँसत, अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई।
तुम सबके जीवनके जीवन सकल सुमंगलदाई॥
मूल मूल सुरबीथि-बेलि तम-तोम-सुदल अधिकाई।
नखत-सुमन नभ-बिटप बौंड़ि मनो छपा छिटकि छबि छाई॥
हौ जँभात अलसात, तात! तेरी बानि जानि मैं पाई।
गाइ-गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई॥
बछरु छबीलो छगन-मगन मेरे कहति मल्हाइ-मल्हाई।
सानुज हिय हुलसति तुलसीके प्रभुकी ललित लरिकाई॥ १॥

पालने रघुपतिहिं झुलावै।
लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै॥
केकिकंठ दुति स्यामबरन बपु बाल-बिभूषन बिरचि बनाए।
अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए॥
सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लव लाए।
मनहु सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससिसों सचु पाए॥
उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि-पुनि पानि पसारत।
मनहु उभय अंभोज अरुन सों बिधु भय बिनय करति अति आरत॥

तुलसिदास बहु-बास-बिबस अलि गुंजत सुछबि न जाति बखानी।
मनहु सकल स्रुति ऋचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बर बानी॥२॥

आँगन फिरति घुटुरुअनि धाए।
नील-जलज-तनु-स्याम राम-सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाए॥
बंधुक-सुमन-अरुन पद-पंकज अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आए।
नूपुर जनु मुनिवर-कलहंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसाए॥
कटि मेखल, बर हार, ग्रीव दर, रुचिर बाँह भूषन पहिराए।
उर श्रीबत्स मनोहर हरिनख हेम मध्य मनिगन बहु लाए॥
सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका स्रवन कपोल मोहि अति भाए।
भ्रू सुंदर करुनारस-पूरन लोचन मनहुँ जुगल जलजाए॥
भाल बिसाल ललित लटकन वर वालदसाके चिवुक सोहाए।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तमके गन आए॥
उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढ़ाए।
नील जलदपर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छपाए॥
अंग-अंगपर मार-निकर मिलि छबि-समूह लै लै जनु छाए।
तुलसिदास रघुनाथ-रूप-गुन तौ कहौं जौ बिधि होंहि बनाए॥३॥

रघुबर-बाल-छबि कहौं बरनि।
सकल सुखकी सींव, कोटि-मनोज-सोभा-हरनि॥
बसी मानहुँ चरन-कमलनि अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रुनझुन करनि॥
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरति भूषन भरनि।
जनु सुभग सिंगार-सिसु-तरु फर्‍यो है अदभुत फरनि॥
भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि।
रहे कुहरनि, सलिल नभ उपमा अपर दुरि डरनि॥

लसत कर प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुअनि चरनि ।
जलज-संपुट सुछबि भरि-भरि धरति जनु उर धरनि ॥
पुन्यफल अनुभवति सुतहिं बिलोकि दसरथ-घरनि ।
बसति तुलसी-हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि ॥ ४ ॥

मुनिके संग बिराजत बीर ।
काकपच्छ धर, कर कोदंड सर, सुभग पीतपट कटि तूनीर ॥
बदन इन्दु, अम्भोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा-सदन सरीर ।
पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छबि उर न समाति प्रेमकी भीर॥
खेलत चलत करत मग कौतुक बिलँबत सरित-सरोवर-तीर ।
तोरत लता सुमन सरसीरुह पियत सुधा सम सीतल नीर ॥
बैठत बिमल सिलनि बिटपनि तर, पुनि-पुनि बरनत छाँह समीर ।
देखत नटत केकि, कल गावत मधुप मराल कोकिला कीर ॥
नयननिको फल लेत निरखि खग मृग सुरभी ब्रजबधू अहीर ।
तुलसी प्रभुहि देत सब आसन निज-निज मन-मृदु-कमल-कुटीर ॥ ५ ॥

बूझत जनक, 'नाथ ढोठा दोउ काके हैं' ?
तरुन तमाल-चारु-चंपक-बरन-तनु, कौन बड़े भागीके सुकृत परिपाके हैं ॥
सुखके निधान पाए, हियके पिधान लाए, ठगके-से लाड़ू खाए प्रेम-मधु छाके हैं ॥
स्वारथ-रहित परमारथी कहावत हैं, भे सनेह-बिवस बिदेहता बिबाके हैं ॥
सील-सुधाके आगार सुखमाके पारावार, पावत न पैरि पार पैरि पैरि थाके हैं ॥
लोचन ललकि लागे, मन अति अनुरागे, एक रसरूप चित सकल सभाके हैं ॥
जिय जिय जोरत सगाई राम लखनसों, आपने आपने, भाय जैसे भाय जाके हैं॥
प्रीतिको, प्रतीतिको, सुमिरिबेको, सेइबेको, सरनको समरथ तुलसिहु ताके हैं ॥६॥

दूलह राम, सीय दुलही री ।
घन-दामिनि-बर-बरन, हरन-मन सुंदरता नखसिख निबही, री ॥

ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित सखि-अवली लखि ठगि सी रही, री ।
जीवन-जनम-लाहु लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री ॥
सुषमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमिय-मय कियो है दही, री ।
मथि माखन सिय राम सँवारे सकल-भुवन-छबि मनहु मही, री ॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जात कही, री ।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो सिला लवनि रति-काम लही, री ॥७॥

कहौ सो बिपिन है धौं केतिक दूरि ।
जहाँ गवन कियो कुँवर कोसलपति बूझति सिय पिय-पतिहि बिसूरि ॥
प्राननाथ परदेस पयादेहि चले सुख सकल तजे तृन तूरि ।
करौं बयारि बिलंबिय बिटपतर झारौं हौं चरन-सरोरुह-धूरि ॥
तुलसिदास प्रभु प्रियाबचन सुनि नीरज-नयन नीर आए पूरि ।
कानन कहाँ अबहिं, सुनु सुंदरि ! रघुपति फिरि चितए हित भूरि ॥८॥

सब दिन चित्रकूट नीको लागत ।
बरषा-ऋतु प्रवेष बिसेस गिरि देखत मन अनुरागत ॥
चहुँ दिसि बन संपन्न, बिहँग मृग बोलत सोभा पावत ।
जनु सु-नरेस देस पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि ।
मनहु आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि-भृंगनि ॥
सिखर परसि घन घटहिं मिलति बग पाँति सो छबि कबि बरनी ।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी ॥
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ बन-प्रतिबिंब तरंग ।
मानहु जग-रचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग-अंग ॥
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे ।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानौ राम भगतिके पाछे ॥ ९ ॥

जननी निरखति बान-धनुहियाँ।
बार-बार उर-नैननि लावति प्रभुजुकी ललित पनहियाँ॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सबारे।
'उठहु तात! बलि मातु बदनपर अनुज सखा सब द्वारे'॥
कबहुँ कहति यों 'बड़ी बार भइ जाहु भूप पहँ, भैया।
बंधु बोलि जेइँय जो भावै गई निछावरि मैया'॥
कबहुँ समुझि बन-गवन रामको रहि चकि चित्र-लिखी-सी।
तुलसिदास वह समय कहे तें लागति प्रीति सिखी-सी॥१०॥

जो पै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं।
तौ जननी! जगमें या मुखकी कहाँ कालिमा ध्वैहौं?
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि? कौन मानिहै साँची?
महिमा-मृगी कौन सुकृतीकी खल-बच-बिसिषन बाँची?
गहि न जात रसना काहूकी कहौ जाहि जोइ सूझै।
दीनबंधु कारुण्य-सिंधु बिनु कौन हियेकी बूझै?
तुलसी राम-बियोग-बिषम-बिष-बिकल नारिनर भारी।
भरत-सनेह-सुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी॥११॥

राघौ! एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ॥
जे पय प्याइ पोखि कर-पंकज बार-बार चुचुकारे।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले! ते अब निपट बिसारे॥
भरत सौगुनी सार कहत हैं अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम-मारे॥
सुनहु पथिक! जो राम मिलहिं बन कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी मोहिं और सबहिनतें इन्हको बड़ो अँदेसो॥१२॥

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहु अरघजल दीन्हों ॥
सुनहु लषन ! खगपतिहिं मिले बन मैं पितु-मरन न जान्यौ ।
सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता बड़ो पछु आजुहिं भान्यौ ॥
बहु विधि राम कह्यो तनु राखन परम धीर नहिं डोल्यौ ।
रोकि प्रेम अवलोकि बदनबिधु बचन मनोहर बोल्यौ ॥
तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखा लैहौं ।
जाको नाम मरत मुनि दुर्लभ तुमहिं कहाँ पुनि पैहौं ॥१३॥

हौं रघुबंसमनिको दूत ।
मातु मानु प्रतीति जानकि ! जानि मारुतपूत ॥
मैं सुनी बातैं असैली जे कहीं निसिचर नीच ।
क्यों न मारैं गाल बैठो काल-डाढ़नि बीच ॥
निदरि अरि रघुबीर-बल लै जाउँ जौ हठि आज ।
डरौं आयसु-भंगतें, अरु बिगरिहै सुरकाज ॥
बाँधि बारिधि, साधि रिपु दिन चारिमें दोउ बीर ।
मिलहिंगे कपि-भालु-दल सँग जननि उर धरु धीर ॥
चित्रकूट कथा कुसल कहि सीस नायो कीस ।
सुहृद सेवक नाथको लखि दई अचल असीस ॥
भए सीतल स्रवन तन मन सुने बचन-पियूष ।
दास-तुलसी रही नयननि दरस ही की भूख ॥ १४ ॥

कबहूँ कपि ! राघव आवहिंगे ?
मेरे नयन चकोर प्रीतिबस राकाससि-मुख दिखरावहिंगे ॥
मधुप मराल मोर चातक ह्वै लोचन बहु प्रकार धावहिंगे ।
अंग-अंग छबि भिन्न-भिन्न सुख निरखि-निरखि तहँ तहँ छावहिंगे ॥

बिरह-अगिनि जरि रही लता ज्यों कृपादृष्टि जल पलुहावहिंगे ।
निज बियोग-दुख जानि दयानिधि मधुर बचन कहि समुझावहिंगे ॥
लोकपाल-सुर-नाग-मनुज सब परे बंदि कब मुकुतावहिंगे ।
रावन-बध रघुनाथ-बिमल-जस नारदादि मुनिजन गावहिंगे ॥
यह अभिलास रैन-दिन मेरे राज बिभीषन कब पावहिंगे ।
तुलसिदास प्रभु मोह-जनित भ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावहिंगे ॥१५॥

सत्य बचन सुनु मातु जानकी ।
जनके दुख रघुनाथ दुखित अति, सहज प्रकृति करुनानिधानकी ॥
तुव बियोग-संभव दारुन दुख बिसरि गई महिमा सुबानकी ।
नतु कहु कहँ रघुपति-सायक-रवि तम-अनीक कहँ जातुधानकी ॥
कहँ हम पसु साखामृग चंचल बात कहौं मैं बिद्यमानकी ।
कहँ हरि-सिव-अज-पूज्य ज्ञानघन नहिं बिसरति वह लगनि कानकी ॥
तुव दरसन सँदेस पुनि हरिको बहुत भई अवलंब प्रानकी ।
तुलसिदास गुन सुमिरि रामके प्रेम मगन नहिं सुधि अपानकी ॥१६॥

मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
बिपति-बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ?
सुनु सुग्रीव साँचेहूँ मोपर फेर्‍यो बदन बिधाता ।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लषन सो भ्राता ॥
गिरि कानन जैहैं साखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती ।
ह्वैहै कहा बिभीषनकी गति रही सोच भरि छाती ॥
तुलसी सुनि प्रभु-बचन भालु कपि सकल बिकल हिय हारे ।
जामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे ॥ १७ ॥

होतो नहिं जो जग जनम भरतको ।
तौ कपि कहत कृपान-धार-मग चलि आचरत बरत को ?

धीरज-धरम-धरनि धर-धुरहु तें गुरु धुर धरनि धरत को ?
सब-सद्गुन सनमानि आनि उर अघ औगुन निदरत को ?
सिवहु न सुगम सनेह रामपद सुजननि सुलभ करत को ?
सृजि निज जस-सुरतरु तुलसी कहँ अभिमत फरनि फरत को ?॥१८॥

छेमकरी बलि बोलि सुबानी ।
कुसल-छेम सिय राम लषन कब ऐहैं, अंब ! अवध रजधानी ॥
ससिमुख, कुंकुम-बरनि, सुलोचनि मोचनि-सोचनि बेद बखानी ।
देवि ! दया करि देहि दरसफल जोरि पानि बिनवहिं सब रानी ॥
सुनि सनेहमय बचन निकट ह्वै मंजुल मंडल कै मँड़रानी ।
सुभ मंगल आनंद गगन-धुनि अकनि अकनि उर जरनि जुड़ानी ॥
फरकन लगे सुअङ्ग बिदिसि-दिसि मन प्रसन्न दुख-दसा सिरानी ।
करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु मानि बिबिध बलि सगुन सयानी ॥
तेहि अवसर हनुमान भरतसों कही सकल कल्यान-कहानी ।
तुलसिदास सोइ चाह संजीवनि बिषम बियोग व्यथा बड़ि भानी ॥१९॥

कैकैयी जौलों जियति रही ।
तौलौं बात मातुसों मुह भरि भरत न भूलि कही ॥
मानी राम अधिक जननीतें जननिहुँ गँस न गही ।
सीय लषन रिपुदवन राम रुख लखि सबकी निबही ॥
लोक-बेद-मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही ।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही ॥ १९ ॥

(घ) कवितावली

कवितावलीकी रचना ग्रन्थ-रूपमें नहीं की गई थी । उनका उपयोग करके रामलीलाके संवादोंमें प्राण भरनेके लिये, गोष्ठियों और पदन्त

कवि-समाजोंमें प्रचलित कवित्त-सवैया-पद्धतिका पोषण करनेके लिये, राम-कथाका जो अंश उन्हें किसी समय अधिक आकर्षक या मनोहर लगा उसका सूक्ष्म वर्णन करनेके लिये तथा अपनी आपबीती अपने भगवान्‌से कहनेके लिये उन्होंने समय-समयपर जो छन्द रचे थे उन्हींका संग्रह करके और सात काण्डोंमें विभाजित करके यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया गया है। इसीलिये इसका उत्तरकाण्ड अनेक विषयोंसे परिपूर्ण है और प्रायः मूल रामकथासे पृथक् स्वतन्त्र रचना-सा प्रतीत होता है। इस ग्रन्थमें लंकाकाण्ड विशेष ओजःपूर्ण और शेष कांड प्रसाद गुणसे सम्पन्न हैं। इसके कुछ वर्णन तो बड़े ही हृदयग्राही और मनोमुग्धकारी हैं।

बालकाण्डके प्रारम्भिक सात सवैयोंमें रामके रूपका वर्णन बहुत ही सुन्दर हुआ है। एक उदाहरण लीजिए—

बर दन्तकी पंगति कुन्दकली अधराधर-पल्लव खोलनकी।
चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलनकी॥
घुघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर कुण्डल लोल कपोलनकी।
निवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलनकी॥

सीताके प्रेमका वर्णन और धनुष-भंगकी कथा भी इसमें अत्यन्त मनोरम रूपसे वर्णित हुई है। वन-पथपर जाते समय राम-लक्ष्मण और सीता-का सौन्दर्य तथा उनके प्रति मार्गवासियोंके भावोंका चित्रण इसमें अत्यन्त स्वाभाविक हुआ है और लंकादहनके वर्णनमें हनुमानके शौर्य तथा लंका-वासियोंकी मनोदशाका वर्णन तो बहुत ही उत्तम हुआ है—

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौ
लंक लीलिबेको काल रसना पसारी है।
कैधों ब्योम-बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु
बीररस बीर तरवारि-सी उघारी है॥

तुलसी सुरेस-चाप कैधौं दामिनी-कलाप
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं
'कानन उजार्‌यौ अब नगर प्रजारी है' ॥

लंका-युद्ध-वर्णनके कुछ प्रसंग भी बड़े मनोरम हैं और उत्तरकाण्डमें कलियुगकी दशाका वर्णन तो अत्यन्त ही मार्मिक हुआ है। कवितावलीके उत्तरकाण्डमें ही ऐसे भी अनेक छन्द आए हैं जिनसे गोस्वामीजीके जीवनके सम्बन्धमें अनेक सूत्र प्राप्त होते हैं और जिनका विवरण पीछे दिया जा चुका है। इस दृष्टिसे कवितावलीका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

इसमें कवित्त, सवैया, घनाक्षरी, छप्पय और झूलना छन्दोंका प्रयोग हुआ है। पूरी कवितावलीकी भाषा बड़ी प्रौढ तथा ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणोंसे सम्पन्न शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है। इसके कुछ छन्दोंमें तो गोस्वामीजीने हृदय निकालकर रख दिया है। कथात्मक रूपसे रचना न होनेके कारण ही इसके प्रायः सभी छन्द अत्यन्त समर्थ, प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हो पाए हैं। अन्य सभी रचनाओंकी भाँति गोस्वामीजीने इसके उत्तरकाण्डमें रामके प्रति अपनी भक्ति-भावना स्पष्ट कर दी है—

सिय-राम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन मीननुको जलु है।
स्रुति रामकथा, मुख रामको नाम, हिए पुनि रामहिंको थलु है॥
मति रामहिंसो, गति रामहिंसो, रति रामसो, रामहिंको बलु है।
सबकी न कहै तुलसीके मते इतनो जगजीवनको फलु है॥

कवितावलीके कुछ रसमय कवित्त-सवैये लीजिए—

अवधेसके द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच-बिमोचनको ठगि सी रहि, जे न ठगे धिक-से॥

तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सु-खंजन-जातकसे ।
सजनी ससिमें समसील उभै नवनील सरोरुह-से बिकसे ॥ १ ॥
पग नूपुर औ पहुँची कर-कंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिए ।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिए ॥
अरविंद सो आनन, रूप-मरंद अनंदित लोचन-भृंग पिए ।
मनमों न बस्यो अस बालक जौ तुलसी जगमें फल कौन जिए ॥ २ ॥
सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुबीर, सखा अरु बीर सबै ।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसे कटि, पीत दुकूल नवीन फबै ॥
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि, इकीस सबै ।
मति-भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि फिरी उपमा न पबै ॥ ३ ॥
दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं ।
गावतिं गीति सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं ॥
रामको रूप निहारति जानकी, कंकनके नगकी परछाहीं ।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ॥ ४ ॥
नाम अजामिल-से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े ।
जो सुमिरे गिरि-मेरु-सिला कन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े ॥
तुलसी जेहिके पद-पंकजतें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े ।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥ ५ ॥
एहि घाटतें थोरिक दूर अहै कटि-लौं जल-थाह देखाइहौं जू ।
परसे पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ॥
तुलसी अवलम्ब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू ।
बरु मारिए मोहिं बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥ ६ ॥
रावरे दोष न पायँनको पगधूरिको भूरि प्रभाउ महा है ।
पाहनतें बन-बाहन काठको कोमल है जल खाइ रहा है ॥

पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवटके बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥ ७॥
पुरतें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मगमें डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जलकी, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं 'चलनो अब केतिक पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै'?
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥ ८॥
'जलको गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े॥'
तुलसि रघुबीर प्रिया स्रम जानिकै बैठि बिलम्ब-लौं कंटक काढ़े।
जानकीनाहको नेह लख्यौ, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥ ९॥
ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे, धनु काँधे धरे, कर सायक लै।
बिकटी भ्रुकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलनकी छबि है॥
तुलसी असि मूरति आनि हिये जड़ डारिहौं प्रान निछावरि कै।
स्रम-सीकर साँवरि देह लसैं मनो रासि महा तम तारकमै॥१०॥

रानी मैं जानी अजानी महा पवि-पाहन हूँ ते कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तियको जिन कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है?
आँखिनमें सखि! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनबास दियो है?॥११॥
सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछीसी भौंहें।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन-मारगमें सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम-बधू सिय सों, 'कहौ साँवरे-से सखि रावरे को हैं?'॥१२॥
सुनि सुंदर बैन सुधारस साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥

तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली ।
अनुराग-तड़ागमें भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली ॥१३॥

हाट बाट हाटक पिघिलि चलो घी सो घनो,
कनक कराही लंक तलफति तायसों ।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि पागि ढेरि कीन्हीं भली भाँति भायसों ॥
पाहुने कृसानु पवमान लौं परोसो
हनुमान सनमानिकै जेंवाये चित चाय सों ।
तुलसी निहारि अरिनारि दै दै गारि कहैं,
'बावरे सुरारि बैर कीन्हो रामरायसों' ॥ १४ ॥

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर,
दिन दिन बिकल सकल सुख-राँक सो ।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो ॥
राम की रजायतें रसायनी समीर-सूनु,
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो ॥
जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो ॥ १५ ॥

हाथिनसों हाथी मारे, घोड़े घोड़े-सों सँहारे,
रथनि सों रथ बिदरनि बलवानकी ।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं,
हहरानी फौजें भहरानी जातुधानकी ॥
बारबार सेवक सराहना करत राम,
तुलसी सराहै रीति साहेब सुजानकी ।

लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ लखन ! लरनि हनुमानकी ॥ १६ ॥

कानन-बास, दसानन-सो रिपु, आननश्री ससि जीति लियो है।
बालि महाबलसालि दल्यो, कपि पालि, बिभीषन भूप कियो है ॥
तीय हरी, रन बंधु पर्‌यौ, पै भर्‌यौ सरनागत-सोच हियो है।
बाँह-पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है ? ॥१७॥

लीन्हों उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।
मारुतनन्दन मारुतको, मनको, खगराजको बेग लजायो ॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिये उपमाको समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बतकी नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो ॥१८॥

रागको न साज, न बिराग जोग जाग जिय,
काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाटको।
मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाटको।
भयो करतार बड़े कूरको कृपालु, पायो
नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराटको।
तुलसी बनी है राम रावरे बनाए, ना तो,
धोबी कैसो कूकर न घरको न घाटको ॥१९॥

कनक-कुधर-केदार, बीज सुंदर सुरमनिवर।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर ॥
तीरथपति अंकुर-सरूप जच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा, सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि ॥
कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कहु तुलसिदास रघुबंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस ? ॥२०॥

आरतपालु कृपालु जो राम, जेही सुमिरे तेहिको तहँ ठाढ़े ।
नाम-प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े ।
सेवक एकतें एक अनेक भए तुलसी तिहुँ तापन डाढ़े ।
प्रेम बदौं प्रहलादहिको जिन पाहनतें परमेस्वर काढ़े ॥२१॥
काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे ।
'राम कहाँ', 'सब ठाँउ है', 'खंभ में'? 'हाँ', सुनि हाँक नृकेहरि जागे ॥
बैरी बिदारि भए बिकराल, कहे, प्रहलादहिके अनुरागे ।
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तबतें सब पाहन पूजन लागे ॥२२॥
अंतरजामिहु तें बड़ बाहरजामि हैं राम, जे नाम लिएतें ।
धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किए तें ॥
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबेकी न बावरि बात बिए तें ।
पैंज परे प्रहलादहुँको प्रगटे प्रभु पाहनतें न हिएतें ॥२३॥
नाँगो फिरै कहै माँगतो देखि 'न खाँगो कछु जनि माँगिये थोरो' ।
राँकनि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरै जाचक जोरो ॥
'नाक सँवारत आयो हौं नाकहिं, नाहिं पिनाकिहिं नेकु निहोरो' ।
ब्रह्म कहै 'गिरिजा ! सिखवो पति रावरो दानि है बावरो भोरो' ॥२४॥

मंगलकी रासि परमारथकी खानि जानि,
बिरचि बनाई बिधि केसव बसाई है ।
प्रलय हू काल राखी सूलपानि सूलपर,
मीचुबस नीच सोऊ चहत खसाई है ॥
छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु,
भलो कियो खलको निकाई सों नसाई है ।
पाहि हनुमान ! करुनानिधान राम पाहि,
कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है ॥

हनुमान-बाहुक

कवितावलीके साथ ही हनुमानबाहुक भी संलग्न है जिसकी रचना उन्होंने अपनी बाहु-पीडाके समय की थी। इसमें हनुमानजीसे रोग-मुक्तिके लिये प्रार्थना की गई है। इसके छन्द बड़े ओजःपूर्ण हैं।

दूत रामरायको सपूत पूत पौनको,
तू अंजनीको नन्दन प्रताप भूरि भानु सो
सीय-सोच-समन दुरित-दोष-दमन,
सरन आए अवन, लखनप्रिय प्रान सो॥
दसमुख दुसह दरिद्र दरिवेको भयो
प्रगट त्रिलोक ओक तुलसी निधान सो॥
ज्ञानगुनवान बलवान सेवा-सावधान
साहेब सुजान उर आनु हनुमान सो॥

तेरे थपै उथपै न महेस, थपै थिर को कपि जे घर घाले?
तेरे निवाजे गरीबनिवाज बिराजत बैरिनके उर साले॥
संकट सोच सबै तुलसी लिए नाम फटै मकरीके-से जाले।
बूढ़ भये, बलि, मेरे हिं वार, कि हारि परे बहुतै नत पाले॥

उथपे-थपन थिर-थपे-उथपनहार,
केसरी-कुमार बल आपनो सँभारिए।
रामके गुलामनिको कामतरु रामदूत
मोसे दीन दूबरेको तकिया तिहारिए।
साहिब समर्थ तोसो तुलसीके माथेपर,
सोऊ अपराध बिनु, बीर! बाँधि मारिए।
पोखरी बिसाल बाहुँ, बलि, बारिचर पीर,
मकरी ज्यों पकरिकै बदन बिदारिए॥

(ङ) श्रीकृष्णगीतावली

श्रीकृष्णचरितपर विरचित लघुकाय श्रीकृष्ण-गीतावलीमें केवल ६१ पद हैं जिनमें श्रीकृष्णकी बाललीला, गोपियोंका उपालम्भ, इन्द्रकोप, गोवर्द्धन-धारण, मथुरा-प्रस्थान, गोपियोंका विलाप, उद्धव-संवाद, भ्रमरगीत एवं द्रौपदी-चीर-प्रवर्द्धनके प्रसंगका वर्णन किया गया है।

श्रीकृष्णगीतावलीकी प्रसिद्धि कम है। इसका कारण यही है कि गोस्वामीजी रामके उपासक थे। यद्यपि उनका किसी भी देवशक्तिसे विरोध नहीं था तथापि रामको छोड़कर उन्होंने कभी किसीके सम्बन्धमें कुछ लिखा नहीं। कौशल्यानन्दनकी रूपमाधुरीके अनन्य प्रेमी तुलसीने कृष्णपर केवल इसलिये कुछ पद लिखे कि वृन्दावन-यात्राके अवसरपर जो उन्होंने कृष्ण-भक्त कवियोंके सम्पर्कसे कृष्णपर रचना करने की भावना व्यक्त की थी उसका उन्हें शील-निर्वाह करना आवश्यक था। अतः, कृष्णचरितपर उन्होंने कृष्णभक्त गीतिकारोंकी ही शैलीमें, उन्हींकी भाषामें, उन्हींके भावोंमें कुछ पद रच डाले। यह कृति भी गोस्वामीजीकी अन्य ब्रजभाषाकी रचनाओंकी भाँति ही पुष्ट और प्रौढ है। सिद्धोक्तियोंसे पूर्ण बोलचालकी भाषामें रचे हुए ये पद इतने सजीव और क्रमिक हैं कि कृष्णलीला-सम्बन्धी सारे विवरणका मूर्त्त रूप हमारे मानस नेत्रोंके समक्ष उपस्थित कर देते हैं। इसमें गोस्वामीजीने भ्रमरगीत और उद्धव-संवाद आदि प्रकरणोंके द्वारा सगुण उपासनाका प्रबल समर्थन किया है। कृष्णके-सौन्दर्यका वर्णन करनेवाले पद पढ़ते ही कृष्णका रूप सामने खड़ा हो जाता है—

देखु सखी हरि-बदन-इन्दुपर।
चिक्कन कुटिल अलक-अवली छबि कहि न जाइ सोभा अनूप बर॥
बालभुअंगिनि निकर मनहुँ मिलि रही घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन बिचारि डरहिं डर॥

इस ग्रन्थकी पदरचना देखनेसे ब्रजभाषापर गोस्वामीजीके असाधारण अधिकारका अनायास परिचय मिल जाता है। सूरको छोड़कर श्रीकृष्णका ऐसा सरस वर्णन गोस्वामीजीके अतिरिक्त और कोई कर नहीं पाया है। सूरके पदोंमें तो भरतीके अनेक शब्द आ भी गए हैं किन्तु गोस्वामीजीके पदोंमें एक भी ऐसा शब्द ढूँढ़े नहीं मिल सकता। भाषाकी दृष्टिसे भी तुलसीकी भाषा जितनी प्रौढ, कोमल-कान्त-पदावलीसे युक्त और शुद्ध है उतनी सूर तथा उनके सहयोगियोंकी नहीं है।

श्रीकृष्ण-गीतावलीका एक और पद लीजिए—

मो कहँ झूठेहु दोष लगावहिं।
मैया! इन्हहिं बानि परगृहकी, नाना जुगुति बनावहिं॥
इन्हके लिये खेलिबो छाँड्यौ तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस देन उरहनों आवहिं॥
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि मिस करि उठि-उठि धावहिं।
करहिं आपु सिर धरहिं आनके बचन बिरंचि हरावहिं॥
मेरी टेव बूझि हलधरको संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहिं काहूको ते सिसु मोहिं न भावहिं॥
सुनि सुनि बचन-चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं।
बाल गोपाल केलि-कल-कीरति तुलसिदास मुनि गावहिं॥

(च) दोहावली

दोहावली शुद्ध मुक्तक रचना है। इसमें ५५० दोहे और २३ सोरठे हैं। दोहोंकी संख्या अधिक होनेके कारण ही इसका नाम दोहावली रक्खा गया है। नीति, धर्म, आचार भक्ति आदि विषयोंपर जो दोहे समय-समयपर गोस्वामीजीकी लेखनीसे प्रसूत होते रहते थे उनका संग्रह तथा मानस और वैराग्यसंदीपिनी आदि ग्रन्थोंसे कुछ दोहे लेकर गोस्वामीजीने

यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया है। इसमें बहुतसे दोहोंमें उनकी बाहुपीडाका भी उल्लेख मिलता है। सांसारिक व्यवहार और अनुभवोंपर भी इसमें बड़ी चुटीली उक्तियाँ आई हैं। इन दोहोंमें रामकी कथा तो सक्रम रूपसे नहीं कही गई किन्तु रामकी भक्ति और रामनामके माहात्म्य बतानेवाले बहुतसे दोहे इसमें बड़े अनूठे हैं।

आदर्श राज्यके प्रसंगमें कलियुगका वर्णन तथा कलिके राजाओंकी मनोवृत्तिकी चर्चा करनेवाले दोहे तो अत्यन्त ही मार्मिक हैं। चातकके प्रति अन्योक्तिके रूपमें कहे हुए दोहे रामभक्ति और राम-प्रेमकी चरम सीमाके द्योतक हैं। अप्रस्तुत वस्तुओं या व्यापारोंकी योजना-द्वारा प्रस्तुत वस्तुओंका स्पष्टीकरण भी कहीं-कहीं बड़ा सुन्दर हुआ है—

रामनाम अवलम्ब बिनु, परमारथकी आस।
बरसत बारिद बूँद गहि, चाहत उड़न अकास॥

दोहावलीके कुछ भावमय, मधुर, चुटीले और रससिक्त दोहे तथा सोरठे लीजिए—

राम-नाम-मनि-दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ, जौ चाहसि उजियार॥ १॥
हिय निर्गुन, नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम॥ २॥
एक छत्र, इक मुकुटमनि, सब बरनन-पर जोउ।
तुलसी रघुबर-नामके, बरन बिराजत दोउ॥ ३॥
रामनामको अङ्क है, सब साधन हैं सून।
अङ्क गए कछु हाथ नहिं, अङ्क रहे दसगून॥ ४॥
नाम रामको कलपतरु, कलि कल्यान-निवास।
जो सुमिरत भयो भाग तें, तुलसी तुलसीदास॥ ५॥

हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमारके बीच ।
तुलसी अलखहिं का लखहि ? रामनाम जपु नीच ॥ ६ ॥

बरषा-ऋतु रघुपति-भगति, तुलसी, सालि सुदास ।
रामनाम बर बरन जुग, सावन भादौं मास ॥ ७ ॥

रामनाम नर-केसरी, कनककसिपु कलिकालु ।
जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालहिं दलि सुरसालु ॥ ८ ॥

सकल कामनाहीन जे, राम-भगति-रस-लीन ।
नाम प्रेम-पीयूष हृद, तिनहु किए मन मीन ॥ ९ ॥

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम ।
तेहिके पगकी पानही, तुलसी-तनुको चाम ॥ १० ॥

कै तोहिं लागहिं राम प्रिय, कै तू प्रभु-प्रिय होहि ।
दुइ मँहँ रुचै जो सुगम सो, कीबे तुलसी तोहि ॥ ११ ॥

करमठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञानबिहीन ।
तुलसी त्रिपथ बिहाय गो, राम दुआरे दीन ॥ १२ ॥

तुलसी राम जो आदरयो, खोटो खरो खरोइ ।
दीपक काजर सिर धरयो, धरयो सु धरयो धरोइ ॥ १३ ॥

बारि मथे घृत होइ बरु, सिकतातें बरु तेल ।
बिनु हरि-भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥ १४ ॥

श्रीरघुबीर-प्रतापतें, सिंधु तरे पाषान ।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाय प्रभु आन ॥ १५ ॥

बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहिय हरि-भगति बिनु ॥ १६ ॥

चारि चहत मानस अगम, चनक चारिको लाहु ।
चारि परिहरै चारिको, दानि चारि चख चाहु ॥ १७ ॥

रघुबर-कीरति सज्जननि, सीतल, खलनि सुताति ।
ज्यों चकोर-चय चक्कवनि, तुलसी चाँदनि राति ॥ १८ ॥

हरि-हर-जस सुर-नर-गिरहु, बरनहिं सुकबि-समाज ।
हाँड़ी हाटक घटित चरु, राँधे स्वाद सुनाज ॥ १९ ॥

सधन चोर मग मुदित मन, धनी गही ज्यों फेंट ।
त्यों सुग्रीव-बिभीषनहिं, भई भरतकी भेंट ॥ २० ॥

मुए मुकुत जीवत मुकुत, मुकुत मुकुतहूँ बीच ।
तुलसी सबही तें अधिक, गीधराजकी मीच ॥ २१ ॥

तुलसी-तनु सर, सुख-जलज, भुज-रुज-गज बरजोर ।
दलत दयानिधि देखिए, कपि केसरीकिसोर ॥ २२ ॥

भुज-तरु-कोटर रोग-अहि, बरबस कियो प्रवेस ।
बिहँगराज-बाहन तुरत, काढ़िय मिटइ कलेस ॥ २३ ॥

बाहु-बिटप सुख-बिहँग-थलु, लगी कुपीर कुआगि ।
रामकृपा जब सींचिए, बेगि दीनहित लागि ॥ २४ ॥

मुकुति जनम महि जानि, ज्ञान-खानि, अघहानिकर ।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न ॥ २५ ॥

जरत सकल सुरबृन्द, बिषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मतिमंद, को कृपालु संकर सरिस ॥ २६ ॥

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास ।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास ॥ २७ ॥

अंक अगुन, आखर सगुन, सामुझि उभय प्रकार ।
खोए राखे आपु भल, तुलसी चारु बिचार ॥ २८ ॥

चातक ! तुलसीके मते, स्वातिहु पियो न पानि ।
प्रेमतृषा बाढ़ति भली, घटे घटेगी आनि ॥ २९ ॥

बरषि परुष पाहन पयद, पंख करौ टुक-टूक ।
तुलसी परी न चाहिए, चतुर चातकहि चूक ॥ ३० ॥
उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर ॥ ३१ ॥
मान राखिबो, माँगिबो, पियसों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तौ फबैं, जौ चातक मत लेहु ॥ ३२ ॥
तुलसी चातक ही फबै, मान राखिबो प्रेम ।
बक्र बुंद लखि स्वातिहू, निदरि निबाहत नेम ॥ ३३ ॥
तुलसी चातक माँगनो एक सबै घन दानि ।
देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि ॥ ३४ ॥
नहिं जाँचत नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी माँगनेहिं, को बारिद बिन देइ ॥ ३५ ॥

साधन साँसति सब सहत, सबहि सुखद फल लाहु ।
तुलसी चातक जलदकी, रीझि बूझि बुध काहु ॥ ३६ ॥
चरग चंगुगत चातकहि, नेम प्रेमकी पीर ।
तुलसी परबस हाड़पै, परिहै पुहुमी नीर ॥ ३७ ॥
बध्यो बधिक पर्‍यो पुन्न जल, उलटि उठाई चोंच ।
तुलसी चातक प्रेमपट, मरतहुँ लगी न खोंच ॥ ३८ ॥
तुलसी चातक देत सिख, सुतहिं बार ही बार ।
तात न तर्पन कीजिए, बिना बारिधर-धार ॥ ३९ ॥
सुन रे तुलसीदास, प्यास पपीहहि प्रेमकी ।
परिहरि चारिउ मास, जो अँचवै जल स्वातिको ॥ ४० ॥
तुलसीके मत चातकहिं, केवल प्रेम-पियास ।
पियत स्वातिजल जान जग, जाँचत बारह मास ॥ ४१ ॥

उष्णकाल अरु देह खिन, मगपंथी, तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुचीं, अन जल सींचे रूख॥ ४२॥
नीच निचाई नहिं तजै, सज्जनहूँके संग।
तुलसी चंदन-बिटप बसि, बिनु-बिष भे न भुजंग॥ ४३॥
ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग॥ ४४॥
जतन जोगतें जानियत, जग बिचित्र गति देखि।
तुलसी आखर, अंक, रस, रंग बिभेद बिसेखि॥ ४५॥
करु बिचारु, चलु सुपथ, भल, आदि मध्य परिनाम।
उलटि जपे 'जारा मरा', सूधे 'राजा राम'॥ ४६॥
जड़ चेतन गुन-दोस-मय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि-बिकार॥ ४७॥
जोंक सूधि मन कुटिल गति, खल बिपरीत बिचारु।
अनहित सोनित सोष सो, सो हित सोषनहारु॥ ४८॥
बोल न मोटे मारिए, मोटी रोटी मारु।
जीति सहस सम हारिबो, जीते हारि निहारु॥ ४९॥
रोष न रसना खोलिए, बरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर, परिनाम हित, बोलिय बचन बिचारि॥ ५०॥
तुलसी असमयके सखा, धीरज, धरम, बिवेक।
साहित, साहस, सत्यब्रत, रामभरोसो एक॥ ५१॥
तुलसी जसि भवितब्यता, तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय॥ ५२॥
सोचिय गृही जो मोहबस, करै कर्मपथ त्याग।
सोचिय जती प्रपंच-रत, बिगत बिबेक बिराग॥ ५३॥

कारनतें कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर।
कुलिस अस्थितें, उपलतें, लोह कराल कठोर ॥ ५४ ॥
काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता, कठिन गुरु, गोला पुहुमीपाल ॥ ५५ ॥
तुलसी तृन जल-कूलको, निरधन निपट निकाज।
कै राखै, कै सँग चलै, बाँह गहेकी लाज ॥ ५६ ॥
रामायन-अनुहरत सिख, जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठकी को सुनै? कलि-कुचालिपर प्रीति ॥ ५७ ॥
ब्रह्म-ज्ञान बिनु नारि-नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि ते मोहबस, करहिं बिप्र-गुरु-घात ॥ ५८ ॥
साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान ॥ ५९ ॥
सकल धरम बिपरीत कलि, कल्पित कोटि कुपंथ।
पुन्य पराय पहार बन, दुरे पुरान सुभ ग्रन्थ ॥ ६० ॥

(छ) रामाज्ञा-प्रश्न

रामाज्ञा-प्रश्न भी दोहोंमें ही है। इसमें भी रामकथा आई तो है किन्तु वह अक्रम रूपसे ही दी गई है। इसकी रचना वास्तवमें शकुन विचारनेकी दृष्टिसे की गई थी इसलिये इसमें कथाका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसमें जो कथा आई भी है वह वाल्मीकि-रामायणसे अधिक मिलती है। इस कथामें रामकी बारातके लौटते समय परशुरामका आगमन दिखाया गया है। इसी प्रकार इसमें सीता-परित्याग और लवकुशकी कथा भी आ गई है। सातवें सर्गके सातवें सप्तकमें शकुन विचारनेकी विधि भी दे दी गई है। काव्यकलाकी दृष्टिसे इस रचनामें कोई विशेषता

है। इसमें सरस दोहे भी अधिक नहीं हैं। केवल इतिवृत्तके ढंगके दोहे कहे गए हैं। कुछ सरस उदाहरण लीजिए—

मधु माधव दसरथ जनक, मिलब राज ऋतुराज।
सगुन सुबन नव दल सुतरु, फूलत फलत सुकाज ॥ १ ॥
बिनय-पराग सुप्रेम रस, सुमन सुभग संबाद।
कुसुमित काज रसाल तरु, सगुन सुकोकिल-नाद ॥ २ ॥
सुकृत-सील-सोभा-अवधि, सीय सुमंगल-खानि।
सुमिरि सगुन तिय-धरम हित, कहब सुमंगल-जानि ॥ ३ ॥
रामनाम कलि कामतरु, सकल सुमंगल कंद।
सुमिरत करतल सिद्धि जग, पग पग परमानन्द ॥ ४ ॥
तुलसी तुलसी मंजरी, मंगल मंजुल फूल।
देखत सुमिरत सगुन सुभ, कलपलता फल मूल ॥ ५ ॥
नाम ललित लीला ललित, ललित रूप रघुनाथ।
ललित बसन भूषन ललित, ललित अनुज-सिसु साथ ॥ ६ ॥
ललित लाहु लोने लषनु, लोयन-लाहु निहारि।
सुत ललाम लालहु ललित, लेहु ललकि फल चारि ॥ ७ ॥
रामनाम कलि कामतरु, रामभगति सुरधेनु।
सगुन सुमंगल मूल जग, गुरु-पद-पंकज-रेनु ॥ ८ ॥
सूर-सिरोमनि साहसी, सुमति समीर-कुमार।
सुमिरत सब सुख संपदा, मुद-मंगल दातार ॥ ९ ॥
तुलसी कानन कमल-बन, सकल सुमंगल बास।
राम-भगति-हित सगुन सुभ, सुमिरत तुलसीदास ॥ १० ॥
कृपासिंधु प्रभु सिंधु सन, माँगेउ पंथु न देत।
बिनय न मानहिं जीव जड़, डाँटे नवहिं अचेत ॥ ११ ॥

राम स्याम बारिद सघन, बसन सुदामिनि माल ।
बरषत सर हरषत बिबुध, दला दुकालु दयाल ॥ १२ ॥
सुधा, साधु, सुरतरु, सुमन, सुफल, सुहावनि बात ।
तुलसी सीतापति-भगति, सगुन सुमंगल सात ॥ १३ ॥
सिद्ध समागम, संपदा, सदन सरीर सुपास ।
सीतानाथ-प्रसाद सुभ, सगुन सुमंगल बास ॥ १४ ॥

(ज) वैराग्यसंदीपिनी

वैराग्यसंदीपिनीके सम्बन्धमें अधिकांश विद्वानोंका मत है कि 'यह गोस्वामीजीकी रचना ही नहीं है। जो गोस्वामीजी रामचरितमानस जैसा प्रौढ और सरस काव्य लिख सकते थे वे ऐसी साधारण रचना भला कैसे करते ?' किन्तु इसके बहुतसे दोहे रामाज्ञाप्रश्न और दोहावलीमें ज्योंके त्यों मिलते हैं इसलिये इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह गोस्वामीजीकी रचना ही है। इसका विषय ही ऐसा रूखा है कि यह सरस हो ही नहीं सकती थी। इसमें सन्त और शान्तिका वर्णन है और पद्धति भी वैसी ही उपदेशात्मक है जैसी निर्गुनिए साधु अपनाया करते थे। रसभाव-पूर्ण रचनाशैली, उक्ति-वैचित्र्य तथा रामकी भक्तिसे परिपूर्ण काव्यमयी वाणीका इसमें सर्वथा अभाव है।

वैराग्यसंदीपिनीके कुछ उदाहरण लीजिए—

राम बाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर ॥
तुलसी यह तनु खेत है, मन बच कर्म किसान ।
पाप-पुन्य द्वै बीज हैं, बवै सो लवै निदान ॥
एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास ।
राम रूप स्वाती जलद, चातक तुलसीदास ॥

महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ ।
तुलसी गनपति सों तदपि, महिमा लिखी न जाइ ॥

तुलसी जाके बदनतें, धोखेहु निकसत राम ।
ताके पगकी पगतरी, मेरे तनुको चाम ॥

फिरी दोहाई रामकी, गे कामादिक भाजि ।
तुलसी ज्यों रबिके उदय, तुरत जात तम लाजि ॥

(झ) बरवै रामायण

बरवै रामायण अत्यन्त सरस रचना है । इसमें पूरी रामकथा बरवै छन्दोंमें दी गई है । यद्यपि इसमें बरवै तो कुल ६९ हैं किन्तु ये भी कथाके क्रमसे सात काण्डोंमें विभक्त कर दिए गए हैं । यह भी सम्भव है कि गोस्वामीजीने रामकी कथा इससे भी कहीं अधिक बरवै छन्दोंमें लिखी हो जो पीछे चलकर नष्ट हो गए हों और जो बच रहे वे ही इस रूपमें संकलित कर दिए गए । रहीमके अनुरोधपर अवधीके इस मधुरतम छन्दमें रामकथा कहनेके लिये गोस्वामीजी प्रवृत्त हुए हों और केवल ६९ ही छन्द रचकर रह गए हों यह बात समझमें नहीं आती । वैसे अब जो पोथियाँ मिलती हैं उनमें कथात्मक रूपमें इनका रचना-क्रम नहीं देख पड़ता ।

बरवै रामायणकी भाषा जैसी मधुर और मनोहर है वैसे ही इनमें अलंकारोंका प्रयोग भी बड़ा सटीक हुआ है । रामके रूप-वर्णन, सीताके सौन्दर्य और विरह-वर्णन, भक्तकी दैन्य अवस्था एवं भक्ति-भावके वर्णनोंसे रस छलका पड़ता है । इन छोटे-छोटे प्रवाहपूर्ण छन्दोंमें भी रूपचित्रणकी विशेषता देखते बनती है । एक उदाहरण लीजिए—

सम सुबरन सुखमाकर, सुखद न थोर ।
सीय अंग सखि ! कोमल, कनक कठोर ॥

इस छन्दकी व्यञ्जना कैसी अनूठी है—

गरब करहु रघुनन्दन, जनि मन माहिं ।
देखहु आपनि मूरति, सियकी छाँह ॥

विरहिणीकी वेदनाका देखिए कैसा स्वाभाविक चित्रण है—

डहकु न है उजियरिया, निसि नहिं घाम ।
जगत जरत अस लागु, मोहि बिनु राम ॥

बरवै रामायणके इस अन्तिम छन्दमें—

जनम जनम जहँ जहँ तनु, तुलसिहुँ देहु ।
तहँ तहँ राम निबाहिब, नाम सनेहु ॥

—गोस्वामीजीने ठीक वही भाव व्यक्त किया है जो उन्होंने मानसमें व्यक्त किया है—

जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन ।

बरवै रामायणके कुछ सरस उदाहरण लीजिए—

केस मुकुत सखि मरकत, मनिमय होत ।
हाथ लेत पुनि मुकुता, करत उदोत ॥ १ ॥
सियमुख सरद कमल जिमि, किमि कहि जाइ ।
निसि मलीन वह निसि दिन, यह बिगसाइ ॥ २ ॥
चंपक-हरवा अँग मिलि, अधिक सोहाइ ।
जानि परै सिय हियरे, जब कुँभिलाइ ॥ ३ ॥
सिय तुव अंग-रंग मिलि, अधिक उदोत ।
हार बेलि पहिरावौं चंपक होत ॥ ४ ॥
तुलसी बंक बिलोकनि, मृदु मुसुकानि ।
कस प्रभु नयन कमल अस, कहौं बखानि ॥ ५ ॥

का घूँघट मुख मूँदहु, अबला नारि ?
चाँद सरग-पर सोहत, यहि अनुहारि ॥ ६ ॥
तुलसी जनि पग धरहु, गंग महँ साँच ।
निगानाँग करि नितहिं, नचाइहि नाच ॥ ७ ॥
कमल कंटकित सजनी ! कोमल पाइ ।
निसि मलीन, यह प्रफुलित, नित दरसाइ ॥ ८ ॥
सीय बरन सम केतकि, अति हित हारि ।
किहेसि भँवर-कर हरवा, हृदय बिदारि ॥ ९ ॥
सीतलता ससिकी रहि, सब जग छाइ ।
अगिनि ताप ह्वै तन कहँ, सँचरत आइ ॥ १० ॥

बिरह आगि उर ऊपर, अति अधिकाइ ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि, देहिं बुझाइ ॥
अब जीवन कै है कपि ! आस न कोइ ।
कनगुरिया कै मुँदरी, कंगन होइ ॥
सरद चाँदनी सँचरत, चहुँ दिसि आनि ।
बिधुहि जोरि कर बिनवति, कुलगुरु जानि ॥
जान आदिकवि तुलसी, नाम प्रभाउ ।
उलटा जपत कोल ते, भे ऋषिराउ ॥
कलसजोनि जिय जानेउ, नाम प्रतापु ।
कौतुक सागर सोखेउ, करि जिय जापु ॥
केहि गिनती महँ गिनती, जस बनघास ।
राम जपत भे तुलसी, तुलसीदास ॥
कामधेनु हरिनाम, काम-तरु राम ।
तुलसी सुलभ चारि फल, सुमिरत नाम ॥

(ञ) रामलला-नहछू

रामलला-नहछू भी बड़ी सरस रचना है। है तो यह अत्यन्त छोटी, कुल बीस ही सोहर छन्दोंमें, किन्तु जिस अवसरके लिये यह रची गई है वह अवसर ही मोद और रस प्रदान करनेवाला है। अतः, रचनाके रसमय होनेमें सन्देह क्या रह जाता है? जिन मंगलमय अवसरोंपर नहछू होते हैं उनमें स्त्रियाँ 'गारी' भी गाती हैं और वे किसीको अप्रिय भी नहीं लगतीं। फिर भी गोस्वामीजीने प्रचलित गीतोंको असंस्कृत समझकर इस सांस्कृतिक गीतमालाकी रचना की।

इसमें गोस्वामीजीने अधिक यथार्थवादी और रसिक होकर कई छन्दोंमें हास-परिहासकी भी बड़ी सुन्दर व्यञ्जना की है—

काहे रामजिउ साँवर लछिमन गोर हो।
की दहुँ रानि कौसिलहिं परिगा भोर हो॥

(ट) जानकी-मंगल

गोस्वामीजीने राम-जानकीके विवाह-विषयवाले इस ग्रन्थकी कथा मानसकी कथासे कुछ भिन्न रूपमें ग्रहण की है। परशुरामवाला प्रकरण इसमें वाल्मीकिके ही अनुसार है और वह कथा भी दो ही छन्दोंमें समाप्त कर दी गई है। इसमें केवल विवाहका ही वर्णन बहुत विस्तारसे किया गया है इसीलिये सम्भवतः इसका नाम जानकीमंगल है भी। कथानक, वर्णन आदि सभी दृष्टियोंसे यह खण्डकाव्य बहुत ही सफल हो पाया है।

इसमें गोस्वामीजीने अपने समयमें प्रचलित उन लोकाचारोंका वर्णन भी बड़े विशद रूपसे किया है जिनमें नेग और गाली आदिका विधान पूर्ण रूपसे मिलता है। इस मांगलिक घटनाके वर्णनमें कविने विशेष रुचि दिखाई है। इस ग्रन्थकी भाषामें बड़ा वेगशील प्रवाह है और

प्रतीत होता है कि शब्द एक दूसरेके पश्चात् जैसे स्वयं फिसलते चले आ रहे हों—

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति ।
सारद सेस सुकबि स्रुति सन्त सरलमति ॥
हाथ जोरि करि बिनय सबहिं सिर नावौं ।
सिय रघुबीर बिबाह जथामति गावौं ॥

इस ग्रन्थकी भाषा, इसका छन्दोविधान सब कुछ मनोहारी है ।

(ठ) पार्वती-मंगल

जिस प्रकार जानकी-मंगलमें राम और सीताके विवाहकी चर्चा हुई है उसी प्रकार उसी भाषा, उसी छन्द, उसी शैलीमें उमा-महेश्वरके विवाहकी कथा पार्वती-मंगलमें कही गई है । आकारमें यह कुछ छोटा है किन्तु अन्य बातोंमें ठीक जानकी-मंगलकी ही भाँति है ।

इसमें कालिदासके कुमार-संभवकी कथाके अनुसार ही उमाकी तपस्याका वर्णन कुछ विस्तारसे हुआ है और उमा तथा बटु-वेशधारी शंकरका संवाद भी बड़ा सजीव हुआ है । विवाहकी कथा भी मानसकी अपेक्षा कुछ अधिक विस्तृत है । यह रचना प्रत्येक दृष्टिसे जानकी-मंगलसे मिलती-जुलती है । इसमें भी प्रवाहमयी भाषा, वर्णनोंकी स्वाभाविकता और शब्दोंका माधुर्य देखते बनता है ।

कुछ उदाहरण लीजिए—

उमा नेहबस बिकल देह सुधि-बुधि गई ।
कलपबेलि बन बढ़त बिषम हिम जनु हई ॥
तजेउ भोग जिमि रोग लोग अहि-गन जनु ।
मुनि मनसहु ते अगम तपहिं लायउ मनु ॥

सकुचहिं बसन विभूषन परसत जो बपु।
तेहि सरीर हर हेतु अरंभेउ बड़ तपु॥
नील निचोल छाल भइ फनि-मनि-भूषन।
रोम रोमपर उदित रूपमय पूषन॥
गन भए मंगलवेष मदन मन मोहन।
सुनत चले हिय हरषि नारि नर जोहन॥
संभु सरद राकेस, नखतगन सुरगन।
जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुरजन॥

इस प्रकार गोस्वामीजीके काव्य सचमुच सबके लिये हितकर सिद्ध हुए और उनके काव्यके लिये यह कहना ठीक ही है कि उनसे—

सुरसरि-सम सबकर हित होई।

६

तुलसी और सूर

तुलसी नहीं नर था कभी सुर था सुधा बरसा गया।

प्रायः हिन्दी साहित्य-जगत्‌में जब तुलसीका नाम आता है तब उनके साथ सहसा सूरको भी स्मरण कर लिया जाता है और इस स्मरण करनेके साथ-साथ वे सब उक्तियाँ भी दुहराई जाने लगती हैं जो उन कवियोंके श्रेष्ठत्वकी प्रशंसा के रूपमें प्रसिद्ध हैं। जैसे—

सूर सूर तुलसी ससी, उडगन केसवदास।
अबके कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास॥

अथवा—

तत्त्व तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठि।
बची खुची कबिरा कही, और कही सब जूठि॥

इन सब उक्तियोंके कारण हिन्दी-साहित्य-जगत्में तुलसी और सूरकी तुलना करनेकी एक परिपाटी ही चल पड़ी है। तुलसीकी व्यापक प्रसिद्धि और उनके विभिन्न प्रकारके काव्य-रूपों तथा पद्धतियोंके कारण लोगोंने 'सूर-सूर तुलसी-ससी'का या तो समर्थन किया है या तुलसीके प्रति भक्त्यावेशके कारण उक्तिको उलटकर कहा है—

तुलसी रवि सूरा ससी।

किन्तु ये दोनों ही पद्धतियाँ किसी भी कविके उचित समीक्षण और भाव-निदर्शनके लिये समुचित नहीं कही जा सकतीं।

वास्तवमें सूर और तुलसी दोनोंके क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं और इस दृष्टिसे दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें अद्वितीय हैं। आचार्य शुक्लजीने इसीको स्पष्ट करते हुए कहा है—

'बाल्यकाल और यौवनकाल कितने मनोहर हैं! उनके बीच नाना मनोरम परिस्थितियोंके विशद चित्रण-द्वारा तुलसीने जीवनकी जो रमणीयता सामने रक्खी उससे गिरे हुए हृदय नाच उठे। वात्सल्य और शृंगारके क्षेत्रोंका जितना अधिक उद्घाटन सूरने बन्द आँखोंसे किया उतना किसी और कविने नहीं। इन क्षेत्रोंका कोना-कोना वे झाँक आए। उक्त दोनों रसोंके भीतर जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओंका अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके उतनीका कोई नहीं। हिन्दी साहित्यमें शृङ्गारका रस-राजत्व यदि किसीने पूर्ण रूपसे दिखाया तो सूरने।'

'यदि हम सूरके केवल विप्रलम्भ शृंगारको ही लें तो न जाने कितने प्रकारकी मानसिक दशाएँ ऐसी मिलेंगी जिनके नामकरण-तक नहीं हुए हैं। मैं इसीको कवियोंकी पहुँच कहता हूँ। यदि हम मनुष्य-जीवनके सम्पूर्ण क्षेत्रको लेते हैं तो सूरदासकी दृष्टि परिमित दिखाई पड़ती है। पर यदि हम उनके चुने हुए क्षेत्रोंको लेते हैं तो उनके भीतर उनका विस्तार बहुत अधिक पाते हैं। उन क्षेत्रोंमें इतना अन्तर्दृष्टि-विस्तार और किसी कविका नहीं है।'

सूरकी इसी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टिके कारण यह उक्ति प्रसिद्ध हो गई—

किधौं सूरको सर लग्यो, किधौं सूरकी पीर।
किधौं सूरको पद लग्यौ, बेधत सकल सरीर॥

इन दोनों महाकवियोंमें विषयकी परिधिका यह अन्तर होनेके साथ-साथ सबसे बड़ी बात यह है कि तुलसीदासजी एकनिष्ठ रामभक्त होते हुए भी अपने इष्टदेवके द्वारा प्रतिपादित लोक-वेद-मर्यादासे प्रमाणित वर्णाश्रमधर्मको यों ही नहीं छोड़ देना चाहते थे। वे श्रुति-सेतु-पालक रामके गुणोंके गायक होकर उस गुणगाथाका आनन्द मात्र नहीं लेना चाहते थे वरन् उन्हें अपने समाजमें प्रतिष्ठित भी करना चाहते थे। इसीलिये जहाँ उन्होंने स्वयं अपनी भक्ति, अपनी निष्ठा और अपने आत्मनिवेदनके लिये विनयपत्रिकाकी रचना की, वहीं उन्होंने सामाजिक मर्यादाकी पूर्ण स्थापनाके लिये रामचरितमानसके प्रसिद्ध पात्रोंके माध्यमसे उनमें उस आदर्श शीलकी भी प्रतिष्ठा की जो आजतक भारतीय हिन्दू समाजको चैतन्य, शक्ति, आत्मविश्वास और संबल प्रदान करता चला जा रहा है।

तुलसी और सूर दोनों अपने-अपने इष्टदेवोंके परम भक्त तो थे किन्तु

दोनों ही अपने-अपने उपास्य देवोंको भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे देखते थे। गोस्वामीजीने स्पष्ट कहा है—

सेवक-सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।

इस प्रसंगमें उन्होंने अपनी भक्तिका सारा स्वरूप सकारण स्पष्ट करते समय ज्ञान और भक्ति दोनोंका समर्थन करते हुए भी भक्तिकी श्रेष्ठताका निरूपण करके विस्तारके साथ जो अपना मत स्थापित किया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि वे न तो ज्ञानके ही विरोधी थे न निर्गुण स्वरूपके ही, वरन् वे भक्ति मार्गको ज्ञानकी अपेक्षा अधिक सरल मार्ग समझते थे। उन्होंने निर्गुण और सगुणमें भी अभेद माना है और कहा है कि निर्गुण ही अपने भक्तके लिये सगुण स्वरूप धारण करते हैं। यह निर्गुण ब्रह्म और भक्तोंके लिये सगुण रूप धारण करनेवाले ब्रह्म और कोई नहीं, राम ही हैं और उनकी भक्ति सेवक भावसे ही हो सकती है। इस भक्तिके स्वरूप और उसे सिद्ध करनेके सम्बन्धमें उन्होंने जो कुछ कहा है वह रामायणके उत्तरकाण्डमें दिए हुए निम्नांकित अवतरणोंसे स्पष्ट हो जायगा—

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव-संभव खेदा॥
ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥

पुरुष त्याग सक नारिहि, जो बिरक्त मतिधीर।
न तु कामी बिषया-बस, बिमुख जो पद रघुबीर॥
सोउ मुनि ग्याननिधान, मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान, नारि बिष्नु माया प्रगट॥

मोह न नारि नारिके रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥
माया भगति सुनहु तुम दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ॥

पुनि रघुबीरहिं भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहिं सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाँचहिं भगति सकल सुख खानी॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥
सो माया बस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीट मरकटकी नाईं॥
सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौ हरि कृपाँ हृदय बस आई॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥
नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै॥
मुदिताँ मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

जोग अगिनि करि प्रगट तब, कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत, ममता मल जर जाइ॥
तब बिग्याननिरूपिनी, बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़, समता दिअटि बनाइ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहिं कपासतें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि॥
एहि बिधि लेसै दीप, तेज-रासि बिग्यान-मय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब॥

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥

आतम-अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा॥
छोरन ग्रंथि पाव जौ सोई। तब यह जीव कृतारथ होई॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥
होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥
जौं तेहिं बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥
इन्द्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥
जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई॥
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥
इन्द्रिय सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोगपर प्रीति सदाई॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥

तब फिरि जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृत क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस॥
कहत कठिन समुझत कठिन, साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक॥

ग्यान पंथ कृपानकै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य-परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥

तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥
अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादरि भगति लुभाने॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥
भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥

सेवक सेब्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पदपंकज, अस सिद्धांत बिचारि॥
जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हिं करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहिं जीव ते धन्य॥

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। रामते अधिक रामकर दासा॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सबकर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥

ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं, भगति मधुरता जाहिं॥
बिरति चर्म असि ग्यान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति, देखु खगेस बिचारि॥

सूरदासजीकी भक्ति सख्य भावकी थी। इसीलिये उन्होंने कहीं-कहीं अपने इष्टदेवको चुनौती दे डाली है और यहाँतक कह दिया है—

आजु हौं एक एक करि टरिहौं
कै हमहीं कै तुमहीं माधव, अपुनि भरोसे लरिहौं॥

वे निर्गुणकी सत्ता स्वीकार करनेके लिये प्रस्तुत ही नहीं हैं। उन्होंने गोपियोंसे उद्धवको कहलाया है—

निर्गुन कौन देसको बासी।
मधुकर हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी॥

इतना ही नहीं, वे निर्गुणकी बात-तक नहीं सुनना चाहते इसीलिये उन्होंने यहाँतक कह दिया—

सुनिहै कथा कौन निर्गुनकी रचि पचि बात बनावत।
सगुन सुमेरु प्रगट देखियत तुम तृणकी ओट दुरावत॥

निर्गुण और सगुणकी तुलना करके भी वे निर्गुणके अनस्तित्वकी ही बात करते हैं और कहते हैं—

रेख न रूप बरन जाके नहिं ताको हमें बतावत।
अपनी कहो दरस ऐसेको तुम कबहूँ हौ पावत॥

और फिर केवल सगुणकी सत्ताका डंका बजाते हुए कहते हैं—

मुरली अधर धरत है सो पुनि गोधन बन-बन चारत।
नैन बिसाल भौंह बंकट करि देख्यौ कबहुँ निहारत॥
तन त्रिभंग करि नटवर बपु धरि पीताम्बर तेहि सोहत।
सूर स्याम ज्यों देत हमें सुख त्यों तुमको सोउ मोहत?

इस प्रकार जहाँतक उपासनाका सम्बन्ध है, उन्होंने भगवान्के प्रेममय स्वरूपकी उपासना करके सायुज्य मुक्तिका मार्ग प्रशस्त किया था। वे अपने कृष्णमें न तो लोकमर्यादाकी भावना और वृत्तियोंका प्रदर्शन करना चाहते थे न उनके लोक-रक्षक स्वरूपका। यही इन दोनों महाकवियोंमें सबसे बड़ा अन्तर है।

सूरने जितने पदार्थों और व्यापारोंका विस्तृत वर्णन और चित्रण किया है उसे देखकर हमें श्री बदरीनाथ भट्टजीकी बात स्मरण हो आती है और हम उनके स्वरमें स्वर मिलाकर कह सकते हैं—

सूरको अँधरा कौन कहै।

आँखें न होनेपर भी कृष्ण और राधाके नखशिखका, उनकी भावभंगियोंका, व्रजके प्रत्येक महत्त्वपूर्ण स्थलका, कृष्ण और गोपियोंके विहार और लीलाओंका जितना सूक्ष्म, सटीक और विस्तृत वर्णन उन्होंने किया है उसे देखकर कोई विश्वास नहीं कर सकता कि सूर अन्धे थे। भगवान् श्रीकृष्णका जीवन ही सहस्रों कथाओंका समन्वय है। संभवतः, इसीलिये सूरदासजीने प्रबन्ध-काव्य न लिखकर उनकी प्रत्येक लीलाको एक-एक मुक्तक पदमें ढाल दिया। किन्तु रामकी कथा तो भारतके आदि-काव्यका विषय रहा और उसकी ऐसी सजीव और उदात्त परम्परा रही कि रामके चरित्रका वर्णन करनेके लिये प्रबन्ध-काव्यके अतिरिक्त किसी भी कविको कोई माध्यम अच्छा ही नहीं लग सकता था। उसका एक विशेष उद्देश्य था और आदिसे अन्त-तक बँधी हुई एक पूर्ण कथाधारा थी जिसमें रामके चरित्रके द्वारा मानव-जीवनके सब प्रकारके सम्बन्धोंका उदात्त स्वरूप खिल गया था।

सूरदासजीने कृष्णकी केवल बाल और यौवन दो ही दशाओंका चित्रण किया और इसमें संदेह नहीं कि इन दोनोंका चित्रण करनेमें उन्होंने काव्य-कौशलकी पराकाष्ठा दिखला दी। आचार्य शुक्लजीने लिखा है—'बालवृत्ति और यौवन-वृत्ति इन दोनोंके अन्तर्गत आए हुए व्यापारोंकी उद्भावना क्रीडा, उमङ्ग और उद्रेकके रूपमें ही है। लोक-संघर्षसे उत्पन्न विविध व्यापारोंकी योजना सूरका उद्देश्य नहीं है। उनकी रचना जीवनकी अनेक-रूपताकी ओर नहीं गई है। जीवनकी गंभीर समस्याओंसे तटस्थ रहनेके कारण उनमें वह वस्तुगांभीर्य नहीं है जो गोस्वामीजीकी रचनाओंमें है। परिस्थितिकी गंभीरताके अभावसे गोपियोंके वियोगमें भी वह गंभीरता नहीं दिखाई पड़ती जो

सीताके वियोगमें है। उनका वियोग खाली बैठेका काम-सा दिखाई पड़ता है।'

सबसे बड़ी बात तो यह है कि कृष्णजीका चरित्र स्वयं ही लीलामय है। उनके जितने कार्य हैं उन सबके पीछे एक विचित्र प्रकारका अगंभीर स्पर्श है और उस अगंभीर स्पर्शमें उनकी अलौकिक दिव्य योगशक्ति भी है। जयद्रथके वधके समय वे कृत्रिम सन्ध्या दिखा सकते हैं, द्रौपदीके चीरहरणके समय वे वस्त्रोंका अम्बार लगा सकते हैं, 'अश्वत्थामा हतः नरो वा कुंजरो वा' का पाठ पढ़ाकर वे द्रोणाचार्यका वध करा सकते हैं और तृणका संकेत करके जरासन्धको भीमके द्वारा समाप्त करा सकते हैं। वे पुतली नचानेवाले नटके समान केवल उँगलियाँभर चलाते हैं और उनके साथके सब लोग काठकी पुतली बने हुए उनके संकेतसे चलते रहते हैं। उनका यह क्रीडापूर्ण जीवन ही उनके अगंभीर वातावरणके लिये उत्तरदायी है। इसीलिये सूरकी रचनामें भी वह गंभीरता नहीं आ पाई जो रामके उस चरित्रमें है जिसके संबंधमें कहा गया है—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति॥

[ऐसे लोकोत्तर महापुरुषोंका चरित्र कौन वर्णन कर सकता है जो वज्रसे भी अधिक कठोर और फूलसे भी अधिक कोमल होता है।]

अगंभीरताका एक कारण यह भी है कि सूरने श्रृंगार और वात्सल्यका ही वर्णन किया है और आचार्योंने उन्हें इन दोनों रसोंका सबसे बड़ा कवि माना भी है। वात्सल्यके अन्तर्गत बालकोंके खिलवाड़, उनका रूठन-मनावन, खेलकूद आदिका वर्णन निश्चित रूपसे अगंभीर ही होगा और उसी अवस्थामें व्रजकी गोपांगनाओंके साथ हास-परिहास नृत्य-

विनोद आदिका वर्णन भी उसी अगंभीरताके साथ ही होगा। इसीलिये सूरके काव्यमें वह उदात्त गंभीरता नहीं आ पाई जो आदिसे अन्त-तक तुलसीकी सब रचनाओंमें विद्यमान है।

मर्यादामें बंधे हुए तुलसीने अपने काव्योंमें कहीं एक भी पंक्ति ऐसी नहीं लिखी जिसे संसारके किसी भी समाजका कोई भी व्यक्ति सामाजिक शीलके विरुद्ध कह सके। किन्तु सूरदासके तो अनेक पद ऐसे हैं जिसमें वे व्रीडाजनक अश्लीलताकी सब सीमा लाँघ गए हैं। उसका कारण भी यही है कि वे कृष्णको सखा मानते थे और उस नाते अपने सखा और उनकी प्रेयसीके सम्बन्धमें जो चाहे सो कह सकते थे। किन्तु तुलसीदासजीने अपने इष्टदेव स्वामी रामका जो वर्णन किया है उसमें इस प्रकारके वर्णनके लिये कोई स्थान ही नहीं है। उन्होंने सीताजीकी सुन्दरताका भी वर्णन किया है, संयोग श्रृंगारके रूपमें राम और सीताके प्रथम मिलनकी चर्चा भी की है किन्तु कहीं एक भी शब्द, एक भी पंक्ति ऐसी नहीं आ पाई कि कोई गोस्वामीजीपर उँगली-तक उठा सके। यही उनकी सर्वश्रेष्ठताका सबसे बड़ा प्रमाण है। शुद्ध प्रांजल भाषा, संस्कृतकी कोमलकान्त पदावलीसे युक्त ब्रज और अवधीकी रचनाएँ, रामका लोकमंगल स्वरूप और संसार भरको केवल भक्तिका ही नहीं वरन् सुखमय सामाजिक सह-अस्तित्वमय और शीलमय जीवनका संदेश देनेवाला यदि संसारका कोई कवि है तो वह केवल तुलसीदासजी ही हैं। इस दृष्टिसे वे केवल भारतके ही नहीं, संसारके सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं जिनकी तुलना आजतक-के किसी भी कविसे करना कोरी धृष्टता होगी। इसलिये यही कहना अत्यन्त उचित है—

तुलसी नहीं नर था कभी सुर था सुधा बरसा गया॥

७

गोस्वामीजीकी भाषा और रचना-पद्धति

जिनकी रचनामें मिली, भाषा बिविध प्रकार ।

गोस्वामीजी जिस समय अवतरित हुए उस समय आर्यावर्त्तमें ब्रज और अवधी दो भाषाओंके माध्यमसे काव्य-रचना हो रही थी। ब्रजभाषाके प्रारम्भिक ग्रन्थोंकी जानकारी तो हमें आज नहीं है किन्तु पृथ्वीराज-रासोपर भी किसी न किसी रूपमें ब्रजभाषाका प्रभाव पड़ा ही है। खुसरो और नामदेवकी कुछ रचनाएँ भी ब्रजभाषामें पाई जाती हैं। तेरहवीं शताब्दीसे तो ब्रजभाषाकी रचनाएँ इतनी पुष्ट और प्रौढ मिलती हैं कि प्रतीत होता है सौ-दो-सौ वर्ष पूर्वसे उसमें साहित्य-रचना अवश्य होती चली आ रही होगी और बहुत सम्भव है वह साहित्यिक भाषा लोक-भाषासे दूर भी पड़ती गई हो और इसीलिये कविवर सूरदासजीको उसमें लोक-भाषाकी शक्ति डालकर उसे प्राणवान् बनानेका विचार करना पड़ा हो। ब्रजभाषाका यह प्रचलित साहित्यिक रूप सूरदासजीका ही स्थिर किया हुआ है जिसे आगेके सभी कवियोंने अपना लिया।

अवधीमें भी पन्द्रहवीं शताब्दीसे अत्यन्त पुष्ट रचनाएँ मिलने लगती हैं और सोलहवीं शताब्दीके मध्यसे तो यह परम्परा बराबर ही चलती चली आई है। अतः, गोस्वामीजीका काव्य-जीवन प्रारम्भ होनेके कमसे कम पाँच या साढ़े पाँच सौ वर्ष पूर्वसे ब्रजभाषामें और प्रायः चार या साढ़े चार सौ वर्ष पूर्वसे अवधीमें साहित्य-रचनाका श्रीगणेश हो गया था। इस अवधिमें ये भाषाएँ पर्याप्त रूपसे परिपुष्ट होकर साहित्यिक

व्यवहारमें आने लग गई थीं। किन्तु ब्रजभाषाको निखारा सूरदासजीने और अवधीको निखारा प्रेमाख्यान रचनेवाले सूफ़ियोंने।

गोस्वामीजीने जब 'भाषा' में 'हरिगुण-गान'का निश्चय किया तब उनके सामने काव्यभाषाके ये ही दो रूप थे। किन्तु इनमें थोड़ा अन्तर यही था कि अवधीका विकास कथा-काव्यके अनुरूप हो रहा था और ब्रजका मुक्तक काव्यके अनुरूप। गोस्वामीजीने अवधीको कथाकाव्यके अनुरूप समझकर उसीका प्रयोग किया क्योंकि उन्हें तो रामकी कथा लिखनी थी, सूरदासजीकी भाँति स्फुट पदोंकी रचना तो करनी थी नहीं। उन्हें तो रामचरितके माध्यमसे देशकी राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्थामें भी सुधार करना था। यह कार्य फुटकर गेय पदोंकी रचना कर देने मात्रसे सम्भव ही नहीं था। इसके लिये कोई पूरा उदात्त चरित सामने रखना आवश्यक था और यह तभी हो सकता था जब कथाकाव्यका आश्रय लिया जाता। यही कारण है कि गोस्वामीजीने रामचरितमानसकी रचना अवधीमें की — उस अवधीमें जिसमें कथा-काव्यकी रचना सफलता-पूर्वक की जा चुकी थी। गोस्वामीजीने यह रामकी कथा उस क्षेत्रकी भाषामें ही कहनी ठीक भी समझी जिस क्षेत्रको रामका जन्म-स्थान होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

किन्तु गोस्वामीजीने अपने दूसरे मुख्य ग्रन्थ विनयपत्रिकाकी रचना ब्रजभाषामें की। भाषाके अनुसार गोस्वामीजीकी रचनाओंका वर्गीकरण इस प्रकार होगा—

अवधी—रामचरितमानस, दोहावली, पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल, बरवै रामायण, रामलला-नहछू, वैराग्य-संदीपिनी और रामाज्ञा-प्रश्न।

ब्रजभाषा—विनय-पत्रिका, गीतावली, कृष्ण-गीतावली और कवितावली।

रामचरितमानसकी भाषा

'भाषा' शब्दका प्रयोग काव्यकी देशी भाषाके लिये सम्भवतः गोस्वामीजीने ही सबसे पहले किया है। देववाणीसे भिन्नता दिखानेके लिये उन्होंने इस शब्दका प्रयोग 'रघुनाथगाथा'के प्रसंगमें इसलिये किया कि उन्हें काव्यग्रन्थ और नीतिग्रन्थ दोनोंकी रचना एक साथ करनी थी। गोस्वामीजीके पूर्व लोकभाषामें जो कथाकाव्य रचे जाकर प्रसिद्ध हो चुके थे उनकी भाषा एक तो ठीक लोक-प्रचलित या ठेठ थी, दूसरे उनमें काव्यतत्त्व कम था सूफ़ीमतका प्रचार अधिक। उनमें भाषाकी शुद्धता और प्रौढताका तत्त्व भी कम था। उनमेंसे किसी-किसीकी भाषा तो इतनी अव्यवस्थित और खिचड़ी थी कि उसे शुद्ध रूपसे अवधी कहा भी नहीं जा सकता।

प्रसङ्गानुकूल शब्दावली

अवधीके सूफ़ी कवियोंकी रचनाओंमें युद्धका वर्णन हो या प्रेमका, सर्वत्र एक ही प्रकारकी भाषा पाई जाती है। गोस्वामीजी इन लोगोंकी भाँति अशिक्षित या अल्पशिक्षित तो थे नहीं, अतएव उन्होंने मानसकी भाषामें इस बातका बराबर ध्यान रक्खा कि जहाँ केवल इति-वृत्तात्मक प्रसंग आवें या जहाँ अल्प-शिक्षित पात्रों-द्वारा संवादोंकी योजना करनी पड़े वहाँकी भाषा तो अत्यन्त तरल और ठेठ रक्खो जाय किन्तु जहाँ आवेगशील भावना, सरस वर्णन, सिद्धान्तकी बात, भक्ति आदिके प्रसङ्ग, स्तोत्र या सांग रूपकोंके माध्यमसे विषयको हृदयंगम करानेका अवसर आवे वहाँकी भाषा तत्सम-प्रधान और शब्दावली भी संस्कृतनिष्ठ, मधुर तथा प्रवाहपूर्ण कर दी जाय। काव्यकी सरसता और चमत्कारिता तो वस्तुतः शब्दोंके उचित प्रयोगपर ही निर्भर होती है। यह सब शब्दोंका ही तो खेल है। यदि मधुर प्रसंगोंके अवसरपर कर्कश,

द्वित्व-वर्णयुक्त तथा ओजःपूर्ण शब्दावलीका प्रयोग किया जाय तो वह कैसे सुन्दर लग सकती है ?

गोस्वामीजी संस्कृतके प्रकांड पंडित थे। शब्द और अर्थपर उनका अखंड अधिकार था। इसलिये अवसरके अनुकूल शब्द-योजना करनेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई; यहाँ तक कि ठेठ देशज शब्दोंको भी उन्होंने इतना सँवार दिया कि मानसमें बहुलताके साथ प्रयुक्त उनकी कोमलकान्त-पदावलीके साथ वे पूर्णतः घुल-मिल गए हैं। उनकी अनेक शैलियोंवाली शब्दावलीमेंसे कुछ उदाहरण हम यहाँ दे रहे हैं—

१. एक छत्र एक मुकुट-मनि, सब बरननि-पर जोय।
तुलसी रघुबर नामके, बरन बिराजत दोय॥

२. जौ तुम्हरे मन अति सन्देहू।
तौ किन जाइ परीछा लेहू॥

३. ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥

४. रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी।
भामिनि भइउ दूधकै माखी॥

५. आगे चले बहुरि रघुराया।
रिष्यमूक परबत नियराया॥

६. सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा।
दीपसिखा सोइ परम प्रचण्डा॥

७. क्रुद्धे कृतांत समान कपि तन स्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहि निसाचर कटक भट बलवन्त जिमि घन गाजहीं॥

विनयपत्रिका

विनयपत्रिकाकी भाषा शुद्ध ब्रज है। इसके प्रारम्भिक ६१ पद तो

स्तोत्र ही हैं जिनमेंसे कुछ तो ऐसे हैं कि यदि एकआध स्थानपर आए हुए क्रियापद एवं विभक्तियाँ हटा दी जायँ तो वह स्तोत्र संस्कृतका ही प्रतीत होने लगे। देखिए—

सदा शंकरं शंप्रदं सज्जनानंददं शैलकन्यावरं परम रम्यं।
काममदमोचनं, तामरस-लोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं॥
कंबु-कुंदेन्दु-कर्पूरगौरं शिवं सुन्दरं सच्चिदानन्दकंदं।
सिद्ध-सनकादि-योगींद्र-वृन्दारका-विष्णु-विधि-वन्द्य चरणारविंदं॥
ब्रह्मकुलवल्लभं सुलभमतिदुर्लभं विकटवेषं विभुं वेदपारं।
नौमि करुणाकरं गरलगंगाधरं, निर्मलं निर्गुणं निर्विकारं॥
लोकनाथं, शोकशूलनिर्मूलिनं, शूलिनं, मोहतम-भूरि-भानुं।
कालकालं, कलातीतमजरं, हरं, कठिन-कलिकाल-कानन-कृशानुं॥
तज्ञमज्ञानपाथोधि-घटसम्भवं सर्वगं सर्वसौभाग्य-मूलं।
प्रचुर-भव-भंजनं प्रणत-जन-रंजनं दासतुलसी शरण सानुकूलं॥

आगेके दो सौ पदोंकी भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण तो अवश्य ही है किन्तु उसमें ग्राम्यत्व कहीं नहीं है। देशज या ठेठ शब्दोंका प्रयोग भी नहींके समान है। विनयोंके प्रसंगमें गोस्वामीजीने उसी प्रकारकी भाषाका अवलम्ब लिया है जिसका प्रायः चलन था किन्तु निरर्थक और पादपूर्त्यर्थ शब्द वे कहीं नहीं लाए हैं।

गीतावली

गीतावलीकी भाषा अत्यन्त मधुर शब्दोंसे युक्त, रसमयी और हृदयको प्रसन्न कर देनेवाली ब्रजभाषा है। यह काव्य ही गेय है, इसलिये इसमें कठोर और कर्कश पदावलीका प्रयोग उचित भी नहीं था। गोस्वामीजीने इस बातका बराबर ध्यान रक्खा है। इसीसे इसका प्रत्येक पद रसकी धारा बरसाता मिलता है।

कवितावली

कवितावलीकी भाषा भी ब्रज ही है किन्तु जहाँ इसके अनेक छन्दोंमें अत्यन्त ओजःपूर्ण शब्दोंमें युद्धादिका वर्णन मिलता है वहाँ कोमल वर्णनोंके प्रसंगमें मधुर और श्रुतिप्रिय शब्दोंकी लड़ी भी मिलती है। अपने दैन्य-वर्णनके प्रसंगमें तो कविने अत्यन्त सीधी-सादी प्रसादगुण-सम्पन्न भाषाका ही प्रयोग किया है।

कृष्णगीतावली

कृष्णगीतावली रचना भी ब्रजभाषाके गेय पदोंमें है जिनमें ओजभरी शब्दावली आ ही नहीं सकती और केवल मधुर शब्दोंका प्रयोग ही ठीक रहता है। इसीलिये गोस्वामीजीने गीतावली और कृष्णगीतावली दोनोंमें एक ही प्रकारकी भाषाका प्रयोग किया गया है।

दोहावली

दोहावलीमें सरस वर्णनोंका तथा शौर्य-पराक्रम आदिके वर्णनका कोई अवसर नहीं आता है। इसलिये सामान्यतया उसमें कविने प्रसाद-गुण-सम्पन्न भाषाका ही प्रयोग किया है जैसा नीतिके उपदेशके लिये अपेक्षित भी होता है।

जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, रामललानहछू, बरवै रामायण

जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, रामललानहछू तथा बरवै रामायणकी भाषामें मधुर शब्दोंकी तरल धारा बहती है। ये सभी काव्य ठेठ अवधीमें लिखे गए हैं। इनमें शब्दोंका चयन इस कौशलके साथ किया गया है कि शब्द एकके पश्चात् एक स्वयं स्वाभाविक रूपसे निकलते चले आते प्रतीत होते हैं। बरवै छन्द तो अपनी नैसर्गिक मधुरताके लिये प्रसिद्ध ही है। नहछूका सोहर छन्द भी मधुर और गेय है। स्त्रियों-द्वारा

गानेके लिये लिखे जानेके कारण कविने इनमें वाणीकी मिठास कूट-कूटकर भर दी है।

रामाज्ञाप्रश्न और वैराग्यसंदीपिनी

रामाज्ञा-प्रश्न और वैराग्य-संदीपिनीकी भाषा अत्यन्त सरल है। साहित्यकी दृष्टिसे भी ये ग्रन्थ महत्त्वके नहीं हैं। इनकी भाषा 'आगे चले बहुरि रघुराया' के ढंग की है।

गोस्वामीजीजी भाषाकी-सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने लोकमें प्रचलित सिद्धोक्तियों और लोकोक्तियोंका प्रचुर प्रयोग करके उसे इतना लोकप्रिय एवं लाक्षणिक बना दिया है कि वह बड़ी मार्मिक हो गई है। यह कौशल कविने ब्रज और अवधी दोनोंमें किया है इसीसे दोनों भाषाओंपर उनका समान अधिकार प्रकट होता है।

रचना-पद्धति

जिस प्रकार गोस्वामीजीने उस समय हिन्दीके काव्य-क्षेत्रमें प्रयुक्त दोनों भाषाओंमें सफल रचनाएँ कीं उसी प्रकार उस समय प्रचलित रचना-पद्धतियोंमेंसे भी प्रत्येकमें उन्होंने इस कौशलके साथ रामका गुणगान किया कि प्रत्येक पद्धतिके वे श्रेष्ठतम कविकी श्रेणीमें आ गए। उस समय कवि-समाजमें चारणोंकी छप्पय-पद्धति, प्रेमाख्यान लिखनेवालोंकी दोहे-चौपाईवाली पद्धति, गीतिकारोंकी पदावलि-पद्धति, नीति और सूक्ति कारोंकी दोहापद्धति और भाटोंकी कवित्त-सवैया-पद्धतिका प्रचलन था। गोस्वामीजीने इसीलिये इन सभी पद्धतियोंमें रामका गुणगान किया कि सभी शैलियोंवाले लोग अपनी-अपनी रुचिके अनुकूल रामकथाका आनन्द ले सकें। उन्होंने मानसकी रचना दोहे-चौपाइयोंमें, विनय-पत्रिका और गीतावलीकी रचना पदोंवाली शैलीमें, हनुमान-बाहुककी रचना छप्पयवाली शैलीमें, कवितावलीकी रचना कवित्त-सवैयावाली पद्धतिपर और

दोहावलीकी रचना सूक्तिकारोंकी उपदेशवाली पद्धतिपर की, फिर भी ऐसा कहीं नहीं प्रतीत होता कि कवि किसी एक ही शैलीका पंडित है। उनकी सबमें समान गति, सबपर समान अधिकार और सबमें समान सामर्थ्य प्रतीत होता है। प्रत्येक शैलीका एक-एक उदाहरण लीजिए—

दोहे-चौपाईकी पद्धति—

संकर चापु जहाजु, सागर रघुबर बाहुबलु।
बूड़ सो सकल समाजु, चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस॥

प्रभु दोउ चाप-खंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥
रामरूप राकेसु निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥
सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥
कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई॥
तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू॥
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी॥
चतुर सखीं लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥
सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहिं सभीत देत जयमाला॥
गावत छबि अवलोकि सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली॥

पद-शैली—

कबहिं देखाइहौ हरि चरन।
समन सकल कलेस कलिमल सकल मंगल करन॥
सरद भव सुंदर तरुनतर अरुन बारिज बरन।
लच्छि लालित ललित करतल छबि अनूपम धरन॥

गंग जनक अनंग-अरि प्रिय कपट्टु बटु बलि छरन ।
बिप्रतिय नृग बधिक कै दुख दोष दारन दरन ॥
सिद्ध-सुर-मुनि-बृंद बंदित सुखद सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारनतरन ॥
कृपासिंधु सुजान रघुबर प्रनत आरति-हरन ।
दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥

छप्पय-पद्धति—

पालो तेरे टूकको परे हूँ चूक किए न,
कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिए ।
भोरानाथ भोरे हौ, सरोष होत थोरे दोष,
पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिए ॥
अंबु तू हौं अंबुचर अंत तू हौं डिंभ सो न,
बूझिए विलंब अवलंब मेरे तेरिए ।
बालक बिकल जानि पाहि प्रेम पहिचानि
तुलसीकी बाँहपर लामी लूम फेरिए ॥

कवित्त-पद्धति—

सुनिए कराल कलिकाल भूमिपाल तुम !
जाहि घालो चाहिए कहौं धौं राखे ताहि को ?
हौं तो दीन दूबरो, बिगारो ढारो रावरो न,
मैं हू तैं हू ताहिको सकल जग जाहिको ।
काम कोह लाइके देखाइयत आँखि मोहिं,
एते मान अकस कीबेको आपै आहि को ?
साहिब सुजान जिन स्वानहूको पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम राम साहिको ॥

सवैया-पद्धति—

बिष पावक ब्याल कराल गरै, सरनागत तौं तिहुँ ताप न डाढ़े।
भूत बैताल सखा भव नाम दलै पलमें भवके भय गाढ़े॥
तुलसीस दरिद्र सिरोमनि सो सुमिरे दुखदारिद होहिं न ठाढ़े।
भौनमें भाँग धतूरोई आँगन, नाँगेके आगे हैं माँगने बाढ़े॥

दोहा-पद्धति—

का भाषा का संसकृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवै कामरी, का लै करै कुमाँच॥

इस प्रकार गोस्वामीजी काव्यके सभी क्षेत्रोंमें अद्वितीय रहे। हिन्दीका ही नहीं, अन्य भाषाओंका भी कोई कवि उनके कौशल-तक नहीं पहुँच पाया। इसलिये उनके सम्बन्धमें यह कहना ठीक ही है कि—

तुलसी-गंग दुयौ भए, सुकबिनके सरदार।
जिनकी कवितामें लही, भाषा बिबिध प्रकार॥

॥ सम्पूर्ण ॥

परिशिष्ट १

रामचरित-मानसके सुन्दर, भावपूर्ण, नीतिपूर्ण, काव्यगुण पूर्ण अंश

जो सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर-बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन ॥
नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज-नयन ।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीरसागर सयन ॥
कुंद इंदु सम देह, उमा-रमन करुना-अयन ।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्द्दन-मयन ॥
बंदउँ गुरुपद-कंज, कृपा-सिंधु नररूप हरि ।
महामोहतम-पुंज, जासु बचन रबिकर-निकर ॥

बंदउँ गुरु-पद-पदुम-परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन । बरनउँ रामचरित भवमोचन ॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई । राम-कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस-परस कुधात सुहाई ॥

बंदउँ संत समान-चित, हित अनहित नहिं कोइ ।
अंजलि-गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ ॥

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना । पर अघ सुनइ सहस दस काना ॥
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही । संतत सुरानीक हित जेही ॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा । सहस नयन पर-दोष निहारा ॥

बंदउँ संत-असज्जन चरना । दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं । मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥

सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम भेद बिधि कीन्ह ।
ससि सोषक पोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह ॥

कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू । सकल कला सब बिद्या हीनू ॥
आखर अरथ अलंकृति नाना । छंद प्रबंध अनेक बिधाना ॥
भाव भेद रसभेद अपारा । कबित दोष-गुन बिबिध प्रकारा ॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरे । सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे ॥

भनिति मोरि सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक ।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति, जिन्हके बिमल बिबेक ॥

एहि महँ रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुरान श्रुति-सारा ॥
बिधु बदनी सब भाँति सँवारी । सोह न बसन बिना बर नारी ॥
सब गुन रहित कुकबि कृत बानी । राम नाम जस अंकित जानी ॥
धूमउ तजइ सहज करुआई । अगरु प्रसंग सुगंध बसाई ॥

स्याम-सुरभि-पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान ।
गिरा ग्राम्य सिय-राम-जस, गावहिं सुनहिं सुजान ॥

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी । अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी ॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई । लहहिं सकल सोभा अधिकाई ॥
तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं । उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं ॥

अति अपार जे सरित बर, जौं नृप सेतु कराहिं ।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु श्रम पारहि जाहिं ॥
बंदउँ मुनि-पद-कंज, रामायन जेहिं निरमयउ ।
सखर सुकोमल मंजु, दोष-रहित दूषन-सहित ॥

जनक-सुता जग-जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधानकी ॥
ताके जुग पद-कमल मनावउँ। जासु कृपा निरमल मति पावउँ ॥

गिरा-अरथ जल-बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता-राम-पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोरे मत बड़ नामु दुहूँतें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें ॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जनकी। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी ॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥
उभय अगम जुग सुगम नामतें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म रामतें ॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद-रासी ॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी ॥
नाम निरूपन नाम जतनतें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतनतें ॥

निरगुनतें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ रामतें, निज बिचार अनुसार ॥
ब्रह्म रामतें नामु बड़, बरदायक बर दानि।
रामचरित सतकोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि ॥
प्रभु तरु-तर कपि डारपर, ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न रामसे, साहिब सीलनिधान ॥
रामचरित राकेस-कर-सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित बिसेषि बड़ लाहु ॥

मानसका रूपक

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरित-मानस कबि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू । बेद पुरान उदधि घन साधू ॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी । मधुर मनोहर मंगलकारी ॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी । सोइ स्वच्छता करइ मल हानी ॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई । सोइ मधुरता सुसीतलताई ॥
सो जल सुकृत सालि हित होई । राम भगत जन जीवन सोई ॥
मेधा महि गत सो जल पावन । सकिलि स्रवन-मग चलेउ सुहावन ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना । सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥

सुठि सुंदर संबाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि ।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ॥

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना । ग्यान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा । बरनब सोइ बर बारि अगाधा ॥
राम सीय जल सलिल सुधासम । उपमा बीचि बिलास-मनोरम ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई । जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई ॥
छंद सोरठा सुंदर दोहा । सोइ बहुरंग कमल-कुल सोहा ॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरंद सुबासा ॥
सुकृत-पुंज मंजुल अलि-माला । ग्यान बिराग बिचार मराला ॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती । मीन मनोहर ते बहु भाँती ॥
अरथ धरम कामादिक चारी । कहब ग्यान बिग्यान बिचारी ॥
नव रस जप तप जोग बिरागा । ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥
सुकृती साधु नाम गुन गाना । ते बिचित्र जल बिहग समाना ॥
संतसभा चहुँ दिसि अँबराई । श्रद्धा रितु बसंत सम गाई ॥
भगति निरूपन बिबिध बिधाना । छमा दया दम लता बिताना ॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना । हरि पद रति रस बेद बखाना ॥
औरउ कथा अनेक प्रसंगा । तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा ॥

पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह-जल, सींचत लोचन चारु॥

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरबर मानस अधिकारी॥
अति खल जे बिषई बग कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना॥
तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत एहिं सर अति कठिनाई। राम-कृपा बिनु आइ न जाई॥
कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्हके बचन बाघ हरि ब्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥
बन बहु बिषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना॥

जे श्रद्धा संबल रहित, नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति, जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ॥

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा।
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा॥
सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेहीं। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥
सोइ सादर सर मज्जन करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥
ते नर यह सर तजइ न काऊ। जिन्हके रामचरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई॥
अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥
चली सुभग कबिता सरिता सो। राम-बिमल-जस-जल-भरिता सो॥

सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला ॥
नदी पुनीति सुमानस-नंदिनि। कलिमल-तृन-तरु-मूल निकंदिनि ॥

श्रोता त्रिबिध समाज पुर, ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संतसभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल ॥

रामभगति सुरसरितहिं जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई ॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन ॥
जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा ॥
त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी ॥
मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही ॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा ॥
उमा महेस बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभाँती ॥
रघुबर जनक अनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई ॥

बालचरित चहुँ बंधुके, बनज बिपुल बहुरंग।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग ॥

सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई ॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका ॥
सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई ॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी ॥
सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू ॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं ॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी ॥

समन अमित उतपात सब, भरत चरित जप जाग।
कलि अघ खल अवगुन कथन, ते जलमल बग काग ॥

कीरति सरित छहू रितु रूरी । समय सुहावनि पावनि भूरि ॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू । सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू ॥
बरनब राम बिबाह समाजू । सो मुद मंगलमय रितुराजू ॥
ग्रीषम दुसह राम बन गमनू । पंथकथा खर आतप पवनू ॥
बरषा घोर निसाचर रारी । सुरकुल सालि सुमंगलकारी ॥
रामराज सुख विनय बड़ाई । बिसद सुखद सोइ सरद सोहाई ॥
सती सिरोमनि सिय गुनगाथा । सोइ गुन अमल अनूपम पाथा ॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई । सदा एकरस बरनि न जाई ॥

अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास ।
भायप भलि चहु बंधुकी, जल माधुरी सुबास ॥

आरति बिनय दीनता मोरी । लघुता ललित सुबारि न थोरी ॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी । आस पिआस मनोमल हारी ॥
राम सुप्रेमहि पोषत पानी । हरत सकल कलि कलुष गलानी ॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा । समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥
काम कोह मद मोह नसावन । बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन ॥
सादर मज्जन पान किए तें । मिटहिं पाप परिताप हिएँ तें ॥
जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए । ते कायर कलिकाल बिगोए ॥
तृषित निरखि रबि कर भव बारी । फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ॥
मति अनुहारि सुबारि गुन-गन गनि मन अन्हवाइ ।
सुमिरि भवानी संकरहिं, कह कबि कथा सुहाइ ॥

× × ×

जलु पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भलि ।
बिलग होइ रसु जाइ, कपट खटाई परत पुनि ॥

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम-बस सगुन सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥
हरष विषाद ग्यान अग्याना । जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानन्द परेस पुराना ॥
जथा गगन घन-पटल निहारी । झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी ॥
चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ । प्रगट जुगल ससि तेहिके भाएँ ॥
उमा राम-बिषइक अस मोहा । नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥
बिषय करन सुर जीव समेता । सकल एकतें एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान-गुन-धामू ॥
जासु सत्यतातें जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥

रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानु कर बारि ।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई । जदपि असत्य देत दुख अहई ॥
जौं सपने सिर काटै कोई । बिनु जागें न दूरि दुख होई ॥
जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई । गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ॥

व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप ।
भगत हेतु नाना बिधि, करत चरित्र अनूप ॥

स्याम गौर मृदु बयस किसोरा । लोचन सुखद बिस्व चित चोरा ॥
मूरति मधुर मनोहर देखी । भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी ॥
स्याम-गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनयन नयन-बिनु बानी ॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥

सुंदरता कहुँ सुंदर करई । छबिगृह दीपसिखा जनु बरई ॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥
मोहिं अतिसय प्रतीति जिय केरी । जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥
जिन्हकै लहहिं न रिपु रन पीठी । नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी ॥
मंगन लहहिं न जिन्हके नाहीं । ते नरवर थोरे जग माहीं ॥

करत बतकही अनुज सन, मन सिय-रूप लोभान ।
मुख सरोज मकरन्द छबि, करइ मधुप इव पान ॥

थके नयन रघुपति छबि देखें । पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें ॥
अधिक सनेह देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥
लोचन मग रामहि उर आनी । दीन्हें पलक कपाट सयानी ॥
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही । चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही ॥
प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा । सिय-मुख-सरिस देखि सुखु पावा ॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं । सीय बदन सब हिमकर नाहीं ॥

जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु, दिन मलीन सकलंक ।
सिय मुख समता पाव किमि, चंदु बापुरो रंक ॥

घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई । ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई ॥
कोक-सोकप्रद पंकज-द्रोही । अवगुन बहुत चंद्रमा तोही ॥
बैदेही मुख पटतर दीन्हें । होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हें ॥
जिन्हके रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥
देखहिं रूप महा रनधीरा । मनहुँ बीर-रसु धरें सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा ॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई । नरभूषन लोचन सुखदाई ॥

नारि बिलोकहिं हरषि हियँ, निज निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप ॥
बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसें । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें ॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥
हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता । इष्टदेव इव सब सुख दाता ॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया । सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया ॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ । कवन प्रकार कहै कवि कोऊ ॥
सिय सोभा नहिं जाइ बखानी । जगदंबिका रूप गुनखानी ॥
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई । कुकबि कहाइ अजसु को लेई ॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया । जग असि जुबति कहाँ कमनीया ॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी । रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमासम किमि बैदेही ॥
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू । मथै पानि पंकज निज मारू ॥

एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुंदरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समेत कबि, कहहिं सीय समतूल ॥
उदित उदयगिरि मंचपर, रघुबर बाल पतंग ।
बिकसे संत-सरोज सब, हरषे लोचन भृङ्ग ॥
प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधु मंडल डोल ॥
गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी । प्रगट न लाज निसा अवलोकी ॥
लोचन जलु रह लोचन कोना । जैसें परम कृपन-कर सोना ॥

जेहिकें जेहिपर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु संदेहू॥
सबकर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सियकर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥
संभुचाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥
राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करइ का सुधा तड़ागा॥
का बरषा जब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।

बिद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रलापु॥

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥
मनु मलीन तनु सुंदर कैसे। विष-रस भरा कनक घटु जैसे॥
बररै बालकु एकु सुभाऊ। इन्हहिं न संत बिदूषहिं काऊ॥
बिहँसे लखनु कहा मन माहीं। मूँदे आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥
गुनह लखन कर हमपर रोषू। कतहुँ सिधाइहु ते बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोपु मोर अति घोर कृसानू॥
समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महामहीप भए पसु आई॥
मैं एहि परसु काटि बल दीन्हें। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हें॥
जय रघुबंस-बनज-बन-भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जिन्हके जस प्रतापके आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे॥
तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हें। देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हें॥
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुखसंपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥

बनइ न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभदाता ॥
चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई ॥
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ पावा ॥
सानुकूल बह त्रिविध बयारी। सघट सबाल आव बरनारी ॥
लावा फिरि-फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा ॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई ॥
छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु-पर देखी ॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ॥

मंगलमय कल्यानमय, अभिमत फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित, भए सगुन एक बार ॥

राम सीय-सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं ॥
अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमीकें ॥

अयोध्या-कांड

रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई । उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई ॥

राजन राउर नामु जसु, सब अभिमत दातार ।
फल अनुगामी महिपमनि, मन अभिलाषु तुम्हार ॥

देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती ॥
रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी । भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
कुबरीं करि कबुली कैकेई । कपट छुरी उर पाहन टेई ॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे । चरइ हरित तिन बलिपसु जैसे ॥
सुनत बात मृदु अंत कठोरी । देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ॥
जौं बिधि पुरब मनोरथु काली । करौं तोहि चख पूतरि आली ॥
बिपति बीजु बरषा रितु चेरी । भुइँ भइ कुमति कैकई केरी ॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा । बर दोउ दल दुख फल परनामा ॥

केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई ।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई ॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई ।
तुलसी नृपति भवितव्यता बस काम कौतुक लेखई ॥

दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू । जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥
ऐसिउ पीर बिहँसि तेहिं गोई । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई ॥
नहिं असत्य सम पातक-पुंजा । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए । बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥

भूप मनोरथ सुभग बनु, सुख सुबिहंग समाजु ।
भिल्लिनि जिमि छाँड़न चहति, बचनु भयंकरु बाजु ॥
सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू । ससि-कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेईं । दीन्हिसि अचल बिपतिकै नेईं ॥
कवनें अवसर का भयउ, गयउ नारि बिस्वास ।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अबिद्या नास ॥
सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा । तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा॥
अति कटु बचन कहति कैकेई । मानहुँ लोन जरेपर देई ॥
आगें दीखि जरत रिसि भारी । मनहुँ रोष तरवारि उघारी ॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई । धरीं कूबरीं सान बनाई ॥
लखी महीप कराल कठोरा । सत्य कि जीवनु लेइ हि मोरा ॥
जिऐ मीन बरु बारि बिहीना । मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना॥
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं । जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥
अस कहि कुटिल भई उठी ठाढ़ी । मानहुँ रोष-तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा । भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला । चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥
ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता । करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता ॥
कंठु सूख मुख आव न बानी । जनु पाठीनु दीन बिनु पानी ॥
पुनि कह कटु कठोर कैकेई । मनहुँ घाय महुँ माहुर देई ॥

दुइ कि होइ एक समय भुआला । हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि खेम कुसल रौताई ॥
फिरि पछितैहसि अंत अभागी । मारेसि गाइ नहारु लागी ॥
सोच बिकल बिबरन महि परेऊ । मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ ॥

जाइ दीख रघुबंस मनि, नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहुँ बृद्ध गजराज ॥

सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू । मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू ॥
सरुष समीप दीख कैकेई । मानहुँ मीचु घरीं गनि लेई ॥
निधरक बैठि कहइ कटु बानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान बचन सर नाना । मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना ॥
जनु कठोरपनु धरें सरीरू । सिखइ धनुष बिद्या बर बीरू ॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥

सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान ।
चलइ जोंक जल बक्रगति, जद्यपि जलिलु समान ॥

सुनि भए बिकल सकल नरनारी । बेलि बिटप जिमि देखि दवारी ॥
मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं, सोकु न हृदयँ समाइ ।
मनहुँ करुन-रस कटकई, उतरी अवध बजाइ ॥

एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ । छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥
निजकर नयन काढ़ि चह दीखा । डारि सुधा बिषु चाहत चीखा ॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघुबंस बेनु बन आगी ॥
पालव बैठि पेड़ु एहि काटा । सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा ॥
काह न पावकु जरि सकै, का न समुद्र समाइ ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ ॥

चंदु चवै बरु अनल कन, सुधा होइ विषतूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु, भरतु राम प्रतिकूल॥

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥
धरम सनेह उभयं मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी॥

पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल-भानु।
पति रबिकुल-कैरव-बिपिन-बिधु गुनं रूप निधानु॥

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥
कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भएउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअन-मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप-बाति नहिं टारन कहऊँ॥
चंद-किरन-रस-रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी॥

कर केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि मूरि॥

पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ॥
कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहिं तात केहिं भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥
सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी॥

गुरु श्रुति संमत धरम फलु, पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस॥
हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥
नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंद निसि जैसे ॥

प्राननाथ करुनायतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ॥
खग मृग परिजन नगरु बनु, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम, परनसाल सुख मूल ॥

बनदेवीं बनदेव उदारा। करिहहिं सास ससुर सम सारा ॥
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ॥
कंद मूल फल अमिय अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू ॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जलतें काढ़े ॥

मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनमकर, नतरु जनमु जग जायँ ॥

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥
सिअरें बचन सूखि गए कैसें। परसत तुहिन तामरसु जैसें ॥
मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥
अवध तहाँ जहँ रामु निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥
पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई ॥

मातु चरन सिरु नाइ, चले तुरत संकित हृदयँ।
बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृगु भाग-बस ॥

औरु करै अपराध कोउ, और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानै जोगु॥
सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहिं न सोहानि।
सरद चंद चाँदनि लगत, जनु चकई अकुलानि॥

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥
बिधि कैकई किरातिनि कीन्हीं। जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्हीं॥
बिबिध बसन उपधान तुराई। छीर फेन मृदु बिसद सुहाई॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं। निज छबि रति मनोज मृदु हरहीं॥
भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी॥

सपनें होइ भिखारि नृपु, रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥

नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना॥
प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चंदु तजि जाई॥
चरन कमल रज कहुँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
जासु नाम सुमिरत एकबारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहुँ पगहु तें थोरा॥
सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥
छेत्रु अगम गढ़ गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बर-बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा॥
संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अछयबटु मुनि मनु मोहा॥
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥

सेवहिं सुकृती साधु सुचि, पावहिं सब मन काम।
बंदी बेद पुरान-गन, कहहिं बिमल गुन-ग्राम॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारसु पावा॥
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरें तन कह सबु कोऊ॥
पिअत नयन पुट रूप-पियूषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मन मोहा॥
दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के॥
मुनि-पट कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर-कमलनि धनु तीरा॥

जटा मुकुट सीसनि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर, लसत स्वेद कन जाल॥

राजकुँअर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने॥

स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुषमा ऐन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु, सरदसरोरुह नैन॥

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह कर बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि॥
निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जिन्ह ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूख कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठएँ बन राजकुमारा॥
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥
ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरुवर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि श्रमु कीन्हा॥

जौं ए मुनि-पट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किए करतार॥

जौं ए कन्द मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं ॥
जौं माँगा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं ॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥

राम कहाँ रहें ?

सुनहुँ राम अब कहहुँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
जिन्हके श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्हके हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥

जसु तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हियँ तासु ॥

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूखन धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेखी ॥
कर निज करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा ॥ ॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं ॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा ॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्हँते अधिक गुरुहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी ॥

सबु करि माँगहिं एक फलु, राम चरन रति होउ।
तिन्हकें मन मंदिर बसहु, सिय रघुनंदन दोउ ॥

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥

जिन्हकें कपट दंभ नहिं माया। तिन्हके हृदय बसहु रघुराया॥
सबके प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाँड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं॥
जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिषतें बिष भारी॥
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥
जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे। तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे॥

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम तात।
मन मंदिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहिके हृदयँ रहहु रघुराई॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरे धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहिके उर डेरा॥

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरन्तर तासु मन, सो राउर निज गेहु॥

× × ×

उपमाओं और उत्प्रेक्षाओंकी यह मनोहर लड़ी लीजिए—

बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥
पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुरु बाँभन गाई॥

रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे । गरहिं गात जिमि आतप ओरे ॥
नगर नारि नर ब्याकुल कैसें । निघटत नीर मीन गन जैसें ॥

सचिव आगमनु सुनत सबु, बिकल भयउ रनिवासु ।
भवनु भयंकरु लाग तेहि, मानहुँ प्रेत निवासु ॥

जाइ सुमंत्र दीख कस राजा । अमिय रहित जनु चंदु बिराजा ॥
लेइ उसासु सोच एहि भाँती । सुरपुरतें जनु खसेउ जजाती ॥

प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु, चितयउ आँखि उघारि ।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत सीतल बारि ॥

हाट बाट नहिं जाइ निहारी । जनु पुर दुहुँ दिसि लागि दवारी ॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि । हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि ॥
भरत दुखित परिवारु निहारा । मानहुँ तुहिन बनज-बनु मारा ॥
कैकेई हरषित एहि भाँती । मनहुँ मुदित दव लाइ किराती ॥
सुनि उठि सहमेउ राजकुमारू । पाकें छत जनु लाग अँगारू ॥
पेड़ काट तैं पालउ सींचा । मीन जिअन निति बारि उलीचा ॥

मलिन बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भार ।
कनक कलप बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुसार ॥

कौशल्यासे भरतकी शपथ

जे अघ मातु पिता सुत मारें । गाइ गोठ महिसुर पुर जारें ॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें । मीत महीपति माहुर दीन्हें ॥
जे पातक उपपातक अहहीं । करम बचन मन भव कबि कहहीं ॥
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता । जौं यहु होइ मोर मत माता ॥

जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि, जौं जननी मत मोर॥

बेचहिं बेदु धरम दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी॥
लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा॥
पावौं मैं तिन्हकै गति घोरा। जौं जननी यहु संमत मोरा॥
जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहिं न हरि हर सुजसु सोहाई॥
तजि श्रुतिपंथ बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं॥
तिन्हकर गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं यहु जानौं भेऊ॥

कौशल्याका आश्वासन लीजिए—

बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥

वशिष्ठजी भरतको समझाते हैं—

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ॥

संसारमें कौन लोग शोचनीय हैं?—

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥
सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी॥
सोचिअ पुनि पति-बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

सोचिअ गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत, बिगत बिबेक बिराग॥

बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुरु बंधु बिरोधी ॥
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी ॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाँड़ि छलु हरि जन होई ॥
सोचनीय नहिं कोसल-राऊ। भुवन चारिदस प्रकट प्रभाऊ ॥

अनुचित उचित बिचारु तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजसके, बसहिं अमरपति ऐन ॥
कारनतें कारजु कठिन, होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थितें उपलतें, लोह कराल कठोर ॥
ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पिआइअ बारुनी, कहहु काह उपचार ॥

का आचरज भरतु अस करहीं। नहिं बिष बेलि अमिय फल फरहीं ॥
साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा ॥
जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जीवन बिटप कुठारू ॥
करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥
उलटा नाम जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥

पति देवता सुतीय मनि, सीय साँथरी देखि।
बिहरत हृदय न हहरि हर, पबितें कठिन बिसेषि ॥

झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें ॥
एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला ॥
उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ बीर रस सोवत जागा ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥
तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं बेद-बुध ते बुध नाहीं ॥

भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ॥

तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाँड़ै छोनी॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी॥
जग जस भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नबीना॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रबाहँ जल अलि गति जैसी॥

चित्रकूटमें राम-राज्यका रूपक देखिए—

रामबास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥
भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुन्दर रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। रामचरन आश्रित चित चाऊ॥

जीति मोह महिपालु दल, सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राजु पुरँ, सुख संपदा सुकालु॥

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना॥
खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष बृष साजु सराहा॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन॥
अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा॥

बेलि बिटप तृन सफल समूला । सब समाजु मुद मंगल मूला ॥

राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदयँ अति पेमु ।
तापस तप फलु पाइ जिमि, सुखी सिरानें नेमु ॥

× × ×

पेम अमिय मंदरु बिरहु, भरतु पयोधि गँभीर ।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर ॥

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा । जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा ॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत । जियकी जरनि हरत हँसि हेरत ॥

लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचन्द ।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें, भगति सच्चिदानन्द ॥

गहि पद लगे सुमित्रा अंका । जनु भेटी संपति अति रंका ॥

भरत विनय सादर सुनिअ, करिअ बिचारु बहोरि ।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि ॥

आश्रम-सागरमें मिलनेवाली करुणा-नदीका रूपक लीजिए—

आश्रम सागर सांत रस, पूरन पावन पाथु ।
सेन मनहुँ करुना सरित, लिएँ जाहिं रघुनाथु ॥

बोरति ग्यान बिराग करारे । बचन ससोक मिलत नद नारे ॥
सोच उसास समीर तरंगा । धीरज तट तरुवर कर भंगा ॥
बिषम बिषाद तोरावति धारा । भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा ॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा । सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा ॥
बनचर कोल किरात बिचारे । थके बिलोकि पथिक हियँ हारे ॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई । मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई ॥

सेवक कर पद नयनसे, मुख सो साहिबु होइ ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोइ ॥

अरण्यकांड

सीताजीको देवी अनसूया-द्वारा नारीधर्मका उपदेश—

अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसहु पतिकर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तमके अस बस मनमाहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भयँ तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग जोई॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावति श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय॥

आगे राम अनुज पुनि पाछें। मुनि बर बेष बने अति काछें॥
उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥
सुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें॥
मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला॥
राम बदनु बिलोक मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा॥
हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्हसे खल मृग खोजत फिरहीं॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥
रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपुपर कृपा परम कदराई॥

रावणसे शूर्पणखा कहती है—

राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा ॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ । श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ ॥
संगतें जती कुमंत्रतें राजा । मानतें ग्यान पानतें लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मदतें गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥
रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिअ न छोट करि ।
अस कहि बिबिध बिलाप, करि लागी रोदन करन ॥

इन नौसे विरोध करना ठीक नहीं है—

तब मारीच हृदयँ अनुमाना । नवहिं बिरोधे नहिं कल्याना ॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी । बैद बंदि कबि भानस गुनी ॥

केवल उपमानका उल्लेख करके सीताजीके नखशिखका कौशलपूर्ण वर्णन राम-द्वारा ही कराया गया है—

खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहि-भामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं । नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥

× × ×

परहित बस जिन्हके मन माहीं । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
सीता हरन तात जनि, कहहु पिता सन जाइ ।
जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहि दसानन आइ ॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना । सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना ॥

नवधा भक्तिका विवरण लीजिए—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ॥
प्रथम भगति संतन्ह-कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥

गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥
सातवँ सम मोहिमय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवँ जथालाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥
नवम सरल सब सन छल हीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥
नव महुँ एकउ जिन्हकें होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ॥

× × ×

सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ॥
राखिअ नारि जदपि उर माहीं । जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं ॥
तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिज्ञान धाम मन, करहिं निमिष महुँ छोभ ॥
लोभकें इच्छा दंभ बल, कामकें केवल नारि ।
क्रोधकें परुष बचन बल, मुनिबर कहहिं बिचारि ॥
काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोहकै धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, मायारूपी नारि ॥

गोस्वामीजीने नारीके रूपके साथ ऋतुवर्णन भी किस कौशलसे किया है—

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता । मोह-बिपिन कहुँ नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलाश्रय भारी । होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ।
काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहिं हरषप्रद बरषा एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुह-बृन्दा । होइ हिम तिन्हहिं दहइ सुख मंदा ॥

पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई॥
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥

अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जियँ जानि॥

संतोंके लक्षण सुनिए—

सुनु मुनि संतन्हके गुन कहऊँ। जिन्हतें मैं उन्हकें बस रहऊँ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥
अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म-गति परम प्रबीना॥

गुनागार संसार-दुख,-रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन्हहूँ कहुँ देह न गेह॥

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिन्द बिप्र पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥
मुनि सुनु साधुन्हके गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥

× × ×

दीप सिखा सम जुबति-तन, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सतसंग॥

किष्किन्धाकांड

मित्रके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए?—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥
जिन्हके असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥
आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जा कर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥

× × ×

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥
जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

नीति-कथनके साथ वर्षाका यह वर्णन लीजिए—

लछिमन देखु मोर गन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस, बिष्नुभगत कहुँ देखि॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमक रही घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ॥

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। खलके बचन संत सह जैसें ॥
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई ॥
भूमि परत भा डाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी ॥
समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥

हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड-बाद तें, लुप्त होहिं सदग्रंथ ॥

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका ॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी ॥
ससि-सम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारीकै संपति जैसी ॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा ॥
महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं ॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥
देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥
ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा ॥
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय-गन उपजें ग्याना।

कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूतकें उपजें, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग ॥

वर्षाके पश्चात् यह शरत्का वर्णन भी लीजिए—

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहिं सोखइ संतोषा॥
सरिता सर निरमल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥
पंक न रेनु सोह अस धरनी। नीति निपुन नृप कै जस करनी॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥

चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि-भगति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर-संपति देखी॥
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥
देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा॥

भूमि जीव संकुल रहे, गए सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिले तें जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाय॥

× × ×

नारि नयनसर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥
लोभ पांस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
यह गुन साधनतें नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥

सुनिए रामके सम्बन्धमें जामवन्त क्या कहते हैं—

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥

निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहिं मोच्छ सब त्यागि॥

सुन्दर-कांड

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।

तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥

गरुअ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥

एहि सन हठि करहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारजहानी॥

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि-कर सम दसकंधर॥

सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥

चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥

सीतल निसित बसहि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥

कपि करि हृदयँ बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।

जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि करि गहेउ॥

नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥

जे हित करत रहे तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध सरीरा॥

नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हारा कपाट।

लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट॥

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥

नाथ सो नयनन्हिको अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥

नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी । जरै न पाव देह बिरहागी ॥
सीता कै अति बिपति बिसाला । बिनहिं कहें भलि दीनदयाला ॥
तव कुल कमल बिपिन दुखदाई । सीता सीत निसा सम आई ॥

राम बान अहि-गन सरिस, निकर निसाचर भेक ।
जब लगि ग्रसत न तब लगि, जतनु करहु तजि टेक ॥

सचिव बैद गुरु तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिहीं नास ॥

जौ आपन चाहै कल्याना । सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ॥
सो परनारि लिलार गोसाईं । तजउ चउथि चंदाकी नाईं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥
उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ॥
साधु अवग्या तुरत भवानी । कर कल्यान अखिल कै हानी ॥

सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पावँर पापमय, तिन्हहिं बिलोकत हानि ॥

कादर मन कहुँ एक अधारा । दैव-दैव आलसी पुकारा ॥

बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीनि दिन बीति ।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ॥

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुन्दर नीती ॥
ममता-रत-सन ग्यान कहानी । अति लोभी सन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि कथा । ऊसर बीज बएँ फल जथा ॥

काटेहिं पै कदरी फरइ, कोटि जतन कोउ सींच ।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाटेहिं पै नव नीच ॥

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी । सकल ताड़नाके अधिकारी ॥

लंका-काण्ड

सिव-द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहिं न भावा॥
संकर-बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥

संकर-प्रिय मम द्रोही, सिव-द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ बास॥
श्री रघुबीर प्रताप तें, सिन्धु तरे पाषान।
ते मतिमन्द जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन॥
पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहिं देखहु ससिहिं, मृगपति सरिस असंक॥

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन-बनचारी॥
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी-केर सिंगारा॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज-निज मति भाई॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई॥
मारेहु राहु ससिहिं कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई॥
कोउ कह जब बिधि रतिमुख कीन्हा। सार भाग ससि-कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इन्दु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं॥
प्रभु कह गरल बन्धु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
विष संजुत कर-निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी॥

कह हनुमन्त सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता भास॥
बिस्वरूप रघुबंस मनि, करहुँ बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर, अंग अंग प्रति जासु॥

पद पाताल सीस अजधामा । अपर लोक अँग अँग विश्रामा ॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाला ॥
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा । निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥
श्रवन दिसा दस वेद बखानी । मारुत स्वास निगम निज बानी ॥
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अम्बुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ॥
रोम-राजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभुका बहु कल्पना ॥

अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान ॥

नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं । अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥
साहस अनृत चपलता माया । भय अविवेक असौच अदाया ॥

फूलइ फरहिं न वेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जौं गुरु मिलहिं बिरंचि सम ॥

अंगद दीख दसानन बैसें । सहित प्रान कज्जलगिरि जैसें ॥
भुजा बिटप सिर सृंग समाना । रोमावली लता जनु नाना ॥
मुख नासिका नयन अरु काना । गिरि कन्दरा खोह अनुमाना ॥

प्रीति बिरोध समान सन, करिअ नीति असि आहि ।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि, भल कि कहइ कोउ ताहि ॥

बक्र उक्ति धनु बचन सर, हृदय दहेउ रिपु कीस ।
प्रति उत्तर सँड़सिन्ह मनहु, काढ़त भट दससीस ॥

जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू । पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू ॥
सुत बित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता । मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥
जैहउँ अवध कवन मुहुँ लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥
अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननीके एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

विजय दिलानेवाले रथका रूपक लीजिए—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस-भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिज्ञान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धरम-मय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

महा अजय संसार-रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर॥

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जगबिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहिं समर्पी आनि सो॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकजकी कली॥

उत्तरकांड

राम बिरह सागर महँ, भरत मगन मन होत ।
बिप्र रूप धरि पवनसुत, आइ गयउ जनु पोत ॥

सुनत बचन बिसरे सब दूखा । तृषावंत जिमि पाइ पियूषा ॥
कौसल्यादि मातु सब धाई । निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई ॥

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि ।
चित्त खगेस रामकर, समुझि परइ कहु काहि ॥

रामराज्यका वर्णन कितना सटीक है—

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा । रामराज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परमगतिके अधिकारी ॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना ॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिं ।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहिं ॥

रामराज कर सुख संपदा । बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥
सब उदार सब पर उपकारी । बिप्र चरन सेवक नर नारी ॥

एकनारि-व्रत-रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस, रामचन्द्र कें राज॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिं खगमृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥
लता बिटप माँगें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि-संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी॥
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥
सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥

बिधु महि पूर मयूखन्हि, रवि तप जेतनेहि काज॥
माँगें बारिद देहिं जल, रामचन्द्र कें राज॥

जबतें राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतन्ह सुख बहुतन मन सोका॥
जिन्हहिं सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥
धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना॥
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका॥

यह प्रताप रबि जाकें, उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास॥

संत और असन्तोंकी पहचान लीजिए—

संत संग अपवर्ग कर, कामी भवकर पंथ॥
कहहिं संत कबि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रंथ॥

संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥

ताते सुर सीसन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दंड॥

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥
कोमलचित दीनन्ह-पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥
बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज-पद प्रीति धर्म जनयित्री॥
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥

निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन-मंदिर सुख-पुंज॥

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिअ न काऊ।
तिन्हकर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहिं घालइ हरहाई॥
खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी-निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥

बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों ॥
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खायँ महा अहि हृदय कठोरा ॥

परद्रोही परदार-रत, परधन पर-अपबाद।
ते नर पांवर पापमय, देह धरें मनुजाद ॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर-पर जमपुरत्रास न ॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥
जब काहूके देखहिं बिपती। सुखी होहिं मानहुँ जग नृपती ॥
स्वारथ-रत परिवार विरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥
मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहि ॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा ॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी ॥
बिप्र द्रोह परद्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा ॥

ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु, होइहहिं कलिजुग माहिं ॥

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
निर्नय सकल पुरान बेदकर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर ॥
नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भवभीरा ॥
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना ॥
कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फलदाता ॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहिं संसृत दुख जाने ॥
त्यागहिं कर्म सुभासुभदायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक ॥
संत असंतन्हके गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे ॥

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जे परलोक सँवारा॥

सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहिं कर्महिं ईस्वरहिं, मिथ्या दोषु लगाइ॥

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।
नर तनु पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधालें सठ बिष लेहीं॥
ताहि कबहु भल कहहि न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नरदेही। देत ईस बिनुहेतु सनेही॥
नरतनु भव-बारिधि कहुँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

जो नर तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मदमति, आतमहन गति जाइ॥

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥
ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्तिहीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सत-संग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥
पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥

औरउ एक गुपुत मत, सबहिं कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि॥

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाय न मन कुटिलाई। जथालाभ संतोष सदाई॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥
बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिज्ञानी॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपवर्गा॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥

मम गुन ग्राम नाम रत, जग ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानइ, चिदानंद संदोह॥

छूटइ मल कि मलहिके धोएं। घृत कि पाव कोउ बारि बिलोएँ॥
प्रेम भगति जल बिनु खगराई। अभ्यंतर मल कबहुँ कि जाई॥
नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। विषय बिमुख बिराग रत होई॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई॥
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिग्यानी॥
धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥
सबतें सो दुर्लभ सुरराया। रामभगति रत गत मद माया॥

श्रोता सुमति सुसील सुचि, कथा रसिक हरि दास।
पाइ उमा अति गोप्य मति, सज्जन करहिं प्रकाश॥

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही॥
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा॥

ग्यानी तापस सूर कबि, कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना, कीन्हि न एहिं संसार॥
श्री-मद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनिके नैनसर, को अस लाग न जाहि॥

गुनकृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही॥
जौवन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि-कर जस न नसावा॥
मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया॥
कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा॥
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥
यह सब मायाकर परिवारा। प्रबल अमित को बरनै पारा॥
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं॥

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप॥

माया बस मतिमंद अभागी। हृदयँ जमनिका बहुबिधि लागी॥
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अग्यान राम-पर धरहीं॥

निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोइ।
सगुन अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥
जदपि प्रथम दुख पावइ, रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि-नास-हित जननी, गनइ न सो सिसु पीर॥
तिमि रघुपति निज दासकर, हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं, कस न भजहु भ्रम त्यागि॥

माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी॥

परबस जीव स्वबस भगवंता'। जीव अनेक एक श्रीकंता ॥

मोहि भगत प्रिय संतत, अस बिचारि सुनु काग।
कायँ बचन मन मम पद, करेसु अचल अनुराग ॥

रामकृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥
जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥

बिनु गुरु होई कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥
कोउ बिश्राम कि पाव, तात सहज सन्तोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥

बिनु सन्तोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥
बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गन्ध कि पावइ कोई ॥
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाई ॥
निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा ॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥

बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिश्रामु ॥
कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भए सदग्रन्थ।
दम्भिन्ह निज मत कल्पि करि, प्रगट किए बहु पंथ ॥
भए लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ग्यान निधि, कहहुँ कछुक कलि धर्म ॥

कलियुगके कुकर्मोंकी झाँकी लीजिए—

बरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नरनारी॥
द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजाजन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पण्डित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दम्भ-रत जोई। ता कहुँ सन्त कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन-हारी। जो कर दम्भ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवन्त बखाना॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलियुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥
जाके नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

असुभ बेष भूषन धरें, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलियुग माहिं॥
जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान्यता।
मन क्रम वचन लवार, तेइ बकता कलिकाल महुँ॥

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कटकी नाईं॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव विप्र श्रुति सन्त विरोधी॥
गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥
सौभागिनी विभूषन-हीना। बिधवन्हके सिंगार नवीना॥
गुरु सिष बधिर अन्धके लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥
हरइ सिष्य धन सोकु न हरई। सो गुरु घोर नरक महुँ परई॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धरम सिखावहिं॥

ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिं बिप्र गुर घात॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्हतें कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि॥

पर त्रिय लंपट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेद-बादी ग्यानी नर । देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ॥
आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं । जे कहुँ सतमारग प्रतिपालहिं ॥
कल्प कल्प भरि एक एक नरका । परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ॥
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ॥
नारि मुई गृह सम्पति नासी । मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी ॥
ते बिप्रन्ह सन पावँ पुजावहिं । उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार सठ बृषली स्वामी ॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा । जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥

भए बरनसंकर कलि, भिन्न-सेतु सब लोग ।
करहिं पाप पावहिं दुख, भय रुज सोक बियोग ॥
श्रुति सम्मत हरिभक्त पथ, संजुत बिरति बिबेक ।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस, कल्पहिं पन्थ अनेक ॥

बहु दाम सँवारहिं धाम जती । विषया हरि लीन्हि न रहि बिरती ॥
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही । कलि कौतुक तात न जात कही ॥
कुलवन्ति निकारहिं नारि सती । गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ॥
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं । अबलानन दीख नहीं जब लौं ॥
ससुरारि पियारि लगी जबतें । रिपु-रूप कुटुम्ब भए तब तें ॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं । करि दण्ड बिडम्ब प्रजा नितहीं ॥
धनवन्त कुलीन मलीन अपी । द्विज चिह्न जनेउ उघार तपी ॥
नहिं मान पुरान न बेदहि जो । हरि सेवक सन्त सही कलि सो ॥
कवि बृन्द उदार दुनी न सुनी । गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी ॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै । बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥

सुनु खगेस कलि कपट हठ, दम्भ द्वेष पाखण्ड ।
मान मोह मारादि मद, व्यापि रहे ब्रह्मण्ड ॥
तापस धर्म करहिं नर, जप तप ब्रत मख दान ।
देव न बरपहिं धरनी, बए न जामहिं धान ॥

अबला कच भूषन भूरि छुधा । धनहीन दुखी ममता बहुधा ॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता । मति थोरि कठोरि न कोमलता ॥
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं । अभिमान बिरोध अकारनहीं ॥
लघु जीवन संबतु पंच दसा । कलपांत न नास गुमानु असा ॥
कलिकाल बिहाल किए मनुजा । नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा ॥
नहिं तोष बिचार न सीतलता । सब जाति कुजाति भए मगता ॥
इरिषा परुषाच्छर लोलुपता । भरिपूरि रही समता बिगता ॥
सब लोग वियोग बिसोक हए । बरनाश्रम धर्म अचार गए ॥
दम दान दया नहिं जानपनी । जड़ता परबंचनताति घनी ॥
तनु पोषक नारि नरा सगरे । पर निंदक जे जग मो बगरे ॥

सुनु व्यालारि काल कलि, मल अवगुन आगार ।
गुनउ बहुत कलियुग कर, बिनु प्रयास निस्तार ॥
कृतजुग त्रेताँ द्वापर, पूजा मख अरु जोग ।
जो गति होइ सो कलि हरि, नाम ते पावहिं लोग ॥

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी । करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी ॥
त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं । प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं ॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाय न दूजा ॥
कलिजुग केवल हरिगुन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना । एक अधार रामगुन गाना ॥
कलिकर एक पुनीत प्रतापा । मानस पुन्य होहिं नहिं पापा ॥

कलिजुग सम जुग आन नहिं, जौ नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास॥
प्रगट चारि पद धर्मके, कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हे, दान करइ कल्यान॥

सुद्ध सत्य समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥
सत्त्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेताकर धर्मा॥
बहु रज स्वल्प सत्त्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस॥
तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥

दुष्टके साथ कैसा सम्बन्ध रखना चाहिए ?—

कबि कोबिद गावहिं असि नीती। खल सन कलह न भल नहिं प्रीती॥
उदासीन नित रहिय गोसाईं। खल परिहरिअ स्वानकी नाईं॥

× × ×

छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥

यह विचारसरणि देखिए—

क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अग्यान।
मायाबस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान॥

कबहुँ कि दुख सबकर हित ताकें। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें॥
परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका॥
बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हें॥
काहू सुमति कि खल संग जामी। सुभ गति पाव कि परत्रिय-गामी॥
भव कि परहिं परमात्मा-बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ हरि-निंदक॥
राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें॥
पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई॥

लाभु कि किछु हरि भगत समाना । जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना ॥
हानि कि जग एहि सम किछु भाई । भजिअ न रामहिं नर तनु पाई ॥
अघ कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरि जाना ।

भक्ति-पथ छोड़नेसे क्या हानि होती है ?—

जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी । खोजत आकु फिरहिं पय लागी ॥
सुनु खगेस हरि भगति बिहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी । पैरि पार चाहहिं जड़ करनी ॥

मानव-शरीरकी महत्ता समझिए—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत तेही ॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी । ग्यान बिराग भगति सुभ देनी ॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर । होहिं विषय-रत मंद मंदतर ॥
काँच किरिच बदलें ते लेहीं । कर ते डारि परस मनि देहीं ॥

संत-समाजकी महिमाका वर्णन कीजिए—

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं । संत मिलन सम सुख जग नाहीं ॥
पर उपकार बचन मन काया । संत सहज सुभाउ खगराया ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला । परहित निति सह बिपति बिसाला ॥
सन इव खल पर-बंधन करई । खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी । अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥
पर संपदा बिनासि नसाहीं । जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं ॥
दुष्ट उदय जग आरति हेतू । जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥
संत उदय संतत सुखकारी । बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा । पर निंदा सम अघ न गरिंसा ॥
हर गुरु निंदक दादुर होई । जन्म सहस्र पाव तन सोई ॥
सबकै निंदा जे जड़ करहीं । ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥

मानस-रोगोंका यह रूपकात्मक विवरण लीजिए—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । तेहितें पुनि उपजहिं बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई । उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना ॥
ममता दादु कंडु इरषाई । हरष बिषाद गरह बहुताई ॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई । कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ । दंभ कपट मद मान नहरुआ ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी । त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी ॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका । कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥

एक ब्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु ब्याधि ।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ, सो किमि लहै समाधि ॥
नेम धर्म आचार तप, ग्यान जग्य जप दान ॥
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं, रोग जाहिं हरिजान ॥

राम कृपा नासहिं सब रोगा । जौं एहि भाँति बनै संयोगा ॥
सदगुरु बैद बचन बिस्वासा । संजम यह न बिषयकै आसा ॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं । नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं ॥
जानिअ तब मन बिरुज गोसाईं । जब उर बल बिराग अधिकाईं ॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई । बिषय आस दुर्बलता गई ॥
बिमल ग्यान जल जब सो नहाई । तब रह राम भगति उर छाई ॥

कमठ पीठ जामहिं बहु बारा । बंध्या सुत बरु काहुहि मारा ॥
फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला । जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ॥
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना । बरु जामहिं सस सीस बिषाना ॥
अंधकारु बरु रबिहि नसावै । राम बिमुख न जीव सुख पावै ॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई । बिमुख राम सुख पाव न कोई ॥

बारि मथें घृत होइ बरु, सिकता तें बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धान्त अपेल ॥
मसकहिं करइ बिरंचि प्रभु, अजहि मसकते हीन ।
अस बिचारि तजि संसय, रामहि भजहिं प्रबीन ॥

संतोंका स्वरूप पहचानिए—

संत बिटप सरिता गिरि धरनी । पर हित हेतु सबन्ह कै करनी ॥
संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह परि कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता । पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥

कौन धन्य है ?—

धन्य देस सो जहँ सुरसरी । धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी ॥
धन्य सो भूपु नीति जो करई । धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुन्य-रत मति सोइ पाकी ॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा । धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा ॥

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्री रघुबीर परायन, जेहिं नर उपज बिनीत ॥

× × ×

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥

परिशिष्ट २

तुलसीपर सूक्तियाँ

सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केसवदास।
अबके कवि खद्योत सम, इत उत करत प्रकास॥ १॥

तुलसी गंग दुऔ भए, सुकबिनके सरदार।
जिनकी कबितामें लही, भाषा बिबिध प्रकार॥ २॥

तत्त्व तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।
बची खुची कबिरा कही, और कही सब झूठी॥ ३॥

जै जै श्री तुलसीकी बानी।
बिसद बिचित्र चित्र पद मंडित भक्ति मुक्ति बरदानी॥
लीन्हों बेद पुरान शास्त्र मत मुनि जन ललित कहानी।
ज्ञान बिराग ब्रह्म सुख जननी करम धरम नय सानी॥
उदित भई जा दिनतें जगमैं तबतें बुधन बखानी।
अखिल अवनि-मंडल परिपूरित को अस जो नहिं जानी॥
प्रगटी राम चरन रति जहँ तहँ भूरि बिमुखता भानी।
'रामगुलाम' सुनत गावत हिय आवत सारँगपानी॥ ४॥

× × ×

जयति जय जयति तुलसीस बानी।
कबिन सुखदायनी भाव अंगन भरी छरी भव सूल रस चाव खानी॥
पढ़त जेहि होत नर राम-मारग-निरत लही जग जाचना आस हानी।
लोक परलोक सुख देति निज जननकी ताप हरि लेत आनंद खानी॥

पंच उपासना भाव चारी भरी खरी सब भाँति बेदन प्रमानी ।
अंग मानस लिए सरजू भल भाव हिए दिए जगजीवके अभय जानी ॥
कहाँ लौं कहै कबि देखि तेहि बरन छबि रही रस जगत आनंद सानी ।
'द्विज वंदन' हिये बसै सकल प्रान जहाँ बसै खसै नाहिं कभी यह नेम ठानी ॥५॥

× × ×

पदरज श्री तुलसीकी पावनि ।
भवसागरको पोत सुभग भइ सब दुख दोष नसावनि ॥
चरन कमल सोभा सुबास जहँ रस अरुनाई भावनि ।
अमी मूर चूरन जन मनके भव-रुज बेगि मिटावनि ॥
सुकृत संभु तन जन बिभूति सम सोहति सब अघ दावनि ।
मंजुल मंगल मोद प्रगटकी जनु जननी प्रगटावनि ॥
मनहुँ सुअंजन अंजन दृगकी राघो-चरित लखावनि ।
'रामायन' जन बंदत पुनि पुनि सोइ मम ताप बुझावनि ॥ ६ ॥

× × ×

बेदको बिधान लए पूरन पुरान मत,
मानत प्रमान साधु सिद्धि सब ठाईके ।
प्रेम-रस भीने पद परम नवीने कहि,
दीने है अखेद कवि भेद जहँ ताई के ॥
दया दरसावै बरसावै प्रेम पूरो जल,
हियौ हुलसावै जौन पाहनके नाईके ।
स्वामीके चरित और बापुरो बखानै कौन ?
वृत्ति यह बाँटे परी तुलसी गोसाईं के ॥ ७

× × ×

निगमागम सार श्रृंगार सब ग्रन्थनको,
पियो है पुराण सबै जैसे वक्ष माईके।
रसको श्रृङ्गार सार संत उर हार लसै,
कीन्ह्यौ है अहार ज्ञानी सदा सुखदाईके॥
सिंधु जग जहाज औ सोपान राम धामके,
दसधाके साज सज्यौ मिलै हेतु साँईके।
'रामचरण' राम कथा कीन्ह्यौ है बखान सबै,
रामरस बाँटे पर्यौ तुलसी गोसाँईके॥ ८॥

× × ×

बेद मत सोधि सोधि बोधके पुरान सबै,
संत औ असंतनको भेद को बतावतो।
कपटी कुराही कूर कलिके कुचाली जीव,
कौन राम नाम हूँ की रचना चलावतो॥
बेनी कबि कहै मानो मानो हो प्रतीति यह,
पाहन हियेमें कौन प्रेम उमगावतो।
भारी भवसागरते उतारतो कवन पार,
जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो॥ ९॥

× × ×

रहु रे कलंकी कलि कपटी कुचाली मूढ़,
भागु भागु ना तो गहि पटकि पछारौंगो।
तुलसी गोसाईंजूके काव्यके किलासों काढ़ि,
दोहरा दुनाली-सी बँदूकनसों मारौंगो॥

'कबि अंबादत्त' सोरठाके सैफ साफ करि,
छंदनके छर्रासों गरब गहि गारौंगो ।
चारु चउपाइनके चोखे चोखे चाकू लेइ,
आजु तोहि टूक-टूक काटि-काटि डारौंगो ॥ १० ॥

× × ×

मन अनुमानै हेरि मंजुता मनोहरको,
लखि मधुराई होत ध्यान अस हौ को है ।
कोमलता परखि बिचार मति ऐसो करै,
देखि जन प्रियता जनात यह जीको है ॥
'हरिऔध' निरखि निपट निकलंकताई,
कहत हरेक नीतिमान अवनीको है ।
जैसोई रुचिर चारु चरित सियापतिको,
तैसोई ललित कल काव्य तुलसीको है ॥ ११ ॥

× × ×

अब लौं सब नेम धर्म संजम सिराय जाते,
माता पिता बालकको बेद न पढ़ावते ।
आमिष अहारी बिभचारी होते भारी लोग,
कोऊ रघुनाथजूकी चरचा न चलावते ॥
छूटि जाते नेम धर्म आश्रमके चारों बर्न,
ऐसे कलिकालमें कराल दुख पावते ।
होते सब कुचाली सो सुचाली भनैं महाराज,
जो पै कबि तुलसीदास भाषा न बनावते ॥ १२ ॥

× × ×

उपमा अनेक धुनि भाव रस उक्ति जुक्ति,
छंद औ प्रबंध सनबंध सिख देस काल।
ज्ञान योग भक्ति अनुराग औ बिराग बनै,
नीति परतीति प्रीति रीति भीति जगजाल ॥
लोक गति बेद गति चित्र गति पर गति,
ईस गति जाति राम रति तति सति हाल।
तुलसी जू एते गायो रामायन 'रघुराज,
बरबस कीन्हों निज बस दसरथ लाल ॥ १३ ॥

यह खानि चतुष्फलकी सुखदानि अनूपम आनि हिए हुलसी।
पुनि संतनके मन भृंगनको अति मंजुल माल लसी तुलसी ॥
पुनि मानुषके तरिबे कहँ 'तोष' भई भवसागरके पुल सी।
सब कामन दायक कामदुहा-सम रामकथा बरनी तुलसी ॥१४॥

—कवि 'तोष'

बल वैभव विक्रम-विहीन यह जाति हुई जब सारी।
जीवन-रुचि घट चली, हट चली जगसे दृष्टि हमारी ॥
प्रभुकी ओर देखने जब हम लगे हृदयमें हारे।
नए पंथ कुछ चले चिढ़ाने 'वह तो जगसे न्यारे' ॥
जाय वीरता मान न उसका यदि मानससे जावे।
जाय शक्ति पर भक्ति शक्तिकी यदि जन-मन न भगावे ॥
जाय ज्ञान विज्ञान भाग्य भी जड़ताका यदि जागे।
पर न भारती पाद-पद्म तज पूज्य बुद्धि यदि भागे ॥
कितनी ही परिताप-तप्त तनु पिसकर पीड़ा पावे।
पर यदि दुष्ट-दमनपर श्रद्धा मनमें कुछ रह जावे ॥

लोकरक्षिणी शक्ति उदय तो अपना आप करेगी।
विद्या बल वैभव वितरित कर सब सन्ताप हरेगी॥
पर जनताके मनसे ये शुभ भाव भगानेवाले।
दिन दिन नए निकलते आते थे मतके मतवाले॥
इतनेमें सुन पड़ी अतुल सी तुलसीकी बरबानी।
जिसने भगवत्कला लोकके भीतरकी पहिचानी॥
शक्ति बीज शुभ भव्य भक्ति वह पाकर मंगलकारी।
मिटी खिन्नता जीनेकी रुचि फिर कुछ जगी हमारी॥
प्रभुकी लोकरंजिनी छविपर जबतक भक्ति रहेगी।
तब-तब गिर-गिरकर उठनेकी हममें शक्ति रहेगी॥१५॥

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

कविता करके तुलसी न लसे कविता लसी पा तुलसीकी कला॥१६॥

—हरिऔध

तुलसी नहीं नर था कभी सुर था सुधा बरसा गया॥१७॥

—मनोरंजन प्रसाद सिन्हा

कलि कुटिल जीव निस्तार हेतु बाल्मीकि तुलसी भयौ॥१८॥

—नाभादासजी